स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना
(१९४७-१९७०)

SOCIAL CONSCIOUSNESS IN POST-INDEPENDENT HINDI POETRY
(1947-1970)

Thesis submitted to
THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

SOPHIA MATHEW

Supervising Teacher
Dr. N. RAMAN NAIR
Retd. Professor and Head
Department of Hindi, CUSAT

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1991

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by SOPHIA MATHEW under my supervision for DOCTOR OF PHILOSOPHY and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any Indian University.

Dr. N.RAMAN NAIR
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
KOCHI, Pin 682022

Date: 15 oct.,1991.

अपनी ओर से

बचपन से ही कविता के प्रति मेरी विशेष अभिरुचि रही है। इसलिये जब शोध करने की जिज्ञासा मन में उभरी तो मैं ने कविता का क्षेत्र ही चुन लिया। साहित्य और समाज का सम्बन्ध निर्विवाद है। कवि तो समाज का प्रवक्ता और प्रहरी भी है। अत: कविता की सामाजिकता असन्दिग्ध है। इच्छा हुई कि कविता में समाज किस प्रकार जीवित रहता है, यह देखा परखा जाये।

भारत की स्वतंत्रता, भारत के इतिहास की ही नहीं विश्व इतिहास की भी एक महत्व-पूर्ण घटना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की परिस्थितियां बदल गयीं। हमारी स्वतंत्रता अपने साथ अनेक समस्याओं को लेकर आयी। देश का विभाजन, शरणार्थी समस्या, चीन और पाकिस्तान का आक्रमण, आर्थिक पिछड़ेपन आदि परिस्थितियों का प्रभाव भारतीय जन मानस पर पडा। साहित्य भी इस प्रभाव से

अछूता नहीं रहा । कवि समाज का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी होता है । अतः परिस्थितियों का गहरा प्रभाव तत्कालीन कविता पर ज्यादा पड़ा ।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में 15 अगस्त 1947 एक विभाजन रेखा थी । सन् 1947 के पहले स्वतंत्रता संग्राम और तज्जन्य परिस्थितियों ने कविता केलिये प्रेरणा दी । 1947 के बाद, स्वतंत्रता की खुली हवा में, देश का नवनिर्माण करना कवियों का लक्ष्य रहा । इसलिये सामाजिक दृष्टि से इस काल की कविता का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा । इसी विचार से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय स्वातंत्र्योत्तर कविता रखा गया ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता से तात्पर्य उन कवियों की कविता से नहीं जिन्होंने सन् 1947 के बाद लिखना शुरू किया, अपितु उन कवियों की कविताओं से है जिन्होंने पहले ही लिखना शुरू किया था और सन् 1947 के बाद जिनकी कविता में कुछ खास परिवर्तन आया और इस युग को अपनी अनुपम कृतियों से सम्पन्न किया है ।

सन् 1970 तक आते आते देश एक अजीब विसंगति से गुजरने लगा यह काल मोह-भंग का काल है । इस समय की कविताओं में मुख्यतः असंतोष व्यंग्य, निषेध, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर प्रमुख है । इस कारण से प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की सीमा सन् 1947-'70 निर्धारित की है ।

हिन्दी कविता जो परम्परा की लीक पर सन् 1950 तक चलती आ रही, उसमें राजनीतिक स्वातंत्र्य की प्राप्ति के बाद ऐसा परिवर्तन प्रारंभ हुआ कि वह परम्परा को तोड़कर अनेकानेक नये आयामों

प्रवाहित होने लगी । यह समय हिन्दी काव्य का एक नया मोड प्रस्तुत करता है इसलिये कि महाभारत, रामायण और पुराणों के कथ्य से भिन्न स्वतंत्र, यथार्थ कथ्य को स्वीकार करते हुए लघु मानव को प्रस्तुत करने का महान प्रयत्न शुरू हुआ । हिन्दी काव्य में यह समय ऐसी रचनाओं को प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ कि कथ्य, कथन शैली तथा प्रयोग की दृष्टि से वह मौलिक, भारत की अन्य भाषाओं को भी वस्तुशिल्प प्रदान करने में सक्षम रहा था । ऐसा मौलिक चिंतन और संवेदना का स्वरूप हिन्दी साहित्य में इस के पूर्व विरले ही प्राप्त होता है । यह भी एक कारण था जिससे प्रस्तुत अध्ययन केलिये सन् 1947 से 1970 तक की कविताओं को मैं ने स्वीकार किया ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता के मर्म को समझने केलिए सामाजिक चेतना के आधार पर उसका अध्ययन करना अनिवार्य है । अभी तक इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर कविता का अध्ययन और विश्लेषण करते हुए कोई शोध प्रबन्ध किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इस अभाव की पूर्ति करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में स्वातंत्र्योत्तर युग की कविताओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन और सहज निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं ।

छह अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पहला अध्याय "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के अध्ययन की 'भूमिका' बाँधने का कार्य करता है । इसमें समाज संस्था के विभिन्न अंगों और समाजशास्त्रीय

अध्ययन के विभिन्न आयामों की चर्चा हुई है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्राप्त सामाजिक चेतना का एक अध्ययन भी यहाँ किया गया है ।

दूसरा अध्याय स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता के अध्ययन से सम्बन्धित है । स्वातंत्र्य पूर्व भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद और प्रगतिवाद की कविताओं की सामाजिक चेतना को उद्घाटित किया गया है

तीसरे अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश का उल्लेख करते हुए इस युग की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना" नामक चौथे अध्याय में आलोच्य युग के प्रमुख कवियों की कविताओं में पाई जानेवाली सामाजिक चेतना का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है ।

पाँचवाँ अध्याय स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख प्रबन्ध काव्यों की सामाजिक चेतना से सम्बन्धित है ।

छठे अध्याय में उपसंहार के रूप में, उपर्युक्त पाँच अध्यायों के अध्ययन के आधार पर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्राप्त सामाजिक चेतना का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध कार्य कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफसर डॉ॰ एन॰रामन नायर जी के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । उन्हीं के बहुमूल्य सुझाव तथा प्रोत्साहन इसकी सफल परिसमाप्ति में मेरे पथप्रदर्शक रहे हैं । शोध कार्य में वे हमेशा मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं । उनके प्रति बडी श्रद्धायुक्त हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । विभाग के वर्तमान अध्यक्ष तथा प्रोफसर डॉ॰पी॰वी॰ विजयन जी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे प्रोत्साहन और निर्देशन दिये हैं ।

विभाग के कार्यालय के कर्मचारी, पुस्तकालय के कार्यकर्ता तथा अन्य सभी मित्रों एवं शुभेच्छुओं के प्रति भी इस संदर्भ में अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनकी सहायता मुझे समय-समय पर मिलती रही है ।

विनीता,

सोफिया मैथ्यु

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोची, पिन 682022
तारीख: सितम्बर 1991

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - एक 1 - 31

भूमिका

चेतना - समाज

परिभाषा - उद्भव और विकास - सामाजिक संगठन - परिवार - व्यक्ति और समाज - सामाजिक परिवर्तन ।

√समाजशास्त्रीय अध्ययन के आयाम ।

समाज और राजनीति - समाज और अर्थ - समाज और संस्कृति - समाज और धर्म - समाज और शिक्षा - साहित्य और समाज ।

√सामाजिक चेतना । साहित्य में सामाजिक चेतना - कविता और सामाजिक चेतना - उपन्यास और सामाजिक चेतना - कहानी और सामाजिक चेतना - नाटक और सामाजिक चेतना ।

निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - दो 32 - 75

स्वातंत्र्यपूर्व हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना

स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि ।
राजनीतिक - सामाजिक - आर्थिक और
सांस्कृतिक ।
स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
राष्ट्रीयता और देश-प्रेम - सामाजिक चेतना -
नारी उत्थान की भावना - आर्थिक शोषण का
विरोध - सांस्कृतिक चेतना ।
स्वातंत्र्यपूर्व हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना
भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग - छायावाद युग
प्रगतिवाद । निष्कर्ष ।

अध्याय - तीन 76 - 157

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता पृष्ठभूमि और
प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि ।
राजनैतिक - सामाजिक - आर्थिक - सांस्कृतिक ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ
व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध - पारिवारिक
समस्यायें - वैवाहिक समस्यायें - बाल-विवाह -
अनमेल विवाह - दहेज प्रथा - विधवा की
समस्यायें - जाति-भेद का विरोध - अस्पृश्यता
का विरोध - साम्प्रदायिकता का विरोध - जीवन
का यथार्थ चित्रण - बेकारी - भूख और गरीबी का
चित्रण - महानगरीय सभ्यता पर व्यंग्य -
समसामयिक समस्याओं का चित्रण - स्वातंत्र्योत्तर
कविता में नारी - वेश्या समस्या - सती प्रथा ।
राजनीतिक चेतना - स्वतंत्रता का स्वागत -
देश विभाजन पर ग्लानी और क्षोभ -
शरणार्थी समस्या - काश्मीर, गोआ और देशी
रियासतों की समस्यायें - गाँधीजी की हत्या -
राष्ट्रीयता की भावना - देश-प्रेम - पाकिस्तान
और चीन के आक्रमण की प्रतिक्रिया - स्वातंत्र्योत्तर
राजनीतिक विसंगतियाँ-युग-पुरुषों का स्मरण -
देश के नवनिर्माण की चेतना - अंतर्राष्ट्रीय चेतना ।
आर्थिक चेतना - पूँजीवाद का विरोध -
वर्ग-वैषम्य - सर्वहारा वर्ग के प्रति विशेष
सहानुभूति - मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण -
कागज़ी योजनाओं पर व्यंग्य - श्रम का महत्त्व
समाजवाद - सांस्कृतिक चेतना - वर्तमान
सांस्कृतिक संकट - परम्परा के प्रति मोह तथा

पृष्ठ-संख्या

चार रेखे चौंसठ खूंटे,
दो चट्टानें, कटती प्रतिमाओं
की आवाज़, उभरते प्रतिमानों
के रूप)

4. दिनकर — (बापू, इतिहास के आँसू,
धूप और धुआँ, दिल्ली,
नीम के पत्ते, परशुराम की
प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व
मृत्ति तिलक, नये सुभाषित,
नील कुसुम)

5. शमशेर — (कुछ कवितायें व कुछ और
कवितायें, चुका भी हूं नहीं मैं)

6. अज्ञेय — (बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे
हुए ये, आँगन के पार द्वार,
अरी ओ करुणा प्रभामय, क्योंकि
मैं उसे जानता हूं, कितनी नावों
में कितनी बार, हरी घास पर
क्षण भर)

7. नागार्जुन — युगधारा, तुमने कहा था, सतरंगे
पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें,
पुरानी जूतियों का कोरस)

पृष्ठ-संख्या

8· केदारनाथ अग्रवाल {कहें केदार खरी खरी, जो शिलायें तोड़ते हैं, फूल नहीं रंग बोलते हैं, आग का आईना}

9· नरेन्द्र शर्मा {अग्नि शस्य, प्यासा निर्झर, बहुत रात गये}

10· भवानी प्रसाद मिश्र {गीत फरोश, गाँधी पंचशती, अन्धेरी कवितायें, दूसरा सप्तक}

11· प्रभाकर माचवे {स्वान भी, अनुक्षण}

12· त्रिलोचन {शब्द, उस जनपद का कवि हूँ, अनकहनी भी कुछ कहनी है, ताप के ताए हुए दिन, गुलाब और बुलबुल}

13· भारतभूषण अग्रवाल {ओ अप्रस्तुत मन, एक उठा हुआ हाथ, अनुपस्थित लोग, कागज़ के फूल, उतना वह सूरज है}

14· गिरिजाकुमार माथुर {धूप के धान, शिलापंख चमकीले, जो बन्ध नहीं सका, साक्षी रहे वर्तमान}

15· कुंवरनारायण {चक्रव्यूह, परिवेश हम तुम, तीसरा सप्तक}

पृष्ठ-संख्या

16. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (गर्म हवाएँ, एक सूनी नाव, काठ की घंटियाँ, कुआनो नदी, तीसरा सप्तक)

17. श्रीकांत वर्मा (दिनारंभ, माया दर्पण)

अध्याय - पाँच 452 - 527

स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख प्रबन्धकाव्यों में

सामाजिक चेतना

प्रबन्ध काव्य - सामान्य परिचय - महाकाव्य परिभाषा - महाकाव्य के लक्षण - खण्डकाव्य - स्वातंत्र्योत्तर प्रबन्ध काव्य विशेषतायें ।

1. मेधावी (डॉ. रांगेय राघव)
2. जननायक (रघुवीरशरण मित्र)
3. अङ्गराज (आनन्द कुमार)
4. कैकेयी (केदारनाथमिश्र प्रभात)
5. रश्मिरथी (दिनकर)
6. अन्धा युग (धर्मवीर भारती)
7. पार्वती (डॉ. रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन)
8. तारकवध (गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश)

पृष्ठ-संख्या

9. एकलव्य (डॉ. रामकुमार वर्मा)
10. कनुप्रिया (धर्मवीर भारती)
11. ज्योतिपुरुष (रघुवीर शरण मित्र)
12. रामराज्य (बलदेवप्रसाद मिश्र)
13. उर्वशी (दिनकर)
14. संशय की एक रात (नरेश मेहता)
15. एक कंठ विषपायी (दुष्यंत कुमार)
16. सत्य की जीत (द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी)
17. लोकायतन (पंत)
18. आत्मजयी (कुँवरनारायण)
19. मानवेन्द्र (रघुवीर शरणमित्र)
निष्कर्ष ।

अध्याय - छ: 528 - 548

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्राप्त सामाजिक चेतना का मूल्यांकन

संदर्भ ग्रन्थ सूची 549 - 572

:-----0-----:

अध्याय - एक

भूमिका

भूमिका

चेतना

इस विश्व में समस्त सृष्टि दो रूपों में उपस्थित होती है - चेतन और अचेतन रूप में । अचेतन पदार्थों में संवेदना का अभाव होता है । मनुष्य शरीर चेतन पदार्थ है । उसमें संवेदना, इच्छा आदि क्रियायें सहज होती है । मानव मन की प्रमुख विशेषता चेतना है । चेतना वस्तुओं, विषयों और व्यवहारों का ज्ञान है । यह एक गति-शील वस्तु है ।

चेतना को परिभाषित करना कठिन है । बाह्य जगत् के प्रति चेतन मानस की प्रतिक्रिया चेतना कहलाती है । "इसकी विशेषतायें हैं निरंतर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह, इस प्रवाह के साथ साथ

विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य । चेतना का प्रभ हमारे अनुभव वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से[1] ।"

मनोविज्ञान में चेतना शब्द का प्रयोग "मन" के अंतर्गत किया गया है । मानस पूर्णत: चेतन होता है, क्योंकि चेतना मानस का स्वरूप है । मानस के तीन स्तर होते हैं - अचेतन, उपचेतन और चेतन । फ्रायड का मनोविश्लेषण शास्त्र अचेतन की कल्पना पर आधारित है । मानस के तीन बटा चार अंश अचेतन भाग है । यह व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है । "मनुष्य के सामान्य व्यवहार में व्यक्त होनेवाले मानस का पक्ष चेतन है । इसमें वे अनुभव और व्यापार आते हैं, जिनका व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान होता है । यही चेतना है । मन का प्रधान गुण चेतना ही है[2] ।"

दार्शनिक अर्थ में भी "चेतना" शब्द का प्रयोग हो सकता है । विज्ञानवादी और प्रत्ययवादी दार्शनिक चेतना या विज्ञान को शाश्वत और एकमात्र सत्ता मानते हैं । इस अर्थ में "चेतना" शब्द "आत्मा" का समानार्थक हो जाता है - परन्तु साहित्य में और दर्शन में भी इस अर्थ में प्राय: "चैतन्य" शब्द का उपयोग किया जाता है[3] ।" भारतीय आध्यात्म ने आत्मा को चेतना का आधार माना है । आधुनिक मनोविज्ञान ने मन को चेतना का आधार स्वीकार किया है ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1, पृ.319-320
2. डॉ. सुखबीर सिंह - हिन्दी कविता में समकालीन चेतना, पृ.30-31
3. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1, 319-320

हिन्दी शब्द सागर में "चेतना" का अर्थ इस प्रकार दिया हुआ है -

1. चेतन्य, संज्ञा, होश, ज्ञान
2. बुद्धि, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, समझ
3. स्मृति, सुधि, याद
4. जीवन ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में "चेतना" शब्द का प्रयोग "जीवन" के अर्थ में किया गया है ।

"गीता" में चेतना को जीवनी शक्ति माना गया है -

"इच्छा द्वेष सुखं दुखः संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्र समासेन सविकार मुदाहृतम[1] ।"

चेतना का मूल स्रोत मानव मन है । मन से उद्भवित होने के कारण वह मननशील है । यह मननशील चेतना भाषा के द्वारा विचार को रूप देती है । साहित्य का उद्भव मन और समाज से होता है । चेतना के माध्यम से अनुभूतियों का आकलन करके कवि या साहित्यकार सृजन करता है । इसलिये सामाजिक चेतना के धरातल पर साहित्य का विश्लेषण करना उपयोगी होगा ।

पाश्चात्य चिंतकों ने[2] चेतना को विचार की धारा माना है । अस्तित्ववादी[3] चेतना को एक साधन या पद्धति मानते हैं ।

---

1. गीता - 13 / 6
2. William James - The Principles of psychology, p.224
3. डॉ. महावीर दाधीच - अस्तित्ववाद, पृ.16

चेतना मनुष्य को समस्त अच्छाई बुराई का बोध कराती है[1]। वह जीवन का धर्म है ।

समाज

परिभाषा

समाज मनुष्य का एक प्राकृतिक संगठन है । यह एक परिवर्तनशील व्यवस्था एवं गतिशील प्रक्रिया है । सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अकेला नहीं रह सकता । वह आपस में मिलकर जीना पसंद करता है । इस उद्देश्य से मनुष्य ने जिस संस्था का निर्माण किया है, वह समाज कहलाता है । मनुष्य ने अपना अस्तित्व बनाये रखने केलिए समाज की संरचना की है ।

समाजशास्त्रियों ने पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के स्थायी समूह को समाज कहा है, जो सांस्कृतिक स्तर पर स्व - प्रजाति के सातत्य को बनाये रखने और उसका परिपोषण करने में समर्थ होता है[2]।

पारसन्स के मतानुसार समाज उन मानव सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो क्रियाओं के करने से उत्पन्न हुए हैं और वे कार्य साधन व साध्य के रूप में किये गये हों, चाहे वे यथार्थ हो या चिह्नित[3]।"

1. भवानीप्रसाद मिश्र - चकित है दुख, पृ.25

2. We may have ;gexfhx define a society as any permanent or continuing grouping ....and maintenancw on their own cultural level.
F.H.Hawkins - An Introduction to the study of society, p.444

3. S ociety may be defined as the total complex of .... relationship intrencic or symbolic.
Talcot Parsans - Encyclopedia of Social Sciences Vol.IVX, p.225

समाज मानवीय सम्बन्धों से बनता है और इन सम्बन्धों के मूलभूत तत्व है प्रेम और सहयोग की भावना । समरूपता, विषमरूपता, चैतन्य, सामान्य हित अथवा लक्ष्य, अन्योन्याश्रय आदि समाज के तत्व है । "सामान्य रूप से समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेते हैं[1] ।"

मनुस्मृति में समाज शब्द से प्रदर्शनी का बोध होता है । जैसे -

सभा प्रपापूशालावेशमद्यान्न विक्रिया:
चतुष्पथाश्चैत्यवक्षा: समाजा: प्रेक्षणानि च[2] ।"

श्रीमद्भागवत् में समाज को सभा के साथ साथ "सम्बन्ध सूचक" अर्थ में भी प्रयोग किया है[3] ।" समाजशास्त्र के विश्वकोश[4] के अनुसार समाज, मनुष्य के अपने साथियों के साथ कई प्रकार के सम्बन्धों को कहा है । प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर[5] ने समाज को एक ऐसी व्यवस्था माना है जिसमें विविध प्रकार के चलन और विधि निर्देशों की, स्वामित्व और परस्पर सहयोग की, स्वतंत्रता और मानव आचरण के नियमन की, संगठन और समुदायों की सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया कार्यरत रहती है ।

1· डॉ· नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ·6
2· मनु - 9 / 264
3· श्रीमद्भागवत् - 10 / 44 / 9, 10 / 60 / 38
4. Encyclopedia of Social Sciencces,Vol.ivx,p.225
5. Society is a system of usages and procedures of authority ....system we call society.
Mac Iver and Page - Society, p.5

वेदों ने समाज को पुरुष के रूप में चित्रित किया है । मनुष्य को गति, मति, स्थिति और कृति केलिये चरण, मस्तिष्क, उदर और कर है । उसी प्रकार समाज-पुरुष के भी चार अंग है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । समाज का मुख ब्राह्मण, भुजायें क्षत्रिय, उदर वैश्य और चरण शूद्र है ।[1] वेदों का यह विभाजन तुच्छता के आधार पर नहीं, योग्यता के आधार पर थे । लेकिन आज भारतीय हिन्दु समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर, समाज की प्रमुख विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर, समाज को पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित व्यक्तियों का समूह कहा जा सकता है ।

उद्भव और विकास

नृतत्वशास्त्रियों के मतानुसार मनुष्य को इस पृथ्वी पर आये पाँच लाख से दस लाख वर्ष हो चुके हैं । आदि काल में मनुष्य जंगलों में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करते थे । वे मधु, फल आदि खाते थे और शिकार करते थे । यौन संबन्ध नियमित या नियंत्रित नहीं था । धीरे धीरे सभ्यता का विकास हुआ । यौन सम्बन्ध नियंत्रित हो गया । विवाह संस्था और परिवार का जन्म हुआ । मनुष्य कृषि करने लगा और कृषि में अभिवृद्धि हुई तो लोग कृषि की रक्षा केलिये झुण्डों में एक स्थान पर स्थिर रहने लगा । लोगों के बीच परस्पर सहयोग की भावना बढी । धीरे धीरे परिवारों के संयुक्त रूप ने समाज का रूप धारण कर लिया ।

---

1. ब्राह्मणो/स्य मुखमासीद्, बाहू राजन्य: कृत: ।
   ऊरु तदस्य यद् वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।। - ऋग 10/90/12

वर्तमान समाज का विकास अनेक चरणों से होकर हुआ है । ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार समाज का विकास तभी होता है जब उस केलिये आवश्यक कारण विद्यमान हो । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार विकास की प्रक्रिया मूलत: उन अंतर्विरोधों पर आधारित है जो वस्तुजगत् के प्रत्येक व्यापार में आंतरिक रूप से विद्यमान रहते हैं । मार्क्स ने मानव समाज के इतिहास को पाँच युगों में बाँटा है - आदिम साम्यवादी युग, दासत्व युग, सामन्तवादी युग, पूँजीवादी युग और समाजवादी युग । उन्होंने समाज के विकास के इतिहास को आर्थिक सम्बन्धों की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है ।

सामाजिक संगठन

संगठन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समाज पूर्वनिश्चित उद्देश्यों के अनुसार चलता है और उनको पूर्ण करने की चेष्टा करता है । समाजशास्त्रियों के मतानुसार सामाजिक संगठन वह दशा है जिसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक रूढियों, परम्पराओं, कायदे और कानूनों का पालन करता है । प्रत्येक व्यक्ति की अपनी "स्थिति" होती है । वह समाज में रहकर जब जब स्थिति के अनुरूप ही कार्य करता है तब तक समाज संगठित होता है[1] ।"

समाज के रीति-रिवाज, परम्परायें और अगणित छोटी मोटी समितियाँ सामाजिक संगठन को बनाये रखने में सहायक होती है । परिवार, जाति, भाषा, पंचायत, नगर, गाँव, वर्ग आदि सभी सामाजिक संगठन के अंग हैं ।

---

1. बुद्धसेन चतुर्वेदी - समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना, पृ.41।

भारतीय सामाजिक विधायकों ने समाज के सुसंगठन और उसकी सुव्यवस्था केलिए "वर्ण व्यवस्था" को और समाज की मूल इकाई व्यक्ति के जीवन को संतुलित एवं व्यवस्थित रखने की दृष्टि से "आश्रम व्यवस्था" को जन्म दिया ।

वर्ण-आश्रम व्यवस्था का जन्म सद्‌द्देश्य से ही हुआ था और एक समय तक उसने समाज का कल्याण भी किया । किंतु सीमित वर्ग के स्वार्थों के कारण ये समाज को अहितकर होने लगे ।

परिवार

परिवार एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है । समाज के जीवन का केन्द्रबिन्दु परिवार है । यह व्यक्ति और समाज के बीच सेतु के समान रहकर दोनों को मिलाता है । यह मनुष्य की शारीरिक-सामाजिक सुरक्षा और सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक आवश्यकताओं का पूरक है ।

समाजशास्त्रियों ने परिवार को वह प्रवेश द्वार माना है जिससे होकर व्यक्ति समाज में पदार्पण करता है[1] । सामान्य रूप से परिवार ऐसे लोगों का समूह है जो जन्म से या विवाह से बन्धित है[2] ।

---

1. बुद्धसेन चतुर्वेदी - समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना, पृ॰15

2. The term family usually refers to a group of persons related by birth or marriage (ordinary parents and their children) who reside in the same household. Encyclopedia Americana, Vol.11,p.2.

समाज के सभी पहलुएँ अन्त: सम्बन्धित है और बुनियादी तौर पर परिवार समाज का रूढि-जन्य चरित्र और संगठन का संधारण करता है[1]।

व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि परिवार से ही मिलता है । प्रेम, त्याग, दया, सहानुभूति, ममता आदि श्रेष्ठ गुण व्यक्ति को घर से मिलता है ।

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली थी । संयुक्त परिवार में चार या पाँच पीढियों के लोग एक साथ रहते हैं और परिवार का बडा बूढा मालिक होता है जो घर का संचालन करता है । घर के अन्य समस्त सदस्य उसी की अधीनता और संरक्षा में कार्य करते हैं ।

संयुक्त परिवार में व्यक्तित्व के विकासमें कभी कभी बाधा पहूँचती है । स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं रहती है । आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप मनुष्य में व्यक्तिवादी चेतना का विकास हुआ । नयी पीढी और पुरानी पीढी के बीच संघर्ष होने लगा । इसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली टूटने लगी । औद्योगीकरण के कारण विकसित नागरिक सभ्यता भी इस का कारण था ।

---

1. All aspects of a society are inter related and the family serves basically to maintain a societys customary character and organisation.
Alfred Meclung Lee and Elizabeth Braint Lee - Marriage and family, p.24

परिवार की प्रवेशक संस्था और उस की आधारशिला विवाह है। स्त्री और पुरुष विवाह के सूत्र में बन्धकर परिवार का निर्माण करता है। मानव समाज की सत्ता एवं उसका संरक्षण विवाह और परिवार पर आधारित है। हैवलाक इलिस[1] के मतानुसार विवाह दो व्यक्तियों का परस्पर सम्बन्ध है जो एक दूसरे से यौन सम्बन्ध एवं सामाजिक सहानुभूति के बन्धनों से आपस में बन्धे रहते हैं और यदि संभव है तो इन बन्धनों को अनन्तकाल तक चलाने केलिये इच्छुक हो।"

भारतीय संस्कृति ने विवाह को एक धार्मिक संस्था माना है। इसके अनुसार विवाह का उद्देश्य इहलौकिक स्वास्थ्य, सुख, शांति एवं दीर्घायु प्राप्त करते हुए पारलौकिक अभ्युदय तथा सुख शांति प्राप्त करना है।

वर्तमान युग की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण विवाह की पवित्रता नष्ट हो चुकी है। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परम्परागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कवितामें इस विघटन की स्थिति को अनेक स्तरों पर अभिव्यक्ति दी गई है। इस पर आगे के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति और समाज के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। किसी भी परिस्थिति में मनुष्य समाज से पृथक नहीं हो सकता। व्यक्ति का ही आत्मविस्तार है समाज। व्यक्ति के ह्रास से समाज का ह्रास जुडा हुआ है और व्यक्ति की समृद्धि से समाज की समृद्धि। घर, स्कूल, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, कला और संस्कृति व्यक्ति की आवश्यकताओं को

---

1. हैवलाक इलिस - सेक्स एण्ड मैरियेज, पृ.52

पूरा करती है और उसकी आदतों को प्रभावित करती है । समाज का विकास व्यक्ति द्वारा होता है ।

समाजशास्त्रियों[1] ने व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु माना है । उनके विचारानुसार व्यक्ति के अभाव में समाज का कोई अस्तित्व नहीं होता । "समकालीन सन्दर्भ में व्यक्ति की स्वतंत्रता सामाजिक आवश्यकता की शक्ति में घुल-मिलकर ही सार्थक, यथार्थ और चरितार्थ होती है[2] ।"

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं । एक ओर व्यक्ति समाज का निर्माता है, दूसरी ओर वह समाज का अभिन्न अंग भी है ।

सामाजिक जीवन के अभाव में व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति अव्यक्त रह जाती है । मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास केलिए सामाजिक परिस्थितियाँ अत्यंत आवश्यक है क्योंकि निरपेक्ष ऐकान्तिकता में व्यक्ति की

---

1. Mac Iver and Page - Society an Introductory analysis,p.5
2. रमेशकुंतल मेघ - क्योंकि समय एक शब्द है, पृ.630

सभी आवश्यकतायें और मानसिक भाव अव्यक्त रह जाते हैं । व्यक्ति सामूहिक, सामाजिक, परिस्थितियों का एक अंग है[1] ।

व्यष्टि के यथार्थ और समष्टि के यथार्थ को समन्वित रूप में देखने की दृष्टि स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रमुख विशेषता है । "इससे इन्कार नहीं कि समकालीन दबावों में पिसकर मानव संबन्ध भ्रष्ट और विकृत हो जाते हैं, लेकिन मानव सम्बन्धों की ललक, कोमलता और प्रेम एकदम ओझल हो जाये, कम से कम ऐसी दुर्घटना, हमारी आर्थिक सामाजिक स्थिति में नहीं हुई है[2] ।

व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने का श्रेय समाजीकरण की प्रक्रिया को है । "समाजीकरण से तात्पर्य केवल समाज के आदर्शों एवं प्रथाओं को सीखने से ही नहीं है, बल्कि यह सीखने की वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अनुकूलन करना सिखाती है[3] । व्यक्ति अपने "स्व" का विकास तथा दूसरों के कार्यों को करने की योग्यता समाजीकरण द्वारा ही प्राप्त करता है ।

सामाजिक परिवर्तन

समाज एक परिवर्तनशील व्यवस्था है । औद्योगिक क्रांति, बेकारी, युद्ध आदि के फलस्वरूप समाज में परिवर्तन आता है ।

---

1. डॉ० रत्नाकर पाण्डेय - हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना, पृ० 185
2. अशोक वाजपेयी - फिलहाल, पृ० 5।
3. डॉ० कृष्णकुमार मिश्र - सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, - पृ० 1

वर्तमान युग में समाज का परिवर्तन दो विशाल शक्तियों से प्रभावित है - विज्ञान और प्रौद्योगिकी । औद्योगिक समाज में परिवर्तन की गति तीव्र है ।

"जीवन के स्वीकृत ढंग में जब संशोधन होने लगता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहते है[1] । जब समाज की परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन होता है तो समाज में नवीन चेतना आती है ।

प्रत्येक युग में समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं । "परिवर्तन का नाम "नया" है, न कि पुराने को हेय या निन्दनीय समझना । अब पुराने मानदण्डों से नवयुग की समस्याओं का हल नहीं होगा । पूर्वजों की दहलीज को लाँघकर उत्तराधिकारी नये भवनों का निर्माण करता है । इसलिये नयेपन की माँग यह तो स्वीकार करती है कि पुराने की ही लकीर पीटते रहने से उसका काम नहीं चलता, परन्तु वह यह नहीं कहती कि पुराना सब व्यर्थ है, उसे तिरस्कृत करना चाहिए । "नया" "पुराने" की तब निन्दा भी करता है, जब "पुराना" उसे "नया" बनने से रोकता है, उसके रास्ते में बाधायें उपस्थित करता है[2] ।"

स्वतंत्रता परवर्ती युग में परम्परागत सामाजिक मान्यतायें टूटने लगी । व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा । परम्परागत मूल्यों के प्रति युवा पीढी के मन में वितृष्णा पैदा हुई । व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परम्परागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ।

---

1. Gillin and Gillin - Cultural Sociology, p.561

2. रांगेय राघव - आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली, पृ.6

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर युग की कविताओं में इस परिवर्तन का स्वर अधिक मुखरित होता है । इस युग के प्राय: सभी कवि, पुराने से उसका सारतत्व ग्रहण करके आगे बढने के पक्ष में हैं ।

समाजशास्त्रीय अध्ययन के आयाम

मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है समाजशास्त्र । सामुदायिक जीवन में मनुष्य के विचार-व्यवहार अनन्त काल से विकसित समाज में संचित विचार व्यवहार का प्रतिफलन करते हैं । समाजशास्त्र यह मानकर चलता है कि परस्पर आदान-प्रदान तथा सम्पर्क सम्बन्ध आदि के द्वारा ही मनुष्यों में मानवीय गुणों का विकास होता है । अत: मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापों का अध्ययन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है। समाजशास्त्र मानवमूल्यों को सामाजिक मूल्यों के रूप में परिभाषित करता है[1] ।

अन्य शास्त्र शाखायें जीवन के किसी एक पहलू से सम्बन्धित रहते हैं । इसके विपरीत समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत राजनीति, शिक्षा, अर्थ, धर्म, संस्कृति आदि सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन आता है ।

---

1. डॉ॰ नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ॰3

समाज और राजनीति

मनुष्य के सामाजिक जीवन की सुरक्षा केलिए शासन तंत्र की व्यवस्था की जाती है । "राजनीति" संविधान के प्रयोग पक्ष का नाम है । जिन नियमों, पद्धतियों और विधानों के अनुसार राज्य अपने देश का शासन चलाता है, वह राजनीति कहलाती है । राजनीति समाज व्यवस्था को पूर्णता प्रदान करती है । समाज को सुचारू रूप से चलाने केलिए नियमों की आवश्यकता है । राजनीति इस आवश्यकता की पूर्ति करती है । अत: समाज और राजनीति का परस्पर सम्बन्ध अनुपेक्षणीय है।

समाज और अर्थ

आर्थिक प्रणाली का सामाजिक संगठन से गहरा सम्बन्ध है । भारतीय दर्शन के अनुसार अर्थ पुरुषार्थ-चतुष्टय में एक है । आर्थिक ढाँचे पर ही युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ढाँचा आश्रित रहता है, आर्थिक परिवर्तनों के साथ समाज में भी परिवर्तन होता है ।

बीसवीं शती के समाज में अर्थ का महत्त्व बढ गया है । आज समाज का आधार अर्थ माना जाता है । अर्थहीन व्यक्ति समाज में उपेक्षित-जैसा है । समाज में जो वर्ग वैषम्य आज भीषण रूप से मौजूद है, उसका आधार भी अर्थ-व्यवस्था है । समाजवादी समाज की कल्पना भी अर्थ पर आधारित है । देश की बदलती हुई अर्थ-व्यवस्था के प्रभाव में

सामाजिक सम्बन्ध भी बदल रहे हैं[1]। मार्क्स ने समाज की प्रत्येक क्रिया के मूल में आर्थिक व्यवस्था को स्वीकार किया है।

समाज और संस्कृति

सृष्टि के प्रारंभ में अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी एक प्राकृतिक जीव था। सृजनात्मक वृत्ति ने उसको सांस्कृतिक प्राणी बना लिया। मनुष्य के प्राकृत राग-द्वेषों में परिवर्तन हो जाने की अवस्था संस्कृति है। यह सामाजिक जीवन की आंतरिक मूल प्रवृत्तियों का संश्लिष्ट रूप है। समाजशास्त्रियों[2] ने सांस्कृतिक विरासत के रूप में प्राप्त सभी प्रकार के ज्ञान को संस्कृति कहा।

संस्कृति समाज की रागात्मक चेतना का वाचक है[3]। यह समाज में मनुष्य के जीवन को उन्नत बनानेवाली एक व्यापक अवधारणा है। सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। "सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का[4]। समाज और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए दिनकर ने लिखा - "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिये जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है संस्कृति हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है[5]।"

---

1. अमृतराय - सहचिंतन, पृ.150
2. Leonard Broom and Philip selznick - Principles of Sociology, p.50
3. डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.8
4. डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क, पृ.181
5. दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ.653

इस प्रकार संस्कृति धर्म, शिक्षा, राजनीति, दर्शन, कला, साहित्य, अर्थ आदि जीवन के सभी पहलुओं से जुडे हुए हैं और राष्ट्र एवं समाज विशेष की गतिविधियों का परिचय कराती है ।

समाज और धर्म

मानव जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान होता है । वह संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है, और इसलिये समाज का भी । आदिम समाज में वर्षा, तूफान, भूकम्प, बिजली आदि से अपनी रक्षा करने में मनुष्य असमर्थ था । इस अवसर पर कुछ प्रतिभा शाली व्यक्तियों ने एक ऐसी शक्ति की रचना की जो आपत्ति से उनकी रक्षा कर सकती थी । धर्म का आरंभ इसी प्रकार हुआ होगा । धर्म, उच्चतम और सर्वाधिक मूल्यवान के प्रति पूर्णतया समर्पण है । धर्म ही सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता है ।

धर्म का सामाजिक पक्ष सबसे महत्वपूर्ण है । समाज शास्त्रियों[1] ने व्यक्ति तथा सम्पूर्ण समाज केलिये धर्म का प्रभावकारी स्थान स्वीकार किया है । प्राचीन भारतीय समाज परलौकिक और धार्मिक थे । "धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलू से है जो व्यक्तित्व केलिए एक महान तत्व है, अत: व्यक्ति या सम्पूर्ण समाज केलिए धर्म का एक प्रभावकारी स्थान है ।[2] आधुनिक युग में धर्म की प्राचीन मान्यतायें बदल गयी है । इसके बारे में अगले प्रकरणों में विस्तारसे विचार किया गया है ।

---

1. कृष्णकुमार मिश्र - सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, पृ. 107
2. वही, पृ. 107

समाज और शिक्षा

शिक्षा मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति हेतु प्राप्त किया जानेवाला प्रयोजनपूर्ण, सचेतन और लाभप्रद अनुभव और ज्ञान है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपने चारों ओर होनेवाले कार्यों में अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार भाग लेता है[1]। शिक्षा व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने योग्य बनाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य जीवन मनुष्य के योग्य बनता है। व्यक्ति और समाज के जीवन में जो कुछ भी विकास हुआ है, वह शिक्षा के द्वारा ही हुआ है। शिक्षा की कमी के कारण समाज में अपूर्णतायें दिखायी देती है। राष्ट्र की उन्नति भी शिक्षा प्रणाली पर आधारित है। प्राचीन काल में शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार गुरु पर रहा था। राज्य का शिक्षा पर नियंत्रण बिलकुल नहीं था। आधुनिक युग में अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा पर भी राजनीति का हस्तक्षेप हुआ।

इस प्रकार सामाजिक जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व होता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति समाजीकृत करके अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। सामाजिक संगठन की निरन्तरता केलिये सामाजिक सच्चाई आवश्यक है जो शिक्षा द्वारा ही संभव है। धार्मिक भावना का जागरण, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, समाज कल्याणकारी प्रवृत्ति पर बल देना, संस्कृति का प्रसार आदि भारतीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा के महद् उद्देश्यों पर आज परिवर्तन आ गया है।

---

1. लक्ष्मीकांत गुप्त - साहित्य परिचय, पृ.39
आगस्त 1974

साहित्य और समाज

व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण वाङ्मय को साहित्य कहा जा सकता है । "वाणी के माध्यम से आत्म तत्व की अभिव्यक्ति वाङ्मय है । साहित्य (काव्य) इसका एक भेद है[1] । "विकासशील मानव जीवन के मार्मिक अंशों की अभिव्यक्ति" यही साहित्य की मोटी परिभाषा हो सकती है[2] । साहित्य मनुष्य के स्वप्नों और कल्पनाओं को रूप देने वाली सशक्त कला है । समसामयिक घटनाओं से निरपेक्ष होकर अच्छे साहित्य का सृजन संभव नहीं है ।

साहित्य का मानवजीवन के साथ चिरंतन सम्बन्ध होता है । सामाजिक प्राणी होने के कारण क्रिया कलापों में ही नहीं विचारों में भी वह सामाजिक बना रहता है । समाज के किसी वर्ग से साहित्यकार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है । यह परिवेश रचनाकार की मनोवृत्ति और उसके द्वारा साहित्यिक चेतना को प्रभावित करती है । "साहित्य अपने व्यक्त या मूर्त रूप में रचना अथवा कृति है, किन्तु अव्यक्त रूप में कृति के पीछे कृतिकार का व्यक्तित्व और कृतिकार के व्यक्तित्व के पीछे उसका सामाजिक परिवेश रहता है । अतः साहित्य का एक छोर सामाजिक परिवेश के साथ अनिवार्य रूप से जुडा हुआ है[3] ।"

---

1. डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.88
2. नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न, पृ.3
3. डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.4

संस्कृत के आचार्यों ने साहित्य के सामाजिक परिवेश के महत्व की ओर संकेत किया है । यह परम्परा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में आयी । मध्ययुगीन भक्तिप्रधान रचनाओं में साहित्य और समाज के परस्पर सम्बन्ध का संकेत मिलता है । प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने भी साहित्य और समाज के सम्बन्ध को स्वीकार किया है । भरत के नाट्यशास्त्र से भारतीय काव्यशास्त्र का आरंभ होता है । इस में साहित्य के सामाजिक आधार के बारे में प्रचुर एवं प्रामाणिक उल्लेख मिलता है । जैसे -

> दुखार्तानाम्, श्रमार्तानाम्, शोकार्तानाम् तपस्विनाम् ।[1]
> विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति ।।

जिस प्रकार सामाजिक परिवेश साहित्यकार को प्रभावित करता है उसी प्रकार साहित्य व्यक्ति को प्रभावित करता है और उसके द्वारा समाज को भी । इस प्रभाव को आयुध बनाकर साहित्यकार समाज में परिवर्तन ला सकता है । "साहित्य केलिये मनुष्य से बड़ा और कोई दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है । जो साहित्य मनुष्य के सुख दुख का साझीदार नहीं, उससे विरोध करना है । जहाँ तक जीवन है, जहाँ तक मनुष्य है, जहाँ तक सृष्टि है वहाँ तक उसकी गति है । उसकेलिये कुछ भी त्याज्य नहीं है[2] ।

---

1. नाट्यशास्त्र - 1-114 (रघुवंश)
2. नीरज - दर्द दिया है - भूमिका

सामाजिक चेतना

जन्म के साथ मनुष्य में चेतना का उदय होता है । यह चेतना व्यक्तिगत अनुभूतियों एवं अनुभवों से गुजरती हुई युग परिवेश को पहचानकर सामाजिक चेतना का रूप धारण करती है । चेतना का धर्म वैयक्तिक एवं सामाजिक जागृति का धर्म है । यह मनुष्य की आत्मिक एवं सत्तात्मक एकता का धर्म है । प्राचीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास पर दृष्टि रखने पर यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक चेतना की अक्षुण्ण धारा निरंतर प्रवहमान होती रहती है । इस विकास क्रम में व्यक्ति की सत्ता और उसकी चेतना घुल-मिलकर अजस्र सामूहिकता का रूप धारण कर लेती है ।

सन् 1857 की क्रांति मे भारत की सामाजिक चेतना ने एक नया मोड लिया । राजाराम मोहनराय ने सामाजिक चेतना के विकास केलिए सती प्रथा का विरोध किया । दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना के द्वारा वैदिक स्मृतियों को सारे देश में प्रतिष्ठित किया । विवेकानन्द ने भारत की समग्र चेतना को आध्यात्मिक और भौतिक दोनों शक्तियों का संतुलित रूप प्रदान किया । इसका प्रभाव उस समय के साहित्य में भी दिखाई पडा ।

साहित्य में सामाजिक चेतना

साहित्यकार जिन परिस्थितियों में रचना करता है वह उसका सामाजिक परिवेश है । कृति की रचना जिन सामाजिक संदर्भों को आधार बनाती है और जिन परिस्थितियों में पूर्ण होती है वह कृति का सामाजिक परिवेश है । पाठक का परिवेश इन दोनों से प्रायः भिन्न होता है ।

इन तीनों सामाजिक परिवेशा का विश्लेषण साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन है[1]।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय देश की सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। मानव सभ्यता के विकास की आदिम अवस्था के समय समाज में धर्म की प्रधानता थी। इस कारण से उस समय धार्मिक कृतियों की रचना अधिक मात्रा में हुई। धार्मिक कृतियों के रचयिताओं को समाज में श्रेष्ठ स्थान होता था। भारतवर्ष का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है। आर्यों ने वेदों की रचना की। वेदों और उपनिषदों में दयालुता, सहिष्णुता, यज्ञ, कर्म, गृहस्थ जीवन जैसे समस्त सामाजिक क्रियाओं, आचार-विचारों का उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत में उस समय के सामाजिक जीवन का चित्र मिलता है। गीता समाज को कर्म का सन्देश देता है। कालिदास का रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तलम, भवभूति का उत्तररामचरितम् जैसी संस्कृत की विख्यात रचनाओं में तत्कालीन समाज जीवित रहता है।

रीतिकाल के कवि राज्याश्रित थे। वे अपनें आश्रयदाता के विषय में काव्य रचना करते थे। भक्तिकाल की रचनाओं में सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर है। मध्ययुग धर्म प्रधान युग था। इसलिये उस समय सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति धर्म के रूप में होती थी। उदाहरण तुलसी, कबीर।

---

1. डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.5-6

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति के सम्पर्क के फलस्वरूप देश भर में एक नवीन चेतना व्याप्त हो गयी । आधुनिक हिन्दी साहित्य में नवयुग की चेतना विभिन्न रूपों में उभरी है । अंग्रेज़ी शासन ने इस चेतना को उद्‌बुद्ध किया । भारतेन्दु युग में यह चेतना सामाजिक द्वन्द्व के रूप में थी । द्विवेदी युग में समाज सुधार के रूप में थी । छायावाद युग में मानवतावादी चिन्तन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति हुई । प्रगतिवाद युग में सामाजिक चेतना मार्क्सवादी विचारधारा के आवरण में प्रकट हुई । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साहित्य में विशेषकर कविता के क्षेत्र में सामाजिक चेतना जीवन की गहराई में प्रवेश करनेवाली है ।

कविता और सामाजिक चेतना

साहित्य की अभिव्यक्ति के दो रूप होते हैं - गद्य और पद्य अथवा कविता । "कविता मनुष्य के साधारण भावों का उन्मेष है[1] ।" कविता का जन्म आदिम समाज में जादुई क्रिया के रूप में हुआ था । वह दैवी शक्तियों के आवाहन और सामाजिक तादात्म्य का साधन थी । मध्ययुग में वह धार्मिक वृत्तियों की वाहिका या सामन्तों को देवतुल्य स्थिति में पहुँचाने का अस्त्र था । कविता का श्रेष्ठत्व उसके मूल में स्थित जीवन चेतना का ही श्रेष्ठत्व है[2] ।

कवि समाज का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी है । "कवि वह बात कहता है जिसको सब लोग अनुभव करते हैं किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते । सहृदयता के कारण उसकी अनुभव शक्ति औरों से

---

1. डॉ॰ रत्नाकर पाण्डेय - हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना, पृ॰26
2. नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न, पृ॰29

बढी चढी होती है । कवि की पुकार समाज की पुकार होती है, वह समाज के भावों को अपनी वाणी का बल ही नहीं देता वरन् कभी उन्हें नई दिशा भी देता है ।[1]"

हिन्दी कविता के क्षेत्र में सामाजिक चेतना का समावेश आदि काल से हुआ है । सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य बौद्ध धर्म और जैन मत का प्रचार करने के उद्देश्य से लिखा गया । राजाओं के चरित तथा प्रशंसा केलिये रासो काव्य लिखा गया । उदाहरण - खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो ।

मध्ययुग में कबीर, सूर, तुलसी जैसे महान कवियों ने समाज का मार्ग दर्शन किया । पूर्व मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था दयनीय थी । सती प्रथा प्रचलित थी । दास प्रथा खूब चलती थी । आर्थिक असमानता समाज को खा रही थी । हिन्दु जनता धार्मिक अत्याचारों का शिकार बना था । हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयत्न ज़ोर से हुआ । इस समय हिन्दु जनता ने ईश्वर की उपासना की और भक्ति मार्ग का उदय हुआ । इसी समय भारत में सूफी मत का प्रचार हुआ । मध्ययुग में वर्णव्यवस्था ने कठोर रूप धारण किया । मुसलमानों के प्रभाव से पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ । हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म के बीच संघर्ष हुआ । हिन्दी के भक्त कवियों ने तीखी वाणी में समाज की आलोचना की । कबीर ने जाति पाँति, अन्धविश्वास,

बाह्याडम्बर मूर्तिपूजा आदि सामाजिक कुरीतियों का खुलकर विरोध किया । समाज में व्याप्त दुराचारों के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठाई । साम्प्रदायिक भेद भावना का विरोध करके हिन्दु-मुस्लीम एकता का सन्देश दिया । "रामचरितमानस" में तुलसीदास ने अपने समय के समाज का चित्रण किया और रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया । सूरदास के पदों में ब्रज की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का रूप मिलता है ।

1· गुलाबराय - काव्य के रूप, पृ·5

रीतिकालीन कविता में उस समय के विलासितापूर्ण समाज प्रतिफलित होता है । रीतिकालीन कवि दरबारी थे । इसलिये इस काल की कविता में एक सीमित विशिष्ट वर्ग के जीवन का चित्रण होता है । इस काल की कविता में श्रृंगार रस प्रमुख है । आधुनिक युग में आते तो कविता में सामाजिक एवं सामयिक यथार्थ के चित्रण का आग्रह बढने लगा और इसकी चरम परिणति स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कविताओं में देखा जा सकता है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के दूसरे प्रकरण में इसका विश्लेषण किया गया है ।

उपन्यास और सामाजिक चेतना

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल में काव्य की रचना अधिक होती थी । उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य के प्रचार के साथ हिन्दी में कहानी और उपन्यास की रचना आरंभ हुई । बीसवीं शताब्दी के पूर्व उपन्यास केवल मनोरंजन केलिये लिखा जाता था । धीरे धीरे विशेष उद्देश्यों के प्रचार और समाज सुधार के लिये उपन्यासों की रचना आरंभ हुई । "हिन्दी उपन्यास का आरंभ उपदेश, नीति और सुधारवादिता से हुआ था और आज वह कृषक, श्रमिक, मध्यम वर्ग तथा समाज के अन्य दलित और उपेक्षित वर्गों के चित्रण से विकसित हो रहा है[1] ।"

भारतेन्दु के समय से लेकर उपन्यासों में सामाजिक चेतना जागृत हुई । सामाजिक और धार्मिक सुधार, गुण दोषों का विवेचन, नैतिक अनुशासन आदि इस काल के उपन्यासों का उद्देश्य था ।

---

1. डॉ. कुंवरपालसिंह - हिन्दी उपन्यास-सामाजिक चेतना, पृ.23

"त्रिवेणी", "स्वर्गीय कुसुम",[1] "नये बाबू"[2] और "कल्पलता"[3] में देश-प्रेम और सामाजिक कुरीतियों का विरोध मुख्य विषय रहा । "निस्सहाय हिन्दू" (राधाकृष्णदास) में मुसलमानों की धर्मान्धता और हिन्दुओं की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति है । "स्वर्गीय कुसुम" देवदासी प्रथा का विरोध करता है । "परीक्षा गुरु" के सेठ मदनमोहन भारतीय समाज के पतन का प्रतीक है ।

आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि संस्थाओं की सुधारवादी आन्दोलनों के माध्यम से भारत में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ । इन सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव प्रारंभिक उपन्यासों में पड़ा है । राजाराम मोहनराय, दयानन्द सरस्वति प्रभृति समाज सुधारकों का विश्वास था कि भारतीय समाज का उत्थान, भारतीय नारी के उत्थान के बिना संभव नहीं है । इस विचारधारा से प्रभावित होकर उपन्यासकारों ने नारी जीवन की विविध समस्याओं को अपनी रचनाओं में प्रथम बार स्थान दिया । "स्वतंत्र रंभा और परतंत्र लक्ष्मी", "बिगड़े का सुधार", (लज्जाराम शर्मा), "इन्दुमति वा वन विहँगिनी", "प्रेममयि" (किशोरीलाल गोस्वामी) आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में सामाजिक चेतना का सर्वोच्च प्रमाण प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है । प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव समाज से जोड़कर उसे एक निश्चित दिशा प्रदान की और एक सुदृढ परम्परा की शुरुआत भी की । राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता संग्राम और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रूसी क्रांति इस काल के उपन्यासकारों को प्रभावित किया ।

---

1. किशोरीलाल गोस्वामी
2. गोपालराम गहमरी
3. राधाचरण गोस्वामी

गोदान में प्रेमचन्द ने प्रेम, विवाह, परिवार, नैतिक मूल्य, नारी की स्थिति आदि पर विचार किया है। वेश्या के प्रति सहानुभूति और इस घृणित वृत्ति का उन्मूलन करने की इच्छा और प्रेरणा "सेवासदन" में मुखरित है। विधवाओं की दयनीय स्थिति और उससे उत्पन्न समस्याओं को "परख §जैनेन्द्र§, "पतिता की साधना" §भगवतीप्रसाद वाजपेयी§, "प्रेमाश्रम" §प्रेमचन्द§, "संगम" §वृन्दावनलाल वर्मा§ आदि उपन्यासों में चित्रित किया है। "निर्मला" में अनमेल विवाह की समस्या पर विचार किया गया है।

भारतीय हिन्दु समाज का मूल आधार संयुक्त परिवार था। उन्नीसवीं शती में पाश्चात्य सभ्यता से सम्पर्क के कारण संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली टूट गयी। "रंगभूमि" §प्रेमचन्द§ और "प्रेमपथ" "भगवतीप्रसाद वाजपेयी§ पारिवारिक सम्बन्धों का चित्र प्रस्तुत करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक जटिलताओं के कारण सामाजिक जीवन की परिकल्पना नगरों में समाप्त हो गयी। मानव मूल्यों में ह्रास हुआ। "अपने अपने अजनबी" §अज्ञेय§ "सूरज का सातवाँ घोड़ा" §धर्मवीर भारती§, पथ की खोज" §देवराज§ जैसे उपन्यासों में जो अकेलेपन, कुंठा, संत्रास और मानसिक यातनाओं का चित्रण मिलता है उसका कारण यह है। देश के नवनिर्माण की चेतना "सपना, बिक गया" में है §भगवती प्रसाद वाजपेयी§, "आखिरी दाँव" §भगवतीचरण वर्मा§ में पूंजीवाद का विरोध और आर्थिक विषमता से उत्पन्न नैतिक पतन का चित्र मिलता है। "भूले बिसरे चित्र" §भगवती चरण वर्मा§ मध्यवर्ग की महत्वाकांक्षाओं का चित्र प्रस्तुत करता है। "धर्मपुत्र" §चतुरसेन शास्त्री§ साम्प्रदायिक दंगों का चित्र प्रस्तुत करता है। "मनुष्य के रूप" §यशपाल§ भी जाति-वर्ग भेद भावना के ऊपर मानवीय ऐक्य और एकता पर बल देनेवाला उपन्यास है।

आर्थिक अभाव, बेकारी, मूल्यों के विघटन आदि से त्रस्त युवा पीढी "गिरती दीवारें" {उपेन्द्रनाथ अश्क} में उभरती है । "सीधे सादे रास्ते", "हुजूर" {रांगेय राघव}, "बीज" {अमृतराय}, "उखडे हुए लोग" {राजेन्द्र यादव} आदि उपन्यास भी युवा पीढी के मानसिक संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं । इन उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का स्वर भी होता है । रांगेय राघव "बन्दूक और बीन" में युद्ध की भीषणता देखकर शांति केलिये आह्वान करता है । समाज के प्रति अपने दायित्व के प्रति नारी की जागृति "तट के बन्धन" {विष्णु प्रभाकर} में देखा जा सकता है । "झूठा सच" जैसे {यशपाल} स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के विविध पदों को अपनी गहराई के साथ अभिव्यक्ति देनेवाले उपन्यासों की रचना भी आलोच्य काल में हुई जो स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य की उपलब्धि कही जा सकती है ।

कहानी और सामाजिक चेतना

कहानी के प्रारंभिक रूप वैदिक साहित्य में उपलब्ध है । इसके बाद उपनिषद्, पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में कथा साहित्य विकसित होता गया । सन् 1900 ई॰ में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन से हिन्दी कहानी का युग आरंभ हुआ । "आरंभिक काल में लिखी गयी कहानियों में कुछ शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर, कुछ संस्कृत के नाटकों के आधार पर, कुछ बंगला कहानियों को रूपांतरित करके, कुछ लोक कथाओं से प्रेरणा लेकर और कुछ जीवन की वास्तविक घटनाओं को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत की गयी । सन् 1912-18 ई॰ में कहानी को साहित्य क्षेत्र में पूर्ण प्रतिष्ठा मिली । यह देश में राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल का

1॰ डॉ॰ नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰522

युग था । स्वतंत्रता संग्राम का समय था । दो विश्वयुद्ध हो चुके । रूसी क्रांति ने भी कलाकारों और साहित्यकारों को प्रभावित किया । साम्प्रदायिकता ने ज़ोर पकड़ी । किसान जमींदारों के शोषण का शिकार बन गया । इन परिस्थितियों का पूरा प्रभाव इस काल की कहानियों में देखा जा सकता है । उदाहरण केलिये "पूस की रात", "पछतावा", "बेटी का धन" (प्रेमचन्द) आदि कहानियाँ ली जा सकती है । यशपाल की "भस्मावृत चिनगारी", "तर्क का तूफान" आदि भी इसी प्रकार की कहानियाँ है । "महफिल" (भैरवप्रसाद गुप्त) में अस्पृश्यता पर विचार व्यक्त किया है । "यह कंचन सी काया", "पोली इमारत" जैसी कहानियों में "उग्र" जी ने नारी समाज का चित्रण किया है । परिवर्तन और सुधार की कामना इन कहानियों में मुखरित है । "बात बात में बात" (यशपाल), "पाँच गधे" (रांगेय राघव), "जीवन के पहलू", "कस्बे का दिन", "भोर के पहले" (अमृतराय) आदि कहानियों में आर्थिक असमानता और समाजवाद की प्रतिष्ठा का आग्रह मिलता है ।

नाटक और सामाजिक चेतना

आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व भारत वर्ष में नाट्य कला का जन्म और विकास हो चुका था । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जो नाटक रचना हुई, केवल मनोरंजन उनका लक्ष्य था । अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों ने भारत के बडे नगरों में अपने मनोरंजन केलिये नाट्य शालाओं की स्थापना की । "19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवोत्थान कालीन भावना से प्रेरित संस्कृत और अंग्रेज़ी साहित्य के अनुशीलन के फल स्वरूप और फिर से अनुकूल वातावरण पाकर हिन्दी नाट्य साहित्य का जन्म हुआ ।"[1] भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी नाटक का

---

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ.20।

जनक कहा जाता है । "भारत दुर्दशा", "अन्धेर नगरी" §भारतेन्दु§ "दुखिनी बाला" §राधाकृष्णदास§ आदि नाटकों में भारत की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है । इनमें अंग्रेज़ों की प्रशंसा करने के साथ उनकी निन्दा भी की गयी । बाल-विवाह, छूत-अछूत, अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध इन नाटककारों ने आवाज़ उठायी ।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में नाट्य साहित्य का प्रधान उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार एवं देश प्रेम था । बीसवीं शती के प्रारंभ में रामायण, महाभारत और पुराण नाटकों की मूल प्रेरणा रहे । इस समय के नाटकों में पराधीनता जन्य व्यथा गहरी थी । "चन्द्रगुप्त" "जनमेजय का नागयज्ञ", "अजातशत्रु", §प्रसाद§ आदि नाटकों में वर्तमान की क्षतिपूर्ति अपने गौरवमय अतीत में करने का प्रयत्न किया गया है ।

अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों में फँसकर पतित हो गये हिन्दु समाज का चित्र और उसके उत्थान की भावना "आचार विडम्बना" §बालकृष्ण भट्ट§, "प्रेम जोगिनी" §भारतेन्दु§ आदि नाटकों का लक्ष्य था । हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य "रामलीला विजय" §बलदेव प्रसाद§ का विषय है । पाश्चात्य सभ्यता का रंग "नयी रोशनी का विष" §बालकृष्ण भट्ट§ में देखा जा सकता है । "एक-एक के तीन तीन" §देवकीनन्दन त्रिपाठी§ किसान की शोचनीय अवस्था प्रस्तुत करता है । "छठा बेटा" §अश्क§, "नींव के दरारें" §कृष्णकिशोर श्रीवास्तव§ "टूटते परिवेश" §विष्णु प्रभाकर§ आदि नाटकों में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की समस्या मुखरित है । "आधी रात"§लक्ष्मीनारायण मिश्र§, "कमला" §उदयशंकर भट्ट§ आदि नाटक स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनानेवाले हैं । "चिराग की लौ" में रेवतीसरन शर्मा स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देता है । "व्यक्तिगत" §लक्ष्मीनारायण लाल§ "राक्षस का मंदिर" §लक्ष्मीनारायण मिश्र§ आदि नाटकों में पूंजीवाद का विरोध है ।

"मिस्टर अभिमन्यु" (लक्ष्मीनारायण लाल), "त्रिशंकु" (ब्रजमोहन सहाय) जैसे नाटक राजनीति की आलोचना करते हैं । "अंजो दीदी" (अश्क) आधे-अधूरे (मोहन राकेश) आदि नाटक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं । "युगे-युगे क्रांति" में विष्णु प्रभाकर और "बिना दीवारों का घर" में मन्नू भण्डारी और "एक और द्रोणाचार्य" में शंकर शेष ने विधवा समस्या पर विचार किया है ।

निष्कर्ष

पहला अध्याय शोध विषय की भूमिका का काम करता है । इस अध्याय में सर्वप्रथम "चेतना" को वर्णित करने का प्रयास किया गया है । चेतना को जीवन का धर्म माना गया है । समाज को मानवीय सम्बन्धों के आधार पर परिभाषित की गयी है । समाज का उद्भव और विकास, सामाजिक संगठन, परिवार, व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध आदि विषयों पर भी विचार किया गया है । परिवार को समाज की मूल संस्था मानी गयी है । भारतीय पारिवारिक व्यवस्था की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के साथ ही संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली की त्रुटियों का भी उल्लेख किया गया है । परिवार की प्रवेशक संस्था के रूप में विवाह को चित्रित किया गया है ।

समाजशास्त्रीय अध्ययन के विभिन्न आयामों पर भी इस अध्याय में विस्तार से विवेचन किया गया है । समाज का, राजनीति, अर्थ, संस्कृति धर्म शिक्षा और साहित्य से जो सम्बन्ध है, उसको इस अध्याय में उद्घाटित किया गया है । कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं में पायी जानेवाली सामाजिक चेतना का भी विश्लेषण किया गया है और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि साहित्य की चेतना और सामाजिक चेतना में गहरा सम्बन्ध है ।

ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ

अध्याय - दो

स्वातंत्र्यपूर्व हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना

स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि

साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्त है । इसलिए उसकी पृष्ठभूमि के रूप में सामाजिक परिवेश का बड़ा महत्व है । परिवेश की ठीक जानकारी के बिना किसी भी काल के साहित्य को समझा नहीं जा सकता । अतः स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता के अध्ययन के साथ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी यहाँ अध्ययन किया गया है ।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

युग-युग से भारतीय जनता विदेशी आक्रमणकारियों के शोषण का शिकार बनी रही । ईसा के पूर्व छठी शताब्दी से ही ईरानी, यवन, मुगलों, अरबों और मराठों ने इस देश में अपना अपना अधिकार स्थापित किया था ।

प्राचीन काल से ही रोम, वेनीस, जेनेवा आदि यूरोपीय राज्यों के साथ भारत का व्यापार सम्बन्ध हो रहा था । अरबों ने पुराने व्यापारिक मार्गों पर अपना अधिकार जमा लिया । इसलिये यूरोपियनों को नए मार्ग खोजने पडे । पुर्तगल के वास्कोडिगामा 1498 ई॰ में जलमार्ग से भारत आया । उन्होंने भारत के साथ व्यापार किया । उन्होंने पुर्तगली ईस्ट इंडिया कम्पनी और गोआ में अपनी राजधानी स्थापित की । फिर भी स्वतंत्र रूप से काम नहीं कर सकते थे । प्रत्येक कार्य केलिये उनको गृह सरकार से अनुमति लेनी पड़ती थी । उनकी धार्मिक नीति से भारतीय जनता असन्तुष्ट थी । दूसरी ओर डच लोगों की शक्ति बढ़ रही थी ।

पुर्तगल के बाद डच और फ्रांसीसी व्यापारियों ने भारत के साथ व्यापार किया । उन्होंनें अपनी ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित की और बाद में अधिकार की लालसा जागने से भारत पर शासन करना चाहा । लेकिन वे भारत की ज़मीन पर टिक न सके ।

1600 ई॰ में भारत में इंग्लिज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य व्यापार था । कुछ वर्षों के पश्चात् उन्होंने भारत में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया । उस समय भारत में

राजनैतिक एकता न थी । भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त थे जो आपस में लडा करते थे । औरंगसेब की मृत्यु के बाद मराठों ने भारत पर शासन किया । उनके पश्चात् कोई शक्तिशाली सम्राट न हुआ जो सम्पूर्ण भारत पर शासन करे । भारत में केन्द्रीय शासन की दुर्बलता और आंतरिक कलह से लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया और सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में बंगाल के अंतिम बहादुर नवाब सिराजुदौला को पराजित कर क्लाईव ने भारत में अंग्रेज़ी राज्य की नींव डाली । वारन हेस्टिंग्स ने यह नींव दृढ बनायी ।

पहले भारतीय जनता ने ब्रिटिश शासन को वरदान माना था । अंग्रेज़ों ने भारत में आकर यातायात तथा आवागमन के साधनों की व्यवस्था की । शिक्षा का व्यापक प्रचार किया । इन सबके होते हुए भी भारतीय सच्चे अर्थ में गुलाम था । अंग्रेज़ों ने भारतीय को सदा हेय दृष्टि से देखा । उन्होंने भारतीयों को अयोग्य समझकर शासन विभाग से उनको अलग रखा था । मनरो[1] ने ठीक ही कहा कि स्वतंत्रता नष्ट करनेवाले व्यक्ति को उसका आधा जीवन ही नष्ट हो जाता है । जिस प्रकार एक गुलाम व्यक्ति एक साधारण व्यक्ति के अधिकारों से वंचित रहता है उसी प्रकार एक परतंत्र राष्ट्र एक स्वतंत्र राष्ट्र के अधिकारों से भी वंचित रहता है । ऐसे एक राष्ट्र को, जनता से कर वसूल करना, नियमों का निर्माण करना, शासन कार्यों में भाग लेना आदि अधिकार भी नष्ट हो जाते हैं । ब्रिटिश भारत को ऐसा कोई अधिकार नहीं था ।

---

1. Remesh Dutt - The Economic History of India under early British Rule, p.163 में उद्धृत

ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा किये गये राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक अत्याचारों के कारण जनता के हृदय में विद्रोही भावना प्रबल हुई । परतंत्र भारतीय जन मानस की स्वतंत्रता की चेतना का भीषण विस्फोट था सन् 1857 की क्रांति जो इतिहास में सिपाही विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है । क्रांति असफल रही । भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथों में आ पहुँचा । विक्टोरिया के घोषणा-पत्र से क्रांति की आग बुझ गई । भारतेन्दु जैसे कवियों के मुख से ब्रिटिश शासन के स्तुतिगीत निकलने लगे ।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई जो भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है । क्योंकि कांग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आज़ादी की लडाई का इतिहास है[1] । सन् 1904 में जापान ने रूस को पराजित करके यूरोपीय राज्यों की अजेयता की कल्पना को गलत सिद्ध किया । "बंग-भंग" ने बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया । बंगाल के विभाजन से भारत में स्वतंत्रता केलिये संघर्ष का वास्तविक जागरण हुआ[2] ।"

राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने केलिए अंग्रेज़ों ने भारत में साम्प्रदायिकता का बीजारोपण किया । इसी समय राजनीतिक रंगमंच पर गाँधीजी का प्रवेश हुआ । प्रथम विश्वयुद्ध में कांग्रेस ने गाँधीजी के नेतृत्व में अंग्रेज़ों की सहायता की । किंतु युद्ध के बाद स्वतंत्रता देने का वादा उन्होंने पूरा नहीं किया । इसलिये राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोर पकडा । खिलाफत आन्दोलन के कारण हिन्दु मुस्लिम ऐक्य स्थापित हो चुका था । गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ । 1930 में उन्होंने दांडी यात्रा करके नमक कानून तोड दिया । विदेशी माल का

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ. 12
2. R.C. Majumdar – History of Freedom Movement in India, Vol. II, P. 131

बहिष्कार किया गया । इस युग के कवियों ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की अनुमति के बिना भारत को युद्ध में घसीट लिया । इसमें क्रुद्ध होकर मंत्रि-मण्डलों ने पद-त्याग किया । सन् 1942 में कांग्रेस ने "भारत छोडो" प्रस्ताव को पास किया । सन् 1946 में भारत में मध्यकालीन सरकार का निर्माण हुआ । मुस्लिम लीग और उनके नेताओं ने पाकिस्तान की माँग की । साम्प्रदायिक दंगों ने भीषण रूप धारण किया । 15 आगस्त 1947 को पाकिस्तान और भारत - दो टुकडों में बंट गया और भारत स्वतंत्र हुआ ।

सामाजिक पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि में 19 वीं और 20 वीं शताब्दी का विशेष महत्व रहा है । 19 वीं शताब्दी के आरंभ में अंग्रेज़ों ने भारत की ज़मीन पर आधिपत्य स्थापित किया । इसके फलस्वरूप भारतीय सामाजिक संगठन में बुनियादी परिवर्तन हुआ । इसके पहले, जिस प्रकार भारत का राजनीतिक वातावरण अस्त-व्यस्त था, उसी प्रकार समाज भी रूढि, अन्धविश्वास, छुआ छूत की भावना आदि से दूषित रहा था । जाति-पाँति का बन्धन कठोर होता जा रहा था । नारी भोग्या मात्र रह गयी । सती प्रथा - जो पति के मर जाने पर पत्नी के स्वयं या बलात्कार से चिता में जलने की प्रथा थी - प्रचलित थी ।

अंग्रेज़ों के शासन काल में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार और पश्चिमि सभ्यता के प्रभाव से भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया । औद्योगीकरण के कारण हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था पर चोट लगी । लोग अपने परम्परागत पेशे छोड कर दफ्तरों, मिलों और कारखानों में काम करने लगे । अछूतोद्धार एक राजनैतिक समस्या बन गया । संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली टूटने लगी । रूढियों और अन्धविश्वासों का विरोध होने लगा ।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में कई सामाजिक संस्थाओं का जन्म हुआ जिन्होंने प्राचीन धर्म को नये समाज के अनुरूप लाने का प्रयत्न किया । ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि ऐसी संस्थायें थी जिनके प्रवर्तक क्रमशः राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द और एनी बसन्ट थे ।

ब्रह्म समाज

राजाराम मोहनराय ने सन् 1815 में ब्रह्म समाज की स्थापना की । उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया । उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1817 में लार्ड विलयं बैंटिक ने सती प्रथा को कानून द्वारा रोक दिया । ब्रह्म समाज ने जाति-प्रथा को अमानवीय घोषित किया । विधवा विवाह का समर्थन किया । अपने सुधारवादी कार्यों में मोहन राय को कट्टर हिन्दु और ईसाई पादरियों के विरोध का सामना करना पडा । सभी धर्मों के प्रति ब्रह्मसमाज सहानुभूतिपूर्ण और उदार था ।

ब्रह्मसमाज का उद्देश्य एक ऐसी सार्वभौम संस्कृति की स्थापना थी जिसमें पूर्व और पश्चिम दोनों संस्कृतियों का मेल हो सके। इसलिये इसमें पौराणिक विश्वासों पर आधारित राम या कृष्ण की साम्प्रदायिक भक्ति के स्थान पर व्यापक ईश्वरत्व की उपासना पर बल दिया गया[1]। ब्रह्म समाज के उपदेशों में विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम की भावना निहित थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ टागोर, केशव चन्द्रसेन प्रभृति विद्वानों ने ब्रह्म समाज के लक्ष्यों को आगे बढाया।

आर्य समाज

सन् 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। वैदिक मत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करके उन्होंने समाज में गौरव की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। उन्होंने मूर्ति-पूजा, बाल-विवाह, अस्पृश्यता आदि का विरोध किया, विधवा विवाह का समर्थन किया, स्त्री-शिक्षा का प्रोत्साहन किया। उन्होंने समाज सुधार पर विशेष बल दिया। उत्तर भारत के सामाजिक जीवन पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव पडा।

वेदों की नवीन ढंग से व्याख्या करने के अलावा स्वामी दयानन्द ने भारतीय समाज की भौतिक उन्नति केलिए पाश्चात्य शिक्षा को भी स्वीकार करना आवश्यक बताया। "कन्या शिक्षा और ब्रह्मचर्या का आर्य समाज ने इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी प्रांतों में साहित्य के भीतर एक प्रकार की पवित्रतावादी भावना भर गयी और हिन्दी के कवि कामिनी-नारी की कल्पना मात्र से घबराने लगे[2]।

---

1. शम्भूनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ.23
2. दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ.564

थियोसोफिकल सोसाईटी

वास्तव में थियोसोफिकल सोसाईटी की स्थापना सन् 1875 में न्यूयोर्क में मदाम ब्लेवात्स्की और आलकाट द्वारा हुई थी। भारत में इस संस्था की स्थापना सन् 1882 में हुई और एनी बसेंट इसकी मुख्य प्रवर्तक थी। "सभी मनुष्य एक ही परम सत्ता से निकले और सभी धर्मों के अच्छे लोग एक समान पवित्र हैं। धर्म की भिन्नता से एक मनुष्य दूसरे से भिन्न नहीं हो जाता है"[1] इस संस्था की मूल विचारधारा यह थी।

श्रीमती एनी बेसन्ट ने हिन्दु धर्म को विश्व के धर्मों में सबसे प्राचीन और सबसे श्रेष्ठ माना था। तिलक द्वारा चलाये गये होमरूल आन्दोलन से प्रेरणा पाकर उन्होंने भारत की राजनीति में भी काम किया। उन्होंने बनारस का "सेन्ट्रल हिन्दु कालेज जैसी शिक्षा संस्थायें खोल दी। इन संस्थाओं के द्वारा उन्होंने अपने आदर्शों का प्रचार भी किया।

प्रार्थना समाज

सन् 1867 में बम्बई में केशव चन्द्रसेन के प्रभाव से प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसका प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद रनाडे थे। समाज के सभी क्षेत्रों में उनकी दृष्टि गयी। उनके मतानुसार "समाज जीवित अवयवों का संगठन है, जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया

---

1. दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ.569

चलती रहती है । इस प्रक्रिया के बन्द हो जाने से समाज मुर्दा हो जायेगा ।[1]" रनाडे ने बाल-विवाह और जाति-भेद का विरोध किया, स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह और अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया । समाज परिष्कार के प्रति उनकी अभिरुचि थी । वे परम्परा को तोडना नहीं चाहते, वरन् उसमें सुधार लाना चाहते थे ।

उपर्युक्त सुधारवादी आन्दोलनों को मात्र धार्मिक या सामाजिक कहना गलत है। वे धार्मिक और सामाजिक दोनों थे । उस समय के कवियों ने भी इन आन्दोलनों को सार्थक औरसफल बनाने केलिए अपना योगदान दिया । भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की कविताओं में इस बात का स्पष्ट प्रमाणमिलता है ।

आर्थिक पृष्ठभूमि

अंग्रेज़ों के शासन के पहले भारत की अर्थ व्यवस्था गाँवों पर आधारित थी । गाँव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर था । मार्क्स ने इस बात का उल्लेख करते हुए "कैपिटल" में लिखा है कि सब लोग मिलकर खेती करते हैं और आपस में पैदावार बाँट लेते हैं । इनके साथ साथ कातने और बुनने का काम प्रत्येक परिवार में सहायक धन्धे के रूप में होता है[2] । ज़मीन पर सबका समान अधिकार था ।

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.449
2. राजकुमार - भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.178 में उद्धृत

वैदिक काल से खेती हमारे प्रमुख धन्धे के रूप में चल रही है। मुगल बादशाहों के शासन काल में भारत समृद्ध था। सन् 1757 के लगभग भारत की आर्थिक स्थिति बिगड गई।

18 वीं शती के उत्तरार्द्ध में यूरोप में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पादन के नये नये साधनों का आविष्कार हुआ। इसके फलस्वरूप तैयार किये गये माल की खपत केलिये इंग्लैंड ने भारत में अपना बाज़ार बनाया। औद्योगिक क्रांति का प्रभाव भारत पर भी पडा।

अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना ने भारत की आर्थिक व्यवस्था को क्षति पहुंचायी। अंग्रेज़ों ने भारत से कच्चे माल इंग्लैंड भेजे और तैयार किये गये माल से भारत का बाजार भरा दिया। भारत के कुटीर उद्योग नष्ट-भ्रष्ट हो गये। कारीगर, दस्तकार और शिल्पकार को अपना प्राचीन जीविकाधार उद्योग नष्ट हो गया और वे खेती करने लगे।

अंग्रेज़ों ने भारत में ज़मीन्दारी प्रथा को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप किसानों की दशा अत्यंत शोचनीय बन गयी। भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार मिलने से जमीन्दार भूमि बेच सकते थे। इस प्रथा ने भूमि पर किसानों के अधिकारों को समाप्त किया।

विक्टोरिया के शासन काल में भारत का आर्थिक शोषण हुआ। भारत के उद्योग-धन्धों को पूर्ण रूप से नष्ट करने केलिए लार्ड लिटन ने भारत में आयात की जानेवाली कई वस्तुओं पर से कर हटा दिया। भूख और अकाल के कारण लाखों व्यक्ति मर गये।

किसानों का भूमि कर बढाया गया । व्यापारी वर्ग पर नये नये टैक्स लगाये गये । दुर्भिक्ष और महामारियों से लोग पीडित हुए । मध्यकालीन सामंती व्यवस्था के स्थान पर पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई । ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इस देश में कई कारखाने खोले और अपनी पूंजी बढाने केलिए लाभप्रद वस्तुओं का ही निर्माण किया ।

दो विश्वयुद्धों के बाद देश की गरीबी बढी । कई बार अकाल पडा । अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति से समाज के उच्च वर्ग के लोगों को ही कुछ फायदा मिला । जिन लोगों ने पहले अंग्रेज़ी शासन को वरदान समझकर उनकी प्रशंसा की थी, उनको अंग्रेज़ों की शोषण नीति ने धक्का पहूंचाया । कवियों ने इस यथार्थ से जनता को परिचित कराने का प्रयत्न किया ।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

बाह्य विभिन्नतायें होने पर भी, प्राचीन काल से ही भारत में सांस्कृतिक एकता थी । "रक्त, रंग, भाषा, वेश, रीति-रिवाज और सम्प्रदाय आदि की असंख्य विभिन्नतायें रहते हुए भी एक मौलिक एकता रही है[1] ।"

वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत और गीता हमारी संस्कृति के आधार स्तंभ हैं । आर्यों ने वेदों की रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि जिस समय सम्पूर्ण विश्व अर्द्ध सभ्य था, उस समय भारत की सभ्यता उन्नति की चोटी पर पहुँची हुई थी[2] ।

---

1. क्षितीश्वरप्रसाद सिंह - भारत का इतिहास, पृ.164
2. वही, पृ.34

सत्य और अहिंसा - जिसको गांधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम में प्रबल शस्त्र के रूप में प्रयोग किया था - वैदिक काल से ही समाज में चली आ रही थी । महाकाव्य काल मे इन सिद्धांतों का प्रचार हो रहा था । बुद्धदेव ने अहिंसा को एक महान धर्म कहकर अपने नैतिक सिद्धांतों में इसको प्रमुख स्थान दिया । उपनिषदों ने समाज के सामने यह आदर्श उपस्थित किया है कि जीवन का सच्चा सुख भोग में नहीं, त्याग में है ।

वैदिक युग में लोग प्राकृतिक देवताओं-वायु, पृथ्वी और आकाश के देवताओं - की पूजा करते थे । जीवन में यज्ञ की प्रधानता होने के कारण वैदिक समाज में पुरोहितों और ब्राह्मणों का महत्व बढा । धीरे धीरे वैदिक धर्म दूषित हो गया तो इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन धर्मों का आविर्भाव हुआ । बुद्ध और महावीर के नेतृत्व में भारत में जो धार्मिक क्रांति हुई, उसकी छाप हमारी संस्कृति पर अवश्य पडी । अशोक, अकबर जैसे राजाओं ने देश की धार्मिक उन्नति केलिए अनेक कार्य किये ।

ऋग्वेद के मन्त्रों से पता चलता हैकि वैदिक काल में कविता उन्नत अवस्था में थी । गुप्त सम्राटों ने कवियों तथा विद्वानों का सम्मान किया था । हर्षवर्द्धन के शासन काल में साहित्य की विशेष अभिवृद्धि हुई ।

विदेशियों ने समय समय पर भारत पर आक्रमण किया । उन्होंने भारत को लूटा और भारत पर अधिकार भी स्थापित किया । लेकिन वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता से टक्कर न ले सके ।

अंग्रेज़ पहले विजेता थे जिन्होंने भारत को लूटने के साथ साथ उसकी संस्कृति और सभ्यता को भी ध्वस्त कर दिया।[1]

19 वीं शती के आरंभ से ही अंग्रेज़ों का ध्यान भारत के शिक्षा क्षेत्र की ओर गया। प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में संस्कृत, फारसी और अरबी की शिक्षा दी जाती थी। सन् 1835 में बेंटिक ने भारतवासियों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने की घोषणा कर दी। पाश्चात्य संपर्क और अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के कारण विद्यार्थियों का मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया, भारतीय समाज पर अंग्रेज़ी सभ्यता की गहरी छाप पडने लगी और भारतीय संस्कृति और सभ्यता को क्षति पहुँची।

भारतीयों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए मेकाले ने एक स्थान पर लिखा है "हम लोगों को मनुष्यों की एक ऐसी श्रेणी की सृष्टि करने केलिए भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए, जो रक्त और रंग में हिन्दुस्तानी हो किंतु रुचि, विचार, भाषा और बुद्धि में अंग्रेज़ हो[2]।

अंग्रेज़ शासकों ने भारतवासियों को राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता जैसे विचारों से दूर रखना चाहा। लेकिन ठीक इसकी विपरीत बात हुई। अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारत में पत्रकारिता को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की उन्नति हुई।

---

1. राजकुमार - भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.1
2. क्षितीश्वर प्रसाद सिंह - भारत का इतिहास, पृ.113-114 में उद्धृत

सांस्कृतिक दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता का जन्म उपर्युक्त वातावरण में हुआ । कवियों में पुनरुद्धार की भावना बलवती थी । नवीन सांस्कृतिक चेतना की प्रतिध्वनि इस युग की कविता में सुनाई पड़ती है ।

स्वातंत्र्य-पूर्व हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

19 वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास की प्रथम महत्वपूर्ण घटना सन् 1857 की क्रांति है । समाज में राष्ट्रीय चेतना का जागरण करनेवाला यह आन्दोलन मध्ययुग की समाप्ति और आधुनिक युग के आरंभ का सूचक माना जाता है । आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी यह क्रांति एक सीमारेखा है । इसके पूर्व, कविता में राजाओं के युद्ध, प्रेम, श्रृंगार आदि की धारायें प्रवाहित हो रही थी । सन् 1857 की क्रांति के बाद कविता ने जन-जीवन और राजनैतिक परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया ।

इस क्रांति के पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्ति तक के 90 वर्षों में हमारे देश में जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए, उसके साथ हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी कई नई प्रवृत्तियाँ उभर कर आयी ।

पाश्चात्य सभ्यता का जो प्रभाव भारत में बढने लगा, उसकी सामाजिक प्रतिक्रिया हिन्दी कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु और उनके युग के अन्य कवियों द्वारा हुई । भारतेन्दु युग एक संक्रान्ति युग माना

जाता है । प्राचीन सामाजिक परिस्थितियाँ और साहित्यिक मान्यतायें दुर्बल हो रही थीं और नवीन मान्यताओं की पूर्ण रूप से प्रतिष्ठा नहीं हो पायी थीं । मध्यकालीन निद्रा और अलसाई से जनता को जगाकर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध खड़ा करने में भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवियों ने महत्वपूर्ण कार्य किया । द्विवेदी युग ने समाज सुधार की ओर अधिक ध्यान दिया । छायावादी काव्य धारा ने, अन्तर्मुखी होते हुए भी, युग चेतना की उपेक्षा नहीं की । प्रगतिवाद ने समाजवाद का सन्देश दिया । इस प्रकार स्वातंत्र्य-पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता के विश्लेषण करने पर निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती है -

राष्ट्रीयता और देश-प्रेम

स्वातंत्र्य पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीयता की भावना है । सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् देशी राजाओं का आधिपत्य कम हो गया । इसलिये कवियों को दरबारों से बाहर जाना पड़ा । राजनीतिक क्षेत्र में जो आन्दोलन चल रहा था, कवियों ने उसका समर्थन किया । जनता के साथ मिलकर उन्होंने विदेशी सत्ता का विरोध किया । इस युग की कवितायें देश-प्रेम से भरी हुई है ।

देश-प्रेम और राजभक्ति भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता की विशेषतायें हैं । द्विवेदी युग में जागरण का स्वर प्रमुख है । भारत के अतीत गौरव का स्मरण करके छायावादी कवियों ने जन मानस में देश केलिये बलिदान होने की भावना जगाई । प्रगतिवादी कविताओं में भी आत्म बलिदान की भावना होती है ।

सामाजिक चेतना

समाज की कटु आलोचना करके उस में पायी जानेवाली कुरीतियों को दूर करने की प्रवृत्ति आलोच्य युग की कविताओं में सर्वत्र मिलती है । इस युग के कवियों ने अन्धविश्वासों, रूढियों, धार्मिक आडम्बरों के विरुद्ध आवाज़ उठाई । अस्पृश्यता, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती आदि का इन्होंने खुलकर विरोध किया । युग की समस्याओं को इन कवियों ने आँखें खुलकर देखा और अपनी कविताओं द्वारा समाज को सही मार्ग दिखलाने का प्रयत्न भी किया ।

नारी उत्थान की भावना

आलोच्य युग के कवियों ने नारी की सामाजिक स्थिति पर विचार किया । 19 वीं शती के सुधारवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप नारी को सामाजिक मान्यता मिली । वह राजनीति में भाग लेने लगी । बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति - सभी में नारी के प्रति अत्याचार किया जा रहा था । समाज सुधारकों के साथ मिलकर इस युग के कवियों ने इन अत्याचारों का विरोध किया, विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया और नारी को उनके सामाजिक अधिकारों के प्रति सचेत भी करायी । प्रसाद, पंत, निराला जैसे कवियों ने नारी के प्रति अत्यंत उदार एवं सम्मान पूर्वक दृष्टि प्रदर्शित की ।

आर्थिक शोषण का विरोध

आलोच्य युग के कवियों ने अँग्रेज़ों के आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्र समाज के सामने प्रस्तुत करके उसके विरुद्ध संघर्ष करने केलिए जनता का आह्वान किया । भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के कवियों ने विदेशी शोषण की ओर विशेष ध्यान दिया । विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग करने केलिए उन्होंने जनता को प्रेरणा दी ।

औद्योगीकरण ने जिस पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया उसके फलस्वरूप वर्ग-वैषम्य हुआ । प्रगतिवादी कवियों ने इस ओर अधिक विचार किया । उन्होंने समाजवादी समाज की स्थापना करने पर ज़ोर दिया - कुछ अहिंसा के द्वारा तो कुछ रक्त क्रान्ति द्वारा ।

किसान, मज़दूर और समाज के शोषित वर्गों के प्रति इस युग के कवियों ने विशेष सहानुभूति प्रकट की ।

सांस्कृतिक चेतना

भारत की सांस्कृतिक सुरक्षा इस युग के कवियों का लक्ष्य रहा । कवियों ने अँग्रेज़ों के अन्धानुकरण करनेवालों की निन्दा की । अँग्रेज़ी भाषा के उपासकों पर उन्होंने व्यंग्य किया और मातृभाषा के प्रति प्रगाढ अनुराग भी व्यक्त किया ।

भारतीय जनता में आत्मगौरव जगाने केलिए कवियों ने अतीत गौरव के गीत गाये । पौराणिक कथाओं का, वर्तमान समाज के अनुरूप,नवीन ढंग से व्याख्यायित किया गया । भारतेन्दु, गुप्त, पन्त, दिनकर जैसे कवियों ने भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था प्रकट की है ।

स्वातंत्र्य पूर्व हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना

भारतेन्दु युग

यद्यपि सन् 1857 की क्रांति असफल हुई, फिर भी उसने भारत में राष्ट्रीय नवजागरण की भूमिका प्रदान की । अंग्रेज़ी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के परिणामस्वरूप देश में एक नई चेतना उभर आई । साहित्य भी मध्यकालीन श्रृंगार या रीति निरूपण तक सीमित न रहकर सामाजिक चेतना का वाहक बनने लगा । हिन्दी कविता के क्षेत्र में यह आधुनिक युग के आविर्भाव का काल था जिसका श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हुआ । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस युग को भारतेन्दु युग का नाम दिया । सन् 1900 ई. तक इस युग की सीमा भी निर्धारित की गयी ।

भारतेन्दु युग एक संक्रांति युग माना जाता है । मध्ययुग और आधुनिक युग की चेतना इस युग में सम्मिलित है । इस युग के कवियों ने स्वतंत्रता संग्राम केलिए साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार की । खड़ीबोली गद्य का विकास इस युग में हुआ । राष्ट्रीयता और देशप्रेम इस युग की कविताओं की प्रमुख प्रवृत्ति रही है । समाज की नाना

प्रकार की समस्याओं की अभिव्यक्ति इन कविताओं में होती है । इस बात को स्पष्ट करने केलिए धीरेन्द्र वर्मा का निम्नलिखित कथन उपयोगी होगा - "भारतेन्दु युग के कवियों के काव्य का वैशिष्ट्य समाज की गंभीर और व्यापक चेतना तथा नाना समस्याओं की अभिव्यक्ति के कारण है[1] ।"

अंग्रेज़ों द्वारा "जाति मान धन सब कुछ लूटे" भारत का दयनीय रूप कवियों को सता रहा था । भारत की दासता पर भारतेन्दु युग के सभी कवियों ने दुख प्रकट किया है । भारतेन्दु ने पराधीन भारत का चित्र इस प्रकार खींचा है -

तुम दुखिया बहु दिनन की सदा अन्य आधीना ।
सदा और के आसरे रहो दीन मन खीन[2] ।।

जाति भेद, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा विवाह निषेध, अन्धविश्वास, धार्मिक आडम्बर आदि कुरीतियों को जड से उखाड फेंककर समाज की उन्नति करना भारतेन्दु, प्रेमघन, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त जैसे कवियों का लक्ष्य था ।

अंग्रेज़ निरंतर भारत का आर्थिक शोषण कर रहा था । महँगाई, टैक्स, अकाल आदि से जन जीवन कष्टपूर्ण बन गया । प्रेमघन की कलम से -

---

1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य, तृतीय खंड, पृ.45
2. भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग - II, पृ.706

"महँगी बढ़तहि जात, घटत है अन्न भाव नित: ।
जातें कोउ सुख सामग्री नहिं सुहात चित[1] ।।"

जैसी तीखी पंक्तियाँ निकलीं ।

भारत से कच्चा माल विदेश भेजकर वहाँ से उत्पादित वस्तुएँ भारत में ही अधिक मूल्य पर बेचनेवाले अँग्रेज़ों की आर्थिक नीति के प्रति समाज को जागृत करके भारतेन्दु ने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई[2] । स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग न करने से भारत की आर्थिक व्यवस्था शिथिल हो रही थी । व्यापारियों पर नए नए टैक्स लगाये गये । आर्थिक शोषण की तीव्रता देखकर भारतेन्दु ने लिखा -

सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई[3] ।।"

इस अवसर पर प्रेमघन ने लिखा -

रोओ सब मुँह बाय बाय । हय हय टिकस हाय हाय
रहे बिलाप्त जो हर साय । भारत माँ धन रोज कमाय[4] ।।

अँग्रेज़ों ने हमारी सांस्कृतिक परम्परा को हमेशा हीन दृष्टि से देखा । भारतीयों को हेय समझनेवाले अँग्रेज़ों की मनोवृत्ति कुछ इस प्रकार थी -

---

1. प्रेमघन सर्वस्व, पृ.285
2. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ.736
3. भारतेन्दु नाटकावली, पृ.458
4. प्रेमघन सर्वस्व, पृ.177 भाग - 1.

सब गुरुजन को बुरो बतावै ।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै ।।
भीतर तत्व न झूठी तेजी ।
क्यों सखि सज्जन नहीं अँग्रेजी[1] ।।

शिक्षा का प्रचार तथा प्रेस की स्थापना के फलस्वरूप हिन्दी में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का आविर्भाव हुआ । भारतेन्दु ने "कविवचनसुधा", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और प्रेमघन ने "नागरी नीरद", "आनन्दकादम्बिनी" आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करके हिन्दी साहित्य को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया ।

19 वीं शती में "हिन्दी वर्धिनी सभा" जैसी साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना हुई । इन संस्थाओं का लक्ष्य हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति करना था । मातृभाषा के महत्व को भारतेन्दु युग के कवियों ने उच्च स्वर में घोषित किया -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ।।
पढ़ो लिखो कोउ लाख विध भाषा बहुत प्रकार ।
पै जब ही कछु सोचि हो निज भाषा अनुसार[2] ।।

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग - II, पृ.812
2. भारतेन्दु नाटकावली, पृ.731-733

19 वीं शताब्दी में राजाराम मोहनराय, दयानन्द सरस्वती स्वामी विवेकानन्द प्रभृति समाज सुधारकों के द्वारा जो सुधारवादी आन्दोलन चल रहा था उसका प्रभाव आलोच्य युगीन साहित्य पर पड़ा ।

"आनन्द अरुणोदय"[1], "जैन कुतूहल"[2] जैसी कवितायें धार्मिक विद्वेष को व्यर्थ और निरर्थक घोषित करनेवाली है ।

कवि लोग, होली, दीवाली आदि उत्सवों में उत्साह से भाग लेकर जनता का ध्यान आकृष्ट करने केलिए लोक भाषा और लोक शैली में देश दुर्दशा और राष्ट्रीय जागरण के गीत गाते थे ।

19 वीं शती में जो साहित्यिक गोष्ठियाँ प्रचलित थीं, उनमें समस्या पूर्तियों के रूप में सामाजिक अधःपतन की व्यंजना हुआ करती थी ।

राजकुमार का जन्म, राजा की वर्षगाँठ आदि राजकीय उत्सवों के अवसर पर जनता तथा कवि राजभक्ति प्रदर्शित करते थे । राजभक्ति का कवच पहनाकर कवि अंग्रेज़ों के शोषण का चित्र जनताके सामने रखते थे । "यह कार्य राजभक्ति का बिना कवच पहने हुए संभव नहीं था । राजभक्ति प्रदर्शित करना केवल साधन था, साध्य तो अंग्रेज़ी शासन की घातक नीतियों का पर्दाफाश करना ही था[3] ।"

---

1. प्रेमघन
2. भारतेन्दु
3. डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ.50

अलमाई तजकर साम्राज्यवाद का विरोध करने केलिए भारतेन्दु युग के कवियों ने समाज का आह्वान किया - जैसे -

सर्वसु लिए जात अंगरेज, हम केवल लेक्चर के तेज ।
श्रम बिन बातें का करती हैं, कहूं टेटकन गाजें गिरती हैं ।[1]"

मति रोओ रोओ न तुम जननी व्याकुल होय ।
उठहु उठहु धीरज धरहु लेहु कुंअर मुख जाय ।।[2]"

इस प्रकार, भारतेन्दु युग की कविताओं के विश्लेषण करने पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के कवियों का लक्ष्य देश-दुर्दशा का गीत गाकर जनता को जागृत करना और अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्ष कराना था ।

द्विवेदी युग

भारतेन्दु युग में जो काव्य चेतना प्रवाहित हो रही थी उसी का विकसित रूप द्विवेदी युग में मिलता है । "भारतेन्दु युगीन साहित्यकार जहाँ भारत-दुर्दशा पर दुख प्रकट करके रह गया था, वहाँ द्विवेदीकालीन कवि मनीषियों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ साथ देशवासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी - उन्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान का मार्ग भी दिखाया[3] ।"

1· प्रतापनारायण - लोकोक्ति शतक, पृ·3 (आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका में उद्धृत, पृ·56

2· भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग - II, पृ·706

3· (सं·) डॉ· नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ·496

द्विवेदी युग राष्ट्रीय जागरण का युग था । सन् 1904 में रूस की पराजय ने जनता में आत्म विश्वास बढा दिया । बंग-भंग आन्दोलन चल रहा था । कांग्रेस नरम और गरम दो दलों में बंट गई । होमरूल लीग की स्थापना हुई । तिलक का "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लूंगा" - का नारा भारत के राजनैतिक वातावरण में गूंजने लगा । सन् 1917 में रूस में जो जनतंत्र की स्थापना हुई, भारत में भी उसका प्रभाव पडा । इस समय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व गांधीजी के हाथों में था ।

राजनैतिक क्षेत्र में जो संघर्ष चल रहा था, इसका प्रभाव तत्कालीन कविता पर पडा । अपनी ओजस्वी कविताओं के द्वारा द्विवेदी, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, नाथूराम शर्मा शंकर, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी प्रभृति कवियों ने स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक पुनरुद्धार में सक्रिय योग दिया ।

सन् 1905 में भारत में स्वदेशी आन्दोलन चला । कवियों ने स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने केलिए जनता को प्रेरणा दी । वास्तव में विदेशी वस्तुओं के उपयोग करने से भारत की आर्थिक व्यवस्था पर क्षति पहुंची । इस बात का संकेत करते हुए गुप्तजी ने लिखा ।

हम दूसरों को पांच सौ को बेचते हैं जब रुई ।
सानन्द कहते हैं कि हमको आय क्या अच्छी हुई ।
पर दूसरे कहते हैं कि ठहरो वस्त्र जब हम लायेंगे
तब और पैंतालीस सौ लेकर तुम्हीं से जायेंगे ।

हम काँच लेकर दूसरों को दे रहे हीरे खरे ।
निज रत्न के बदले मदोदक ले रहे हैं, हा हरे ![1]"

देश की हीन दशा पर द्विवेदी युग के कवियों ने ग्लानी और क्षोभ प्रकट किया । "किसान"[2], "अनाथ"[3], "कृषक क्रन्दन"[4] आदि कविताओं में किसानों की दुर्दशा पर विचार किया गया है । प्रियप्रवास, साकेत आदि महाकाव्यों में पौराणिक कथाओं को आधुनिक समाज के अनुकूल प्रस्तुत की गयी है । शोषित जनता के प्रति इस युग के कवियों ने सहानुभूति प्रकट की है । छुआ छूत, धार्मिक अत्याचार, अशिक्षा, बाह्याडम्बर आदि को समाज से दूर करना उनका लक्ष्य था ।

सहमरण के धर्म से भी ज्येष्ठ ।
आयु भर स्वामी स्मरण है श्रेष्ठ[5] ।"

कहकर गुप्त जी ने सती प्रथा का विरोध किया । "हरिऔध" जी की कवितायें देश-प्रेम और राष्ट्रीय पुनरुत्थान की भावना से ओतप्रोत है । उन्होंने रूढियों और धार्मिक आडम्बरों का विरोध किया । मज़दूर और किसानों के प्रति सदैव उनकी सहानुभूति रही ।

"तृत्यन्ताम"[6], "हमारा अधःपतन"[7] "कजली-कलाप"[8]

1· गुप्त - भारत-भारती, पृ·68
2· गुप्त ·3· सियाराम शरण गुप्त
4· सनेही ·5· साकेत, पृ·167
6· प्रतापनारायण मिश्र
7· नाथूराम शर्मा शंकर
8· वही,

"स्वदेशी कुण्डल"[1] "भारत-भारती"[2] जैसी रचनायें सुधारवादी दृष्टिकोण रखनेवाली और समाज की आलोचना करनेवाली है ।

जिन्हें जगत् की सब बातों की आन है,
दुख सुख मरना जीना एक समान है[3] ।"

कहकर श्रीधर पाठक ने विधवाओं के दयनीय जीवन प्रस्तुत किया । रामनरेश त्रिपाठी की "मिलन", "पथिक", "मानसी", "स्वप्न" आदि रचनाओं में देश केलिये बलिदान होने की भावना मुखरित होती थी । जैसे -

देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित ।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित[4] ।।

देश की उन्नति, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र कल्याण केलिये मातृभाषा हिन्दी के प्रचार करने केलिए आलोच्य युग के कवियों ने प्रयत्न किया । भारत के प्राचीन शिक्षादर्शों का स्मरण करनेवाले कवि ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली की आदर्शहीनता की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया है ।

1· राय देवीप्रसाद पूर्ण
2· गुप्त
3· मनोविनोद [1917] पृ·76 [शम्भुनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ·62 में उद्धृत]
4· [सं·] डा· नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ·510 में उद्धृत

जैसे गुप्तजी ने लिखा -

वह आधुनिक शिक्षा किसी विध प्राप्त भी कुछ कर सके ।
तो लाभ क्या, बस क्लर्क बनकर पेट अपना भर सके ।
लिखते रहो जो सर झुका, सुन अफसरों की गालियाँ
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियाँ घरवालियाँ ।"[1]

द्विवेदी युग के कवियों ने वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया, लेकिन जाति-भेद का विरोध किया । कवियों ने नारी-समाज की बुराईयों का मार्मिक ढंग से चित्रण किया है । गाँधीजी ने नारी को राजनीति में भाग लेने केलिये प्रेरणा दी । कवियों ने भी उनको प्रोत्साहन दिया ।

भाषा की दृष्टि से भी द्विवेदी युग परिवर्तन का युग था । यद्यपि भारतेन्दु ने खडीबोली में कतिपय कवितायें लिखी थीं, फिर भी कविता के क्षेत्र में उसको पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं मिली थी । द्विवेदी युग में खडीबोली काव्यभाषा बन गयी । द्विवेदीजी खडीबोली पद्य के प्रवर्तक थे । "शताब्दियों से काव्य केलिए मंजी हुई, सर्वस्वीकृत ब्रजभाषा को उन्होंने युगधर्म का निर्वाह करने में असमर्थ घोषित किया और काव्य केलिये शुष्क कही गयी अललित और अकोमल खडीबोली को युगधर्म को वाणी देने योग्य सिद्ध किया[2] ।"

---

1. भारत भारती, पृ.108
2. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य, तृतीय खण्ड, पृ.150

छायावाद युग

छायावादी कविता का आरंभ सन् 1920 के आसपास हुआ । इस समय गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा और असहयोग के मार्ग पर स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । देश के कई भागों में साम्प्रदायिक दंगे शुरू हुए । अंग्रेज़ों की घातक आर्थिक नीति भारत का शोषण कर रही थी । दुर्भिक्ष, अकाल, अत्याचारों और अनाचारों से जनता पीड़ित थी ।

गांधीजी का प्रभाव और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेज़ द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण भारतीय जनता में पर्याप्त नैतिक और आत्मिक बल आ गया था । अत: कवियों केलिये भी

सामाजिक और राजनीतिक

समस्याओं से अपने को बिलकुल अलग रखना असंभव था । संवेदनशील होने के कारण वे भी उन समस्याओं का समाधान अपने ढंग से खोजने लगे । राष्ट्रोत्थान और स्वतंत्रता प्राप्ति के यज्ञ में उन्होंने अपने काव्य द्वारा योगदान किया । इस समय की कविता ने देश में राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने में बहुत सहायता की ।[1] अन्य आलोचकों ने भी युग चेतना को छायावाद के उद्भव का कारण बताया ।[2] छायावादी कविता ने अन्तर्मुखी होते हुए भी युग - चेतना की उपेक्षा नहीं की ।

मानवतावाद, वैयक्तिकता, प्रकृति-प्रेम, राष्ट्रीय भावना आदि जो प्रवृत्तियां छायावादी कविता में मिलती हैं, उनके मूल में प्रवाहित सामाजिक चेतना देखी जा सकती है । सदियों की दासता,

---

1· धीरेन्द्र वर्मा - आधुनिक साहित्य, पृ·200

2· डॉ· नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृ·16

पाश्चात्य सभ्यता, अंग्रेज़ी शिक्षा आदि के कारण जन मानस में व्यक्तिवादी भावना ने जन्म लिया । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय जन मन में एक तरह की निराशा की भावना फैल गयी ।

छायावादी कविता में विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर अधिक प्रखर था । कवियों ने जनता को देश केलिए बलिदान होने की प्रेरणा दी । देश-प्रेम और बलिदान की भावना से प्रेरित होकर माखन लाल चतुर्वेदी ने लिखा -

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढाने,[1]
जिस पथ जावें वीर अनेक ।

ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों और स्वाधीनता संग्राम की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करते हुए माखनलाल जी इस प्रकार लिखा -

मैं "मुह बंदी का हार हिए"
"मत लिखो" कठिन कंकण धारे
"भारत रक्षा" के शूलों की
पांवों में बेडी झनकारे ।
"हथियार न लो" की हथकडियां
रोलट का हिय में घाव किए
डायर से अपने लाल कटा
कहती थी आंचल लाल किए[2] ।"

---

1. युगचरण - पृ.31
2. हिमकिरीटिनी - पृ.17

स्वतंत्रता संग्राम में माखनलाल जी कई बार जेल गये । जेल जीवन के अनुभवों को उन्होंने "कैदी और कोकिला" में वर्णित किया है । "जवानी", "प्राण का श्रृंगार", "कैदी की भावना" आदि बलिदान की प्रेरणा देनेवाली कवितायें हैं ।

श्यामनारायण पाण्डेय, "नवीन", प्रसाद, सोहनलाल द्विवेदी, गोपालशरणसिंह, उदयशंकर भट्ट जैसे कवियों ने भारत के अतीत गौरव से जनता को परिचित कराया और पराधीनता की बेडियों को तोडने केलिए उन्हें उद्बुद्ध भी किया । "माता के सम मातृभूमि है यही हमारी" कह कर सियाराम शरण गुप्त ने अपना देश प्रेम घोषित किया । प्रसाद की "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से", अरुण यह मधुमय देश हमारा" जैसी कवितायें देश प्रेम से भरी हुई कवितायें हैं । उग्र राष्ट्रीयतावादी कवि "नवीन" स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेकर छह बार जेल गए । वे स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे । उनके "कुंकुम", "अपलक", "रश्मि रेखा" आदि संग्रहों की कविताओं में भारत का अतीत स्मरण, साम्राज्यवाद का विरोध, क्रांति केलिये प्रेरणा आदि मिलते हैं । उनकी निम्नलिखित कविता में साम्राज्यवाद के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है -

वंचक ! सावधान । पुण्यस्थल है यह, हृदय टटोलो तुम,
राष्ट्रों के जीवन में होता है न कहीं कुत्सित व्यापार ।
अपने निर्बल अविश्वास का, कालकूट मत घोलो तुम
यहाँ नेत्र कण झर-झर कर हैं, बना चुके निर्मल का सार,
हे ठग, उसी पुण्य सर को तुम, करो न परिणत अब मल में,
निश्चेष्टता तथा निर्बलता का न करोगे क्या अब शेष ?"[2]

"नवीन" जी ने भारत को पुण्यभूमि कहकर अपने देश प्रेम को व्यक्त किया है

---

1. मौर्य विजय, पृ.10

2. "नवीन" - कुंकुम, पृ.4 (रामदरश मिश्र - आधुनिक हिन्दी काव्य पृ.273 में उद्धृत ।

छायावादी कवियों ने देश का वर्तमान अधःपतन, विपन्नताओं और विषमताओं को अपनी कविताओं में स्पष्ट किया है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जनता का शोषण कर रही थी । ऋण के बोझ से कृषकों के कन्धे झुक गये । इस दुरवस्था को देखकर पंत ने लिखा -

कर जर्जर, ऋण ग्रस्त स्वल्प पैतृक सम्पत्ति भू धन
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य दुरित दुख का जो कारण ।"[1]

धनी और निर्धन के बीच की खाई प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी । इस देश में "श्वानों को दूध और वस्त्र मिलता है, भूखे बालक माँ की हड्डी से चिपक ठिठुरकर जाड़ों की रात बिताते हैं[2] ।" पंत जी का "खड़ा द्वार पर लाठी टेक, वह जीवन का बूढ़ा पंजर" और निराला का "दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता" भिक्षुक तत्कालीन समाज की हीन अवस्था के प्रतिरूप हैं । "टूटे तरु की छुटी लता सी दीन" विधवा के कष्टपूर्ण जीवन की ओर भी कवियों की दृष्टि गयी ।

अछूतोद्धार, विधवा विवाह, हिन्दू मुस्लिम मैत्री आदि के द्वारा समाज की उन्नति कवियों का लक्ष्य रहा । निराला ने "तुलसीदास" में शूद्रों की दयनीय दशा पर क्षोभ और "छत्रपति शिवाजी का पत्र" में साम्राज्यवाद का विरोध, आर्थिक विषमता, धार्मिक अन्धविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के प्रति आक्रोश प्रकट किया । किसानों की व्यथा को मिटाने की तीव्र अभिलाषा "विप्लव के बादल" में मुखरित थी ।

1· पंत - युगवाणी, पृ·5।
2· दिनकर - हुंकार, पृ·27

सियाराम शरण ने गाँधीवादी दृष्टि को अपना कर समाज को मानवता का सन्देश दिया । भगवती चरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, प्रभृति कवियों ने सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दिया । देश की पराधीनता और समाज की विडम्बनाओं की ओर उनकी दृष्टि गयी । सियाराम की "बापू" निराला की "दिल्ली" जैसी कवितायें देश के अतीत गौरव के साथ वर्तमान दुर्दशा का भी चित्रण करनेवाली है ।

दिनकर की कवितायें तत्कालीन राष्ट्रीय और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित थी । स्वतंत्रता के पहले जनजागरण करने में "रेणुका" की कवितायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सामाजिक विषमताओं के प्रति वे हमेशा सजग रहे । निम्नलिखित कविता इसका प्रमाण देती है -

> देख, कलेजा फाड कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें
> बनती ही उनपर जाती है, वैभव की ऊँची दीवारें ।
> धन पिशाच के कृषक-मेघ में नाच रही पशुता मतवाली
> अतिथि मग्न पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली ।"[1]

अँग्रेज़ों ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता देने का वादा किया था । लेकिन उन्होंने यह वादा पूरा नहीं किया । देश में दुर्भिक्ष, महामारी और कई बार अकाल पडा । स्वतंत्रता की भावना बलवती हो गयी । विद्यार्थी , कवि और स्त्रियाँ स्वाधीनता संग्राम में कूद पडीं । इसका शंखनाद छायावादी कविता में सुनायी पडी ।

---

1. दिनकर - रेणुका, पृ.1

रामकुमार वर्मा ने समाज में व्याप्त वेदना, घृणा और पीडा के संघर्ष का अंत करना चाहा । निराला जैसे कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी से समाज को जागृत करने का स्तुत्य कार्य किया । जैसे -

जागो फिर एक बार ।
पशु नहीं, वीर तुम
समर शूर, क्रूर नहीं
काल चक्र में हो दबे
आज तुम राजकुंवर । समर सरताज ।[1]

सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के प्रति अटूट निष्ठा दिखाई पडी । उनकी "वीरों का हो कैसा वसन्त", "झांसी की रानी" जैसी कवितायें राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । उन्होंने देशमुक्ति केलिए प्राणदान का महत्व गान किया है -

चलो मैं हो जाऊँ बलिदान ।
मातृ-मंदिर में हुई पुकार,
चढा दो मुझको हे भगवान ।।"[2]

छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा की कविताओं में सामाजिक चेतना का अभाव होता है । फिर भी, उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के अवसर पर "बीती रजनी प्यारे जाग" । कहकर नारी जागरण की आकांक्षा प्रकट की । उदयशंकर भट्ट की "दलित", "बंगाल", "नर्तकी", "रिफ्यूजी" आदि

1· निराला - परिमल, पृ·204

2· सुभद्राकुमारी चौहान - मुकुल, पृ· 76

कवितायें सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । "जागरण की ज्योति भर दो, नींद के संसार में तुम" जैसी पंक्तियों से रामकुमार वर्मा ने भी जनजागरण करने का प्रयत्न किया ।

छायावादी कवियों ने नारी के प्रति सम्मान पूर्वक दृष्टि रखी । प्रसाद जी ने "कामायनी" में मातृ शक्ति के रूप में नारी की प्रतिष्ठा की । "श्रद्धा का व्यक्तित्व अपने मानवी रूप के आदर्श भारतीय नारी के त्यागपूर्ण आत्मसमर्पण का प्रतिनिधित्व करता है[1] ।

निराला ने नारी को बन्धन मुक्त रखने की प्रेरणा दी । जैसे -

तोड़ो तोड़ो कारा
पत्थर की निकलो फिर
गंगाजल-धारा ।
गृह-गृह की पार्वती[2] ।"

इस युग के कवियों ने नारी को वीरांगना[3] के रूप में भी चित्रित किया ।

मातृभाषा के प्रति प्रेम इस युग की कविताओं में व्यापक रूप से देखा जा सकता है ।

खुला हिन्दी मन्दिर का द्वार
हुआ है नव अद्भुत श्रृंगार
आ रहे पत्र पुष्प ले भक्त
चढ़ाते हैं सुन्दर उपहार[4] ।

---

1. डॉ॰शम्भूनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ॰215
2. निराला - अनामिका, पृ॰157
3. सुभद्राकुमारी चौहान - मुकुल, पृ॰77
4. प्रभाति, पृ॰38

कहकर सोहनलाल द्विवेदी ने हिन्दी भाषा के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है ।

छायावादी कवियों ने औद्योगीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न यांत्रिकता का विरोध किया । भारतीय आध्यात्मवादी दृष्टिकोण ने कवियों को प्रकृति की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी । जाति-भेद के स्थान पर इन कवियों ने मानवता की प्रतिष्ठा की । समाज में आमूल परिवर्तन लाना इनका लक्ष्य था ।

प्रगतिवाद

सन् 1936 तक आते आते स्वतंत्रता संग्राम ज़ोर पकडा । कांग्रेस का नेतृत्व गांधीजी के हाथों में आ पहुँचा । सन् 1942 में कांग्रेस महासमिति ने "भारत छोडो" प्रस्ताव पास किया । अंग्रेज़ सरकार की दमन नीति ज़ारी रही । पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध जन मन में विद्रोह की भावना जाग उठी । द्वितीय विश्वयुद्ध का आतंक, बार बार पड़ता अकाल और दुर्भिक्ष ने जन जीवन को दुस्सह बना दिया । रूस का साम्यवाद और मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव भारत के बुद्धिजीवी वर्ग पर पडा । और सन् 1936 के आसपास भारत में भी साम्यवादी आन्दोलन का आरंभ हुआ । साहित्य पर भी इसका प्रभाव पडा जिसके फलस्वरूप प्रगतिवादी कविता का उदय हुआ । इस समय छायावादी काव्यधारा जीवन-शून्य हो रही थी । यह भी प्रगतिवाद के आगमन का एक कारण था ।

प्रगतिवाद, मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या सामाजिक दर्शन की साहित्यिक अभिव्यक्ति माना जाता है । प्रगतिवाद ने समष्टि चेतना को सर्वाधिक महत्व दिया, व्यष्टि चेतना को नहीं, क्योंकि मार्क्सवाद के अनुसार कला एक प्रकार की सामाजिक चेतना है । "समग्र रूप में प्रगतिवादी आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि साहित्य साधारण जन का साहित्य हो, उसके जीवन संघर्ष को अभिव्यंजना दे, यथार्थताओं का परिचय दे एवं कला की प्रगति करे[1] ।"

प्रगतिवादी कविता ने एक ओर साम्यवाद का खुलकर प्रचार किया तो दूसरी ओर जन जीवन के दुख दैन्य को व्यक्त किया - किसान, मज़दूर, शोषित-दलित वर्गों के जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया । प्रगतिवाद का मूल आधार मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है जिसमें वर्ग संघर्ष का प्रमुख स्थान है । हमारे देश में उच्च और निम्न वर्गों का संघर्ष कवियों को बहुत प्रभावित किया जा रहा हैं । भगवतीचरण वर्मा की जीवन-दर्शन कविता इस तथ्य से खूब साक्षात्कार कराती है -

"मेरे सम्मुख तो है पशुता !
ये भक्ष्य और वे भक्षक हैं,
इनमें लघुता, उनमें गुरुता,
इनकी तड़पन, उनका विलास,
मैं देख रहा निर्माण - ह्रास ।
ये तो मिटने को जीवित हैं,
है उन्हें रक्त की प्रबल प्यास[2] !"

1· डॉ· राजेन्द्र प्रसाद - मिश्र - आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ·475
2· भगवतीचरण वर्मा - मेरी कवितायें, पृ·181

मार्क्स दर्शन का प्रभाव और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के कारण समाज का यथार्थ चित्रण प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी। मार्क्स ने अर्थ को समाज का मूल आधार माना। प्रगतिवादी कवियों ने समाज की आर्थिक समस्याओं पर अधिक विचार किया है।

"दारिद्र्य, दुख के कर्दम में कृमि सदृश लीन", "बहु रोग-शोक-पीडित, विद्या बल, बुद्धि हीन", "रामराज्य के सपने देखते उदासीन" ग्रामीण जनता को पंतजी ने चित्रित किया है। "बेला" में निराला जी ने गरीबी का चित्र इस प्रकार अंकित किया है -

केश रूखे, अधर-सूखे,
पेट-भूखे, आज आये।
हीन-जीवन, दीन-चितवन,
क्षीण आलम्बन बनाये।[1]"

"कलकत्ते का अकाल", "यह किसका कंकाल पडा है" जैसी कविताओं में "सुमन" जी ने पूँजीपतियों के प्रति विद्रोह प्रकट किया है। सामंती संस्कारों से पीडित जनता को "परीक्षा गुरु", "बेधरबार" आदि कविताओं में चित्रित किया गया है।

रांगेय राघव ने "पिघलते पत्थर", "राह के दीपक" "अजेय खण्डहर" आदि संग्रहों की कविताओं में अपनी सामाजिक चेतना का परिचय दिया है। उनकी "मुक्तिवाद" "शहीद" जैसी कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें उन्होंने गांधीजी और गणेश शंकर विद्यार्थी के प्रति

---

1. निराला - बेला, पृ.62

श्रद्धा प्रकट की है । पूंजीवादी सभ्यता का विरोध और शोषण के अन्त करने की तीव्र अभिलाषा उनकी कविताओं में मुखरित हैं । "राष्ट्र की पुकार", "अमर गीत", "तड़कती बेड़ियाँ", "मांझी" आदि कवितायें इस दृष्टि से सफल कही जा सकती है ।

मुक्तिबोध की कविताओं में जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण और लोकमंगल की भावना के रूप में प्रगतिवादी चेतना देखी जा सकती है । "चाँद का मुँह टेढा है" संग्रह की कवितायें इसी प्रकार की है । उनकी कविताओं में कभी कभी "फैंटमी" का रूप मिलता है । इस प्रकार की कविताओं में समाज के अनाचार और अराजकता से पीड़ित मानवीय संवेदना देखी जा सकती है । "नाश देवता", "दूर तारा", "चम्बल की घाटी" "आत्मा के मित्र मेरे", "क्षुब्ध सिन्धु" आदि उनकी उल्लेखनीय कवितायें है जिनमें प्रगतिवादी स्वर तीखा है । मध्यवर्गीय जीवन का चित्र भी उनकी कविताओं में मिलता है । "घोर व्यक्तिवादी होने पर भी उनकी सामाजिक चेतना ने उन्हें पथभ्रष्ट नहीं होने दिया है । अपने द्वन्द्व से लगातार जूझने की शक्ति दी है, जीवन और मनुष्य के प्रति उनके विश्वास को जीवित रखा है । समीन जीवन को देखते हुए उनकी यह विशेषता अपने में कम महत्वपूर्ण नहीं है ।"[1]

मार्क्सवाद मानवीय चेतना को सर्वोपरि मानते हैं । इससे प्रभावित होकर प्रगतिवादी कवियों ने धार्मिक शोषण, धार्मिक अन्धविश्वास एवं मूर्ति पूजा का विरोध किया । ईश्वर के नाम पर होनेवाले अत्याचारों की उन्होंने खुलकर निन्दा की । प्रगतिवादी कवियों की धार्मिक चेतना इस प्रकार की थी -

---

1. डॉ• शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य, पृ•280

इस मिट्टी के गीत सुनाना
कवि का धर्म सर्वोत्तम
अब जनता जनार्दन ही है,
मर्यादा-पुरुषोत्तम ।

अंग्रेज़ों के आने के पहले भारत में कुटीर उद्योग उन्नत अवस्था में था । अपने देश में निर्मित वस्तुओं का विदेशों में भी बड़ा नाम था । अंग्रेज़ों ने इन उद्योगों को नष्ट किया । उनकी शोषण नीति से जनता पीड़ित थी । भारत की गरीबी का प्रमुख कारण पूंजीवादी व्यवस्था है । प्रगतिवादी कवियों ने तीखे शब्दों में पूंजीवाद का विरोध किया । निराला ने "महफिल", "मां बाप", "साज" आदि कविताओं में पूंजीवादी समाज व्यवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । "नये पत्ते", "बेला", "कुकुरमुत्ता" आदि कविताओं में निराला की प्रगतिवादी चेतना का स्पष्ट प्रमाण मिलेगा ।

"कुकुरमुत्ता" में निराला ने प्रतीकों के माध्यम से तत्कालीन समाज पर व्यंग्य किया है । प्रस्तुत कविता में "गुलाब" शोषक का और "कुकुरमुत्ता" शोषित का प्रतीक है। केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा समाज की अर्थनीति के विरुद्ध प्रहार किया, कटु जीवन पर व्यंग्य किया, प्रकृति का किसानी चित्र खींचा, और देश के जागरण का सन्देश भी दिया ।

महेन्द्र भटनागर ने पूंजीपतियों को अंतिम चेतावनी भी दी -

जितना ज्यादे निर्धन जनता को लूटेंगे
उतना ही बदले में मूल्य चुकाना होगा ।

1. सुमन - विश्वास बढ़ता ही गया - पृ. 46

जितना ज्यादे भोली मानवता पर
चढ इतराओगे,
उतना ही उसके सम्मुख
घुटनों के बल झुकना होगा।[1]"

प्रगतिवादी कवियों ने शोषित जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के साथ ही सर्वहारा वर्ग के मन में विद्रोह और क्रांति की भावना उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया। "युगवाणी" की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश रखना उपयुक्त होगा -

अग्नि-स्फुलिंगों का कर चुम्बन
जाग्रत करता दिग् दिगन्त क्षण;
जागो श्रमिकों, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी है श्रमजन।[2]"

स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा और देशभक्ति प्रगतिवादी कविता में सर्वत्र देखी जा सकती है। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर भारतमाता की लाज बचाने केलिए "सुमन"जी ने आह्वान किया है, निम्नलिखित कविता में -

आओ, उठो, चलो जल्दी
समरांगन में कुहराम मचाने
पीकर जिसका दूध बडे हैं
उस माता की लाज बचाने।[3]"

---

1. महेन्द्र भटनागर-जिजीविषा, पृ.44
2. पंत -युगवाणी, पृ.35
3. "सुमन" - प्रलय - सृजन, पृ.33

साम्प्रदायिक दंगों पर दुख प्रकट करने के साथ ही "सुमन", केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने उसका विरोध भी किया है । जाति भेद के कारण भारतीय जनता मनुष्यत्व से वंचित रहती है । इस बात को पंत जी ने "ग्राम्या" में स्पष्ट किया है ।

"सुमन", रांगेय राघव, महेन्द्र भटनागर जैसे कवियों ने साम्यवादी रूस की प्रशंसा की । रांगेय राघव ने रूस को "गरीबों का मसीहा" और "सुमन" जी ने "दलितों की तीर्थभूमि", सर्वप्रथम साम्राज्यवाद को निकलनेवाला देश आदि कहकर इस देश की प्रशंसा की ।

युग युग से शोषित, पीड़ित नारी के उत्थान केलिए भी प्रगतिवादी कविता ने महत्वपूर्ण कार्य किया । नारी की मुक्ति और सामाजिक सम्मान केलिए इन कवियों ने नर-नारी के भेद-भाव को मिटाना चाहा । प्रगति वादियों की "नारी न काम दासी, न पुरुष अब पुण्य-यष्टि"[1] इसलिये ही पंतजी ने लिखा -

मुक्त करो नारी को मानव ।
चिर वन्दिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से
जननी, सखी, प्यारी को[2] ।"

अंचल की "करील" और "किरनबेला" की कविताओं में सामाजिक विषमताओं के चित्रण के साथ नारी स्वातंत्र्य का स्वर भी मुखरित होता है ।

---

1. नरेन्द्र शर्मा - प्यासा निर्झर, पृ.11
2. पंत - युगवाणी, पृ.59

अपने देश की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के चित्रण के अतिरिक्त प्रगतिवादी कविता ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर भी विचार किया है ।

वर्ग वैषम्य को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य रहा -

साम्राज्यवाद
सामन्तवाद
"औ" व्यक्तिवाद
जो बाँध रहे गति जीवन की, कर उन्हें नष्ट
तुम सामाजिक स्वातंत्र्य साम्य को करो स्पष्ट ।"[1]

स्वातंत्र्य पूर्व कविताओं में प्रगतिवाद में सामाजिक चेतना इतनी व्यापक धरातल पर मिलती है ।

निष्कर्ष

स्वातंत्र्य पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता का प्रादुर्भाव सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के समय हुआ था । वहाँ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक की कविताओं के विश्लेषण करने पर उनमें प्रवाहित सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना की धारा देखी जा सकती है ।

अंग्रेज़ी शासन के फलस्वरूप भारत में पाश्चात्य सभ्यता का जो प्रभाव बढ़ने लगा, उसकी सामाजिक प्रतिक्रिया भारतेन्दु युगीन

---

1. त्रिलोचन - धरती, पृ.7

कविताओं में सर्वप्रथम मुखरित हुई । अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करना भारतेन्दु युग के कवियों का लक्ष्य था । भारतेन्दु, प्रेमघन आदि की कविताओं में देशभक्ति के साथ राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है । यह इस युग की आवश्यकता भी थी । अंग्रेजों के विरुद्ध जन-शक्ति को जागृत करना इन कविताओं का उद्देश्य था । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर इन कविताओं में दृष्टि डाली गयी ।

द्विवेदी युगीन कविता भारतेन्दु युग की कविता का विकसित रूप कही जा सकती है । इस युग में खड़ीबोली काव्य भाषा बन गयी । गुप्त, "सनेही", "हरिऔध", रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों को जनशक्ति पर विश्वास था । उन्होंने राष्ट्रीय जागरण और समाज सुधार को अपनी कविताओं का लक्ष्य बनाया । गुप्त जी की "भारत-भारती", "सनेही" की "कृषक क्रन्दन", "राष्ट्रीय वीणा", रामनरेश त्रिपाठी के "मिलन", राय देवीप्रसाद "पूर्ण" की "स्वदेशी कुण्डल" श्रीधर पाठक की "भारत गीत- आदि इस युग की उल्लेखनीय रचनायें हैं । श्रीधर पाठक की कुछ कविताओं में राज भक्ति का स्वर भी मिलता है । खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य "प्रियप्रवास" द्विवेदी युग की देन है । इन कवियों ने रूढ़ियों का विरोध किया, नारी को सामाजिक सम्मान देने का प्रयास किया, किसानों की दुर्दशा पर व्यथा प्रकट की ।

छायावाद युग में विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर प्रखर हो गया । सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना इस युग की कविताओं में प्रबल थी । हिन्दी कविता के क्षेत्र में पहली बार छायावाद में व्यापक राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई । निराला और माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की सर्वाधिक और सशक्त अभिव्यक्ति दी ।

दिनकर, पंत, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, सियाराम शरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, अंचल आदि इस युग के श्रेष्ठ कवि थे जिनकी कविताओं में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण का स्वर प्रखर था । पंत की कवितायें सांस्कृतिक समन्वय का सन्देश देनेवाली है । छायावादी कविता में नारी को गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है ।

प्रगतिवादी कविता का मूल स्वर सामाजिक चेतना का ही है । केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, सुमन, त्रिलोचन, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, नवीन, मुक्तिबोध, अंचल, महेन्द्र भटनागर प्रभृति कवियों ने सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से देखा और अभिव्यक्त भी किया । राष्ट्रमुक्ति की उत्कट अभिलाषा इस युग की कविताओं में पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा अधिक तीव्र थी । प्रगतिवादी कवियों की धार्मिक चेतना में उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने ईश्वर को पत्थर घोषित किया और उस स्थान मनुष्य को प्रतिष्ठित किया । पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का विरोध इस युग में प्रबल हो गया । समष्टि चेतना का समर्थन करने में इन कविताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

उन्नीसवीं शती में होनेवाले सुधारवादी आन्दोलनों, गांधीजी, मार्क्स, टैगोर, अरविन्द आदि मनीषियों, पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति और साहित्य तथा सर्वोपरी अपने देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से प्रभाव ग्रहण करके स्वातंत्र्य पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता आगे बढी ।

नई कविता, जिसे प्रयोगवाद का विकसित रूप कहलाता है, का पूर्ण विकास स्वतंत्रता के बाद हुआ और उसकी मूल चेतना सामाजिक बन गयी ।

****

अध्याय - तीन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : पृष्ठभूमि और प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि और प्रवृत्तियाँ

परिस्थितियों के बदलने के अनुसार काव्य चेतना भी बदलती रहती है । अतः किसी भी काल की कविता के विश्लेषण करनेकेलिए परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक है ।

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र एवं समाज की समस्याओं में परिवर्तन हुआ । सदियों की गुलामी और स्वतंत्रता केलिए किए गए लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप भारतीय जनता की मानसिकता बदल गई । "भारतीय स्वतंत्रता की लडाई स्वतंत्रता को एक मूलभूत मानवीय मूल्य मानकर ही लडी गई थी और इसी कारण मानवतावादी मूल्यों से इसका विशेष सरोकार रहा था ।"[1] इससे एक नई मनोदृष्टि विकसित हुई जिसकी

---

1. डॉ॰ नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, पृ॰77

अभिव्यक्ति साहित्य में कई रूपों और स्तरों पर हुई । इसकी मूल चेतना सामाजिक है । स्वातंत्र्य मूल्यों और सामाजिक चेतना को पिछले युगों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा मिली । साहित्य में भी एक नई चेतना आयी ।

इसलिये स्वातंत्र्योत्तर कविता का विश्लेषण करने केलिये स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है ।

राजनैतिक पृष्ठभूमि

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ ही 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ । स्वतंत्रता मिलने के साथ ही सम्पूर्ण भारत, पाकिस्तान और भारत दो टुकडों में बँट गया । नेहरूजी ने कहा था कि साम्प्रदायिकता की आग को बुझाने के लिए भारत का विभाजन आवश्यक बन गया ।[1] इतिहासकारों ने साम्प्रदायिक भेद भाव को विभाजन का कारण बताया । साम्प्रदायिकता का भीषण दृश्य कुछ इस प्रकार है -

दोनों सम्प्रदायवाले बदबदा कर हिंसा और मारकाट कर रहे हैं और हाल की भिडन्त में जिस प्रकार की संगदिली और जुल्म की वारदातें हुई हैं.उनकी मिसाल पहले कहीं नहीं मिलती । मैं ने एक कुआँ देखा जिसमें 107 स्त्री-बच्चों ने अपनी अबरू बचाने केलिए छलाँग लगाकर जान दे दी । एक दूसरी जगह, एक धर्म स्थान में पुरुषों ने 50 स्त्रियों का इसी कारण अपने हाथों वध कर डाला । मैं ने एक घर में हड्डियों के ढेर देखे हैं, जिसमें 307 व्यक्तियों - अधिकांश स्त्री और बच्चों को -

---

1. R.C. Majumdar - History of freedom movement in India Vol.III, p.797 से उद्धृत

आक्रमणकारियों ने बन्दकर जिन्दा जला डाला था। यदि हम इस प्रकार एक दूसरे से बदला लेने केलिए वार करते रहे तो अन्त में हम नरभक्षी राक्षस या उससे भी ज्यादा पतित हो जायेंगे। इसी हृदय-विदारक हालत में, मैं ने हिन्दुस्तान का विभाजन स्वीकार कर लिया है[1]।

विभाजन का परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान से लाखों की संख्या में हिन्दु शरणार्थी बनकर भारत आये। ये दिल्ली में काफी संख्या में एकत्र हो गये। भारत सरकार ने मानवता की भावना से प्रेरित होकर उनकी सहायता की, उनके पुनरधिवास केलिए निवास निर्माण की योजना की, उनके जीविकोपार्जन केलिए कई उद्योग आरंभ किये। अपहृतों के पुनर्मिलन का कार्य भी सरकार ने किया। सन् 1955-56 तक कुल मिलाकर 85 लाख व्यक्ति पाकिस्तान से भारत आये[2]।"

देश विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे और शरणार्थियों के करुण जीवन की प्रतिक्रिया तत्कालीन साहित्य पर पड़ी। समसामयिक कविता में एक ओर तो देश विभाजन और तज्जन्य साम्प्रदायिकता के प्रति क्षोभ का स्वर मुखर हुआ औरदूसरी ओर साम्प्रदायिकता को हटाने की आकांक्षा भी अभिव्यक्त हुई। इसी से सम्बन्धित एक तीसरा स्वर भी था जिसमें व्यंग्य के माध्यम से इन परिस्थितियों केलिए अंग्रेज साम्राज्यवादियों को उत्तरदायी ठहराया गया[3]।"

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ.569-570
2. राजकुमार - भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.465
3. शम्भुनाथ चतुर्वेदी - नया हिन्दी काव्य और विवेचना, पृ.64

हिंसा को रोकने केलिए गाँधीजी, अहिंसा की ज्योति जलाकर, जनता से भय का त्याग करने और हृदय में प्रेम बनाये रखने का उपदेश दे रहे थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनके मित्र उनके उद्देश्य पर सन्देह करते थे और शत्रु उन्हें ताने देते थे, लेकिन वह हमेशा शहीद बनने केलिए तैयार होकर मनुष्य मात्र में भाई-चारे और सद्भावना का उपदेश देते थे[1]। लेकिन साम्प्रदायिकता की अग्नि बुझ न गयी और 30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोड्से ने गोली मारकर उनकी हत्या की।

बापू की हत्या ने सम्पूर्ण विश्व को विचलित कर दिया। "यह घटना एक युग की समाप्ति का सूचक थी[2]। लेकिन गाँधीजी का आदर्श सारे विश्व को प्रेरणा बन गयी। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कविता पर इस घटना का सर्वाधिक प्रभाव पडा। स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने "एक स्वर में उनकी साधना के महत्व को आँका और उन्हें युगादर्श के रूप में स्वीकार किया[3]। कवियों ने उनके आदर्शों को पालने की प्रतिज्ञा ली और साम्प्रदायिकता को बापू की हत्या का दोषी कहकर उसे मिटाने की शपथ भी ली। बापू की मृत्यु पर कवियों ने क्षोभ, दुख और निराशा प्रकट की। लेकिन स्वतंत्र भारत गाँधीजी के आदर्शों को भूल गये हैं। वे भौतिक दृष्टि से स्वतंत्र होते हुए भी मानसिक दृष्टि से अंग्रेज़ों के गुलाम रहते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, अनेक स्वतंत्र देशी रियासतों को भारत में सम्मिलित करके एक सुसंगठित राज्य की स्थापना करना देश के

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ.553
2. The Gandhian era ended on 30th January 1948, leaving a vacuum that nothing could fill - Durga Das - India from curson to Nehru and after, p.278
3. शम्भूनाथ चतुर्वेदी - नया हिन्दी काव्य और विवेचना, पृ.72

सामने प्रमुख समस्या थी । यह समस्या सुलझायी जा रही थी कि बीच में, काश्मीर को हस्तगत करने की आशा से पाकिस्तान ने अक्तूबर 1947 को काश्मीर पर हमला किया । काश्मीर के महाराजा ने भारत सरकार से सहायता माँगी । अंत में काश्मीर भारत में शामिल हो गई । हैदराबाद रियासत अपनी स्वतंत्र सत्ता रखना चाहती थी । लेकिन सितंबर 1948 में वह भारत में शामिल हो गयी । जूनागढ के नवाब उस रियासत को पाकिस्तान में मिलाना चाहते थे । लेकिन जनता ने इसका विरोध किया । अंत में वह भी भारत में सम्मिलित हो गयी । सन् 1962 में साम्यवादी चीन के आक्रमण ने तत्कालीन साहित्य को बहुत प्रभावित किया ।

संविधान सभा ने 26 नवंबर 1949 को भारत के संविधान का अंतिम रूप स्वीकार किया । 26 जनवरी 1950 को इसे लागू करके सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य भारत की स्थापना की गयी । सन् 1956 नवम्बर में भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन किया गया । सन् 1952, 1957, 1962 और 1967 में भारत में आम चुनाव हुआ । सन् 1964 में पं॰नेहरू की मृत्यु[1] के बाद लालबहादूर शास्त्री भारत के प्रधान मन्त्री बने । सन् 1966 में उनकी मृत्यु हुई जिसके बाद श्रीमति इन्दिरा गाँधी भारत के प्रधान मन्त्री बनी ।

इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद भारत को न केवल भीतरी, बल्कि बाहरी समस्याओं का भी सामना करना पडा । इन समस्याओं को सुलझाने के साथ ही भारत ने अपनी शक्ति भी बढाई । इस के फलस्वरूप

---

1. The deth of Nehru on 27th 1964 removed from the scene the last of the illustrious leader who had constituted the leadership of the Congress in Pre-indepedence days 25 years of Indian Independence, p.47

थोडे ही समय में भारत, एशिया का एक प्रमुख राष्ट्र बन गया । विश्व शान्ति केलिए भारत ने पंचशील के सिद्धांत को अपनाया । पंच शील ये हैं -

1. दूसरे देश की सार्वभौमिकता एवं प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान ।
2. अनाक्रमण ।
3. दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना ।
4. समानता तथा पारस्परिक लाभ ।
5. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व ।

विश्व भर में शांति स्थापित करने केलिए भारत ने तटस्थता की नीति अपनायी है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले कांग्रेस राष्ट्र की प्रमुख राजनीतिक संस्था थी । आज इस के प्रति जनता का विश्वास कम होता जा रहा है । नेता राष्ट्रहित के स्थान पर निजी स्वार्थ को लक्ष्य बनाते रहे हैं । वे जातीयता के नाम पर वोट बटोरकर जनतंत्र का नाश कर रहे हैं । राजनैतिक क्षेत्र में पार्टियों की संख्या बढ रही है । इनका लक्ष्य जन सेवा न रहकर निजी स्वार्थों की पूर्ति है । स्वातंत्र्योत्तर कविता इन राजनीतिक गतिविधियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी । कभी यथार्थ चित्रण द्वारा, कभी व्यंग्य का सहारा लेकर कवियों ने राजनीति का यथार्थ रूप जनता के सामने रखा । कभी कभी उन्होंने क्षोभ और ग्लानी प्रकट किये और भारत के नव निर्माण का सन्देश भी दिया ।

सामाजिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता भारतीय समाज में नवीन परिस्थितियाँ और अनेक नये परिवर्तन लेकर आयी । साम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थियों का पुनर्वास आदि केवल सामाजिक समस्यायें न रहकर राजनैतिक समस्यायें बन गयी । भारत सरकार की ओर से इनका समाधान ढूँढ निकाला गया । संविधान की ओर से समाज की रूढियों में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया । संविधान ने अस्पृश्यता को गैर-कानूनी घोषित किया । पहले हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश करना निषिद्ध था । सन् 1955 में अस्पृश्यता निवारण अधिनियम द्वारा उनको इसका अधिकार मिल गया । इस नियम के अनुसार उनको अपने अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकता । लेकिन वर्तमान समय में भी जाति-भेद और छुआ-छूत की भावना समाज में मौजूद है । यह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की एक बहुत बडी कमजोरी रहती है ।

औद्योगिक विकास के परिणाम स्वरूप लोग गाँवों को छोडकर शहरों की ओर जाने लगे । सदियों की दासता से जब भारत स्वतंत्र हुआ तो जनता अपनी उन्नति और खुशहाली का सपना देखने लगी । देश में विकास के अनेक कार्य हुए । लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि जो सम्पन्न थे, वे अधिक सम्पन्न बन गये । साधारण जनता के शोषण की प्रक्रिया खूब चली । "अर्थ" सामाजिक मान्यता का आधार बन गया । नगरों और गाँवों में अंतर बढने लगा । आवश्यक वस्तुओं का अभाव, महंगाई, बेकारी आदि से लोग पीडित रहते हैं । मध्यवर्गीय जीवन दुष्कर बन गया । मुद्रा-स्फीति, मूल्य-वृद्धि, नैतिकता का ह्रास, भ्रष्टाचार, कालेबाजारी आदि के कारण जनता में असंतोष व्याप्त हुआ । नगरों में विलास बढ़ा ।

प्राचीन काल में भारतीय जीवन का आधार संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली थी । स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न परिस्थितियों के कारण संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली टूट गयी और यूरोपीय ढंग के आणविक परिवार बढने लगा । इसका सर्वाधिक प्रभाव नारी जीवन पर पड़ा । संयुक्त परिवार में साधनहीन नारी भी जीवन निर्वाह कर लेती थी । लेकिन उसके टूटने के फलस्वरूप जीवन निर्वाह केलिए नारी को भी नौकरी करना अनिवार्य बन गया । फलत: स्त्री-शिक्षा का प्र चार हुआ । विधवा विवाह को प्रोत्साहन मिला । "हिन्दु कोड बिल", "तलाक बिल" आदि के द्वारा नारी के अधिकारों को सुरक्षा मिली । नगरों में शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढी । कारखाने, दफ्तर, स्कूल, न्यायालय आदि स्थानों में स्त्रियाँ भी पुरुष के समकक्ष काम करने लगी । इस प्रकार उन्होंने आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रहने का प्रयत्न किया । राजनीति में भी नारी बडे बडे स्थानों को अलंकृत करने लगी ।

स्वतंत्र भारत में साक्षरता बढी । सन् 1951 में साक्षरता[1] 16·67 % थी, वह सन् 1971 में 29·34 % हो गयी । भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा को भी प्रमुख स्थान दिया ।

---

1. Another significant achievement in the post-independence period is the rise in the literacy rate from 16.67% in 1951 to 29.34% in 1971. The number of School going population (6-17 years) also increased from 23.5 million in 1950-51 to 74.34 million in 1968-'69 - 25 years of Indian Independence, p.109

बढ़ती हुई आबादी को रोकने केलिए भारत सरकार ने परिवार नियोजन आन्दोलन शुरू किया । पतिता स्त्रियों के उत्थान केलिए कई संस्थायें खोल दी गयी । विनोबा भावे का भूदान आन्दोलन ने भी समाज में महत्वपूर्ण कार्य किया ।

इस प्रकार सामाजिक समस्याओं के समाधान मात्र नहीं, सामाजिक कल्याण केलिए भी अनेक कार्य किये गये । लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्यक्ति अकेलेपन का अनुभव करता था । वह अपने को असुरक्षित महसूस करता था । समाज में विद्रोह, हिंसा और परस्पर अविश्वास की भावना बढी । देश की स्वतंत्रता ने जहाँ व्यक्ति के सामूहिक विकास के नये क्षितिजों का उद्घाटन किया है, वहाँ व्यक्ति में व्यक्तिवादी चेतना को भी जन्म दिया है । स्वातंत्र्योत्तर कविता में जो व्यक्तिवादी चेतना दिखाई पड़ती है, उसके मूल में यह कारण है । और इसलिए ही यह व्यक्तिवाद भी सामाजिक चेतना का अंग है ।

आर्थिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज का ढाँचा बदल गया । विभाजन, युद्ध, शरणार्थी समस्या आदि कारणों से देश की आर्थिक स्थिति शिथिल हुई[1] । स्वतंत्र भारत केलिए पहले 2750 लाख रुपये थे जिसमें से 1000 लाख से

---

1. Partition had not only caused the influx of about 8.5 million refugees into the country, but also led to major economic imbalances. The division of the countrymeant the loss of substantial sources of supply of food grains and agricultural raw materials.

   25 years of Independence, p.100

भी अधिक शरणार्थियों के पुनरधिवास केलिए खर्च किया गया[1]।

पूर्वी बंगाल संसार में सबसे अधिक जूट उत्पादन करनेवाला देश था । विभाजन के पश्चात् वह पाकिस्तान में शामिल हो गया । गेहूँ, चावल, कपास आदि के उत्पादन केन्द्र भी पाकिस्तान में हो गये । इसलिये स्वतंत्रता के बाद भारत में इन चीज़ों की कमी हुई । पहले, भारत से जूट, रुई आदि निर्यात करते थे । लेकिन स्वतंत्रता के बाद इन वस्तुओं का आयात करना पड़ा ।

खाद्यान्न की समस्या को सुलझाने केलिए 1948 में इस पर रखा गया नियंत्रण सरकार ने हटा दिया । अन्न की कमी के कारण भाव बढ गया । विदेशों से अन्न मँगवाकर सरकार ने इस समस्या को हल किया ।

जनसंख्या और जीवन की बाह्य परिस्थितियों में काफी अंतर हुआ[2]। सन् 1962 में चीन और सन् 1965 में पाकिस्तान से युद्ध करने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी । सन् 1965-67 में भारत में अकाल पडा । इससे खाद्यान्न के उत्पादन में बाधा पहुँचाई ।

प्राचीन काल से भारत कृषि प्रधान देश रहा और यहाँ की अर्थ व्यवस्था का आधार गाँव थे । स्वतंत्रता के बाद सरकार ने ज़मीन्दारी प्रथा का अंत किया । किसान खेतों का मालिक बन गया । स्वतंत्रता के पश्चात् देश के सामने, प्राकृतिक साधनों का विकास करके नये भारत का निर्माण करना, सबसे बडी समस्या थी ।

---

1. 25 Years of Independence, P.100

2. Ibid, p.121

देश की आर्थिक उन्नति के लिए भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का आयोजन किया । आलोच्य कालावधि के अंतर्गत तीन पंचवर्षीय (1951-56, 1956-61, 1961-66) और तीन एक वर्षीय (1966-67, 1967-68, 1968-69) योजनाओं का आयोजन किया गया । प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् 1951 में आरंभ हुआ । इसमें कृषि और खाद्यान्नों का उत्पादन, सिंचाई और जल विद्युत-विकास, स्वास्थ्य रक्षा, विस्थापितों का पुनर्वास आदि पर बल दिया गया । द्वितीय योजना में छोटे बडे उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया गया । तृतीय योजना में उद्योगों के विकास के साथ खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनने का लक्ष्य भी रखा गया । इन योजनाओं का लक्ष्य देश का सर्वतोन्मुखी विकास था और प्रथम योजना के अंतिम वर्ष तक आते आते भारत की आर्थिक स्थिति में आश्चर्यजनक सुधार आया ।

औद्योगिक क्षेत्र में भी काफी प्रगति हुई । कोयला, लोहा आदि के उत्पादन में आशातीत वृद्धि आयी । चित्तरंजन में रेलवे इंजन बनाने केलिये एक कारखाना खोल दिया गया । सरकार ने कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया । श्रमिक कल्याण केलिए भी कई योजनायें शुरू की गयी । गाँवों में सहकारी समितियाँ स्थापित किये गये । इससे किसानों को सस्ते सूद पर कर्ज लेने की सहायता मिली ।

इन सब प्रयत्नों के बावजूद देश अब भी गरीब है । देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहती है । बेकारी और महँगाई बढी । रुपये का अवमूल्यन हुआ । इसका कारण हमारे देश की पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था है । धनी लोग अधिक सम्पन्न बनते जा रहे हैं और साधारण जन जीने केलिये तडप रहा है । पूँजीवादी व्यवस्था के फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँट गया है - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग अथवा शोषक वर्ग और

शोषित वर्ग । समाज में इन दोनों के बीच मध्यवर्ग की स्थिति अधिक दयनीय है । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के असंतोष का मूल कारण यह आर्थिक व्यवस्था है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में जिस सुखी और सम्पन्न जीवन की कल्पना जनता के मन में थी, उसको पूरा न कर सका । इस कारण से उनमें निराशा और क्षोभ की मनोवृत्तियों का जन्म हुआ । स्वातंत्र्योत्तर कविता पर इसका ज्यादा प्रभाव पडा । कवियों ने इस अभावग्रस्त जीवन को सशक्त भाषा में मार्मिक चित्रण किया । "अभावग्रस्त जीवन की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर कविता में क्षोभ, परिवर्तन और आलोचना का स्वर मुखर हो उठे[1] ।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

इतिहास भूगोल, भाषा, आचार-विचार आदि में वैविध्य होने पर भी भारतीय जीवन की अतल गहराई में जो एकता विद्यमान है वह सारे विश्व में अतुल्य रही है[2] ।" यही भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है । स्वतंत्रता के बाद भारत में पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप देखा जा सकता है ।

---

1. डॉ.शम्भुनाथ चतुर्वेदी - नया हिन्दी काव्य और विवेचना, पृ.79

2. In spite of the bewildering diversity in the geographical features, the race, religion and language of the people, there is a deep underlying fund amental unity which is apt to be missed by the superficial observer.
B.N. Lunia - Evolution of Indian Culture, p.15

धर्म के नाम पर भारत का विभाजन हुआ । अनेक सांप्रदायिक दंगे हुए । भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही अनेक धर्म होते थे । किसी एक धर्म को प्रमुख स्थान नहीं दे सकता । इसलिये स्वतंत्र भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया । इससे स्वतंत्र भारत की जनता ने आत्मगौरव का अनुभव किया ।

भारत सरकार ने सन् 1954 में ललित कला अकादमी, साहित्य अकादमी और सन् 1953 में संगीत नाटक अकादमी स्थापित किया और भारतीय साहित्य और कला को प्रोत्साहित किया । हिन्दी को राजभाषा घोषित की गई । लेकिन आज अधिकांश काम अंग्रेजी में ही चल रहा है ।

शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ । सन् 1954 में भारत में 19 विश्वविद्यालय थे । सन् 1970 में उनकी संख्या 79 बन गयी । इस तरह सन् 1947 में जो 636 कलालय थे वे सन् 1970 में 3000 बन गये । सरकार ने शिक्षा के अवलोकन केलिये सन् 1948 में "विश्वविद्यालय शिक्षा समिति (University education Commission) सन् 1952 में सेकेंटरी एजुकेशन कमीशन (Secondary education Commission) और सन् 1966 में "कोठारी कमीशन" को नियुक्त किया ।

शिक्षा के क्षेत्र में कालानुकूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर इन समितियों ने ज़ोर दिया । इनके महत्त्वपूर्ण सुझावों की उपेक्षा करने के कारण हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है[1] । शिक्षित बेकारों की संख्या बढ़ गयी ।

---

1. 25 years of Indian Independence, p.199

अंग्रेज़ों ने हमारे देश में जिस शिक्षा का प्रचार किया, उसका उद्देश्य अपने शासन कार्यों में सहयोग देने केलिए कर्मचारियों को पैदा करना था। भारत का वर्तमान शिक्षा क्षेत्र अस्पष्टता और अराजकता से भरा हुआ है।

शिक्षा का विकास होने के कारण मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की संख्या बढ़ी। आर्थिक सम्पन्नता और सुखी जीवन, संस्कृति और सभ्यता का पर्याय बन गया। प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति आध्यात्म पर आधारित थी। वर्तमान युग में भौतिकवादी दृष्टि प्रमुख है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ

बीसवीं शती के पाँचवें दशक में दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने भारत के साहित्यकारों को विशेषकर हिन्दी कवियों को प्रभावित किया - अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति और राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता की प्राप्ति। स्वतंत्रता का सर्वाधिक प्रतिफलन हिन्दी कविता के क्षेत्र में पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ही भारतीय जनता के मन में नये स्वतंत्र भारत का चित्र होता था। लेकिन स्वाधीनता परवर्ती परिस्थितियों ने इस कल्पना को यथार्थ होने का अवसर नहीं दिया। इस खास परिस्थिति से प्रभावित होकर हिन्दी कविता में कुछ प्रवृत्तियों का उदय हुआ। "युग के साहित्यकार जिस प्रकार का साहित्य रचने की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं अथवा युग की परिस्थितियाँ रचनाकार को जिस प्रकार का लेखन करने को बाध्य अथवा प्रेरित करती है, वे ही प्रकार कालान्तर में प्रवृत्तियों के रूप में जाने जाते हैं।[1]" स्वाधीन भारत के समाज को उसकी सारी दुर्बलताओं के साथ पाठक के सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न कवियों ने किया है

---

1. डॉ. शेरजंग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. 115

किसी सिद्धांत या वाद का प्रचार करना स्वातंत्र्योत्तर कविता का लक्ष्य नहीं रहा । इन कविताओं की मूल चेतना सामाजिक है । "कोई भी राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय, मानवीय अथवा मशीनी, सामाजिक अथवा वैयक्तिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक विसंगति नहीं है, जिसे इन कवियों ने अपने ढंग से स्पर्श न किया हो[1]। इसलिये स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी कविताओं को किसी "वाद" का लेबुल न देकर "स्वातंत्र्योत्तर कविता" नाम दिया गया है ।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कविता समाज का ठीक प्रतिनिधित्व करने लगी । उसने सामयिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया । पूंजीवादी व्यवस्था पहले की तरह जन जीवन को पीसती रही । सत्तारूढ नेताओं ने जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से मुँह मोड लिया । वे रूस और अमरीका की चकाचौंध में उलझ गये । शोषण बढ़ा । उच्च और निम्न वर्ग की खाई बढ़ी । यह स्थिति इस युग के कवि सह नहीं सके । वे सडी गली समाज व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार करने लगे; जीवन के अभावों के प्रति क्षोभ और आक्रोश प्रकट करने लगे । समग्र देश के उत्थान का स्वर कविता में मुखरित हुआ । इन प्रवृत्तियों के बारे में आगे के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है ।

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध

व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध वर्तमान युग की समस्याओं में एक है । स्वतंत्रता परवर्ती परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप व्यक्ति स्वार्थी और पहले से अधिक आत्म-केन्द्रित बनता जा रहा है ।

---

1. डॉ. शेरजंग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. 257

पर स्वातंत्र्योत्तर कवि व्यक्ति को समाज की इकाई मानते हुए चले हैं। उन्होंने व्यक्ति के मन में सामाजिक चेतना जगाने का प्रयत्न किया। "इसलिये सामयिक काव्य पलायनवादी या आत्मकेन्द्रित नहीं कहा जा सकता। उसकी अपनी चेतना समाज चेतना के पूरक रूप में है। वह इनसान को इनसानियत का पाठ पढाना चाहता है, व्यक्ति को सामाजिक दायित्व से प्रेरित कराना चाहता है। साथ ही व्यक्ति की गरिमा को कुंठित करनेवाले सामाजिक प्रतिमानों के प्रति वह विद्रोह भी करता है[1]।

श्रीराम सिंह ने -

"स्व" से ऊपर "पर" के परि-
रक्षण में जो जन धारे।
कीर्तिमान वे सदा अमर है,
मरकर बीच हमारे[2] कहकर हम को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर सामाजिक हित केलिए जीने का उपदेश दिया है।

पंत जी ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का विश्लेषण करते हुए चिदम्बरा में इस प्रकार लिखा है -

"व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति, कैसी विडंबना।
साध्य प्रथम या साधन, - कैसा तर्क वृत्त है[3]!
xx xx xx
व्यक्ति समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर,
बढते जायेंगे विकास के स्वर्णिम पथ पर[4]।"

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 115
2. श्रीराम सिंह - एकलव्य, पृ. 3
3. पंत - चिदम्बरा, पृ. 270
4. वही, पृ. 248

पंतजी की उपर्युक्त पंक्तियों में उनकी समन्वय भावना भी देखी जा सकती है ।

व्यक्ति और समाज के घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए नरेश मेहता ने इस प्रकार कहा है कि "व्यक्ति की समस्यायें समाज की समस्यायें है, इस कारण से राम का वनवास परिजन और पुरजन केलिए अभिशाप बन गया और राम की व्यक्तिगत समस्यायें ऐतिहासिक प्रश्नों को जन्म दिया[1] ।

समाज व्यक्तियों का समूह है । इसका तात्पर्य है व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध जो व्यक्ति व्यक्ति का सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध के मूल में कोमलता, माधुर्य और स्नेह की धारा होती है । "इन सम्बन्धों का निर्माण घृणा, हठ और अनिच्छा पर संभव नहीं हो सकता है[2] । आलोच्य युग के अन्य कवियों ने भी इस विषय पर काफी विचार किया है ।

पारिवारिक समस्यायें

स्वातंत्र्योत्तर कविता ने पारिवारिक समस्याओं को भी चित्रित किया है । व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परम्परागत पारिवारिक मूल्यों में विघटन हुआ । परिवर्तित परिस्थितियों के कारण संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली टूटने लगी । पूंजीवाद और नागरिक सभ्यता के विकास के फलस्वरूप पारिवारिक इकाइयाँ टूटने लगी और परिवार यूरोपीय ढंग की 'फैमिली' जैसी लघुतम इकाई के रूप में बदलने लगा ।

---

1. नरेश मेहता - संशय की एक रात, पृ.20
2. दुष्यंत कुमार - एक कंठ विषपायी, पृ.12

प्रेम पारिवारिक जीवन का मूल तत्व है । लेकिन आज प्रेम एक बनावटी वस्तु बन गया है । कैलाश वाजपेयी की निम्न लिखित कविता इस बात का खूब साक्षात्कार करती है -

मगर प्यार भी लोग क्यों करें
जब हर दिमाग एक कनला है
हर दिल में एक मेंढक
हर पेट फूटा तसला है[1] ।

आज दाम्पत्य प्रेम का भावबोध भी बदल गया है । प्राचीन काल में पति-पत्नी के बीच देवता-पुजारी के सम्बन्ध की कल्पना की गई थी । भारतीय स्त्री पति की जीवन संगिनी, घर की लक्ष्मी, पुरुष की मर्यादा का संरक्षक, परिवार की परम्पराओं की प्रतिमूर्ति तथा बच्चों केलिए आदर्श होती है । पति पत्नी के बीच वैमनस्य होने पर परिवार टूट जायेगा । इस विघटन का प्रभाव दूरगामी होगा । इससे राष्ट्र का स्वास्थ्य बिगड जायेगा ।

भारतीय संस्कृति ने गृहस्थ जीवन को अधिक महत्वपूर्ण माना है । आज के समाज में गृहस्थी चलाना एक दुष्कर काम बन गया है । सामाजिक एवं आर्थिक दबावों के कारण नर-नारी के कोमल सम्बन्ध टूटने लगे हैं । नारी-पुरुष के प्रेम सम्बन्ध के स्थान पर आज शारीरिक भोग स्वीकार किया गया है ।

---

1. कैलाश वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.8

प्राचीन भारत में विवाह की सार्थकता पुत्रोत्पत्ती द्वारा परिवार की समृद्धि में देखी गई थी । आज बच्चे भारस्वरूप हो गये हैं ।

इन परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने नवीन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी चाही । सर्वेश्वर ने पती-पत्नी के सम्बन्ध को सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध माना है । घर के काम काज में व्यस्त पत्नी और बिस्कुट खाता हुआ बच्चा उनकी कविता में जीवित रहते हैं[1] । आर्थिक दबाव के कारण बच्चों का जन्म भी रोका जाता है । केदारनाथ अग्रवाल की निम्नलिखित कविता इस बात का प्रमाण देती है -

"ठप्प कर दिया है अब
बच्चों का प्रजनन
जन्म के बाद का जीना हराम हो गया है[2] ।

<u>वैवाहिक समस्यायें</u>

स्वतंत्रता परवर्ती युग में वैवाहिक मूल्यों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया । पुराने ज़मानेमें विवाह, परिवार के बडे बूढे परिवार की दृष्टि से करते थे, लडकों व लडकियों की इसमें कोई भी आवाज़ नहीं थी । आज विवाह जन्म जन्मांतर का सम्बन्ध न होकर एक समझौता बन गया है । आज प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विज्ञापनों द्वारा विवाह, विवाह के पूर्व लडके-लडकी का अकेले घूमने जाना, पुनर्विवाह, विवाह बिच्छेद आदि ज्यादा पैमाने पर चला जा रहा है । यौन सम्बन्धी

---

1. सर्वेश्वर - काठ की घंटियाँ, पृ.328
2. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ.187

धारणाओं में भी काफी परिवर्तन हुआ । अब विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध को युवा पीढ़ी ने स्वागत किया है ।

अनमेल विवाह, बाल विवाह, विवाह विच्छेद, बहुविवाह, दहेज, विधवा विवाह आदि प्रमुख समस्याओं की ओर आलोच्य युगीन कविता ने काफी विचार-विमर्श किया है ।

बाल-विवाह

प्राचीन भारत में एक प्रथा थी कि बालक एवं बालिका की अबोधावस्था में ही विवाह कर दिया जाता था । भारत में नारी को पीड़ित की जानेवाली एक प्रमुख समस्या थी बाल-विवाह । ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने सन् 1860 में स्त्री केलिए विवाह की उम्र दस साल को बढाकर कानून पास कराया । सन् 1929 में "बाल-विवाह नियंत्रण अधिनियम"[1] द्वारा यह उम्र 14 वर्ष हो गयी और पुरुष केलिए 18 वर्ष । स्वातंत्र्योत्तर भारत में विवाह की उम्र स्त्री केलिए 18 वर्ष और पुरुष केलिए 21 वर्ष है[2] ।

अनमेल विवाह

वर्तमान भारतीय समाज का एक अन्य दोष है अनमेल विवाह । पुराने जमाने में माता-पिता लड़का या लड़की के अभिप्राय के बिना विवाह सम्बन्ध स्थापित करते थे । तब बेमेल विवाह की संख्या अधिक थी । माता-पिता की अशिक्षा और अज्ञान भी अनमेल विवाह का कारण है ।

---

1. Child Marriage Restraint Act

2. Kumud Desai - Indian law of marriage and Divorce, p.3 (The special marriage Act 1954 section 4)

दहेज प्रथा

वर्तमान समाज की एक प्रमुख समस्या है दहेज प्रथा । अनमेल विवाह का प्रमुख कारण दहेज प्रथा है । दहेज की कमी के कारण वर्तमान समाज में कन्या या विवाहित स्त्री की हत्या भी होती है । समाज के सम्पन्न वर्ग अपने "काले धन" को खर्च करने केलिए दहेज देता है । इस प्रवृत्ति ने कम आय के ईमानदार माता-पिता केलिए समस्यायें पैदा कर दी है । कालान्तर में दहेज देना और लेना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है । आज दहेज के विरुद्ध सरकार ने कानून बनाया है । कवि तथा अन्य साहित्यकार भी इस के विरुद्ध लेखनी चला रहे हैं ।

विधवा की समस्यायें

समाज में विधवा का जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण है । इसके पीछे एक हद तक अनमेल विवाह तथा बाल विवाह की प्रथायें है । हिन्दू समाज में ऐसा विश्वास था कि पति की मृत्यु पत्नी के पूर्व जन्म के पापों के कारण होती है । अत: किसी शुभ कर्म में उनकी उपस्थिति अमंगलसूचक मानी जाती थी । पहले से ही दुखी और त्रस्त विधवा के साथ समाज आज भी अमानुषिक व्यवहार करता है। निराला की कविता में ऐसी एक विधवा है । स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने जहाँ सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है, वहाँ विधवा समस्या पर भी विचार किया है ।

इस समस्या का स्थायी समाधान विधवा विवाह और आर्थिक सुरक्षा से मिलेगा। सन् 1956 में जस्टिस रनाडे और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा विवाह केलिए कानूनी सम्मति मिली। लेकिन समाज ने मानसिक रूप से उसको स्वीकार नहीं किया है। "एक विधुर का पुनर्विवाह समाज स्वीकार करता है, क्योंकि उसके घर के ठीक संचालन केलिए यह परम आवश्यक है, लेकिन एक विधवा का पुनर्विवाह समाज की दृष्टि में हेय है[1]।"

जाति-भेद का विरोध

"जाति" विविध अंगों वाला एक अत्यंत जटिल संस्था है जिसका एक विस्तृत इतिहास होता है[2]। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार समाज का आधार वर्ण-व्यवस्था थी। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र - चार वर्णों में विभाजित है। इस विभाजन का आधार कर्म था, जन्म नहीं।

ब्राह्मण केलिए अध्ययन एवं अध्यापन, यज्ञ करना, दान देना और लेना और धर्म का संरक्षण करना नियुक्त धर्म है। क्षत्रिय का धर्म-रक्षा करना, दान देना, नियम बनाना आदि और वैश्य का धर्म पशुपालन करना, खेती करना, सूद पर रुपये देना, व्यापार करना आदि है। शूद्र का धर्म उपर्युक्त तीन वर्णों के लोगों का आदर करना और उनके आदेश का पालन

---

1. Dr.Girija Khanna and Mariamma.A. Varghese - - Indian Women Today, p.162

2. S.V. Ketkar - History of Caste in India, p.8

करना है[1]। प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुण तथा कर्मों के अनुसार इन्हीं में से किसी न किसी का सदस्य होना पड़ता है और जिस वर्ण का वह सदस्य होता है उसी के अनुसार जीवन बिताना उसका धार्मिक कर्तव्य हो जाता है। चारों वर्णों में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा सर्वोपरी है और शूद्र की निम्नतम।

हिन्दुओं की इस वर्ण व्यवस्था ने कालान्तर में जाति-व्यवस्था को जन्म दिया। जाति शब्द "जन" धातु से निकला है, जिसका अर्थ है जन्म लेना। जन्म के आधार पर मिली हुई सामाजिक प्रतिष्ठा अन्तरवैवाहिकी पेशा, ऊँच-नीच का भेद-भाव और खान-पान के नियम जाति की मुख्य विशेषतायें हैं।

वर्ण व्यवस्था एक आदर्श समाज की आदर्श वर्ग-व्यवस्था थी। "जाति जन्म पर आधारित एक सामाजिक-राजनैतिक संगठन सा है जिससे व्यक्ति का जीवन पूर्णत: घिरा रहता है[2]। जाति-व्यवस्था एक जटिल सामाजिक व्यवस्था है।

स्वतंत्र भारत में जाति-भेद एक सामाजिक समस्या बन गयी है। नेहरूजी ने एक स्थान पर लिखा है - यह व्यवस्था एक विशेष युग की परिस्थितियों में बनी थी और इस का उद्देश्य समाज का संगठन और उसमें समतोल पैदा करना था, लेकिन इसका विकास कुछ ऐसा हुआ कि यह उसी समाज केलिये और मानवीय मस्तिष्क केलिये बन्दीघर बन गया।[3]

---

1. Dr. M.C.J. Kagzi - Segregation and untouchability abolition, p.193

2. गौरीशंकर भट्ट - भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति, पृ.303

3. हिन्दुस्तान की कहानी, पृ.38

- G 5106 -

भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना ने नई सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को जन्म दिया। यातायात की सुविधायें, नागरिक सभ्यता का विकास, औद्योगीकरण आदि के परिणाम स्वरूप जाति व्यवस्था शिथिल होने लगी। भारत सरकार की ओर से जाति-भेद को नष्ट करने केलिए काफी प्रयत्न हुआ[1]। 19 वीं शती के समाज सुधारकों और संस्थाओं ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई[2]। पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से इसमें कुछ परिवर्तन अवश्य आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने पिछडी जातियों की ओर विशेष ध्यान दिया और उनके जीवन-स्तर को उठाने केलिये बहुत प्रशंसनीय कार्य भी किया। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने भारत को एक जाति हीन और वर्गहीन राज्य घोषित किया।

लेकिन इन सारे प्रयत्नों और परिवर्तनों के बावजूद जाति-व्यवस्था स्वतंत्र भारत की एक जटिल सामाजिक समस्या बन गई है। "जातियाँ विघटन का प्रतीक है, उन्हें मिटाने की सारी चेष्टायें विफल हुई है[3]। इससे प्रभावित होकर स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने जाति-पाँति का विरोध किया। दुष्यंत कुमार ने "एक कंठ विषपायी" में सर्वहत के मुख से जाति भेद का विरोध किया है -

---

1. Caste disabilities removal Act 1850, Special Marriage Act 1872, Special Marriage renewal Act 1923

2. ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज

3. नर्मदेश्वर प्रसाद - जाति-व्यवस्था, पृ. 104

[library stamp]

मुझ में या शिव में क्या अन्तर है
यही न कि मैं तो सर्वहत हूँ
- साधारण हूँ -
और वो विशिष्ट देवता है, शिवशंकर है
किंतु प्यास दोनों की एक ही है[1]।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने जाति-पाँति का विरोध मात्र नहीं किया, बल्कि यह संदेश भी दिया है कि जाति-भेद से ऊपर मनुष्य एक है । जैसे अंचल ने लिखा -

मानव का मनुजत्व एक है, सब जीवन के राही
सबकी आँखों में जगमग हो रहा प्रेम का सपना
सबके सुख में सुख पाते, सबका मातम अपना[2]।

अस्पृश्यता का विरोध

जाति व्यवस्था की सबसे बड़ी हानि है अस्पृश्यता या छुआछूत की भावना । सदियों से यह भावना हिन्दू समाज की एक कमी या कमज़ोरी रही थी । आज भी यह भावना कुछ अंशों में जारी रहती है । जाति संरचना के उच्चतम स्तर पर ब्राह्मण है और निम्नतम स्तर पर चमार, भंगी जैसी जातियाँ है जो अछूत मानी जाती है । जाति-जाति में पाई जानेवाली पवित्रता तथा अपवित्रता की भावना ने, कुछ जातियों को अछूत मानने की परम्परा को जन्म दिया[3]।

---

1. दुष्यंत कुमार - एक कंठ विषपायी, पृ.115
2. अनुपूर्वा, पृ.7
3. गौरीशंकर भट्ट - भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति, पृ.793

स्वतंत्र भारत में अस्पृश्य जातियों को विशेषाधिकार दिया गया । गांधीजी ने इनको "हरिजन" नाम दिया । हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति उच्च वर्ग नहीं देते थे । सन् 1936 में त्रावनकोर के महाराजा ने एक विशेष आज्ञापत्र द्वारा राज्य के सभी मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश की अनुमति दे दी । गांधीजी द्वारा स्थापित (सन् 1932) "अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ" तथा अन्य संस्थायें अस्पृश्यता निवारण में एक हद तक सहायक रही ।

स्वतंत्र भारत के कवियों का ध्यान भी इस ओर गया और समाज शरीर से इस भूत को भगाने केलिये उन्होंने अपनी लेखनी उठाई । निम्न जाति में जन्म लेने के कारण ब्राह्मण के शिष्यत्व से वंचित "एकलव्य" के शब्दों में कवि ने अपना विचार प्रकट किया है -

मानव निर्मित समाज का,
क्या है यही प्रयोजन
शील पुत्र हूँ लेकिन इसमें,
दोष है क्या मेरा[1] ।

साम्प्रदायिकता का विरोध

राष्ट्रीयता की भावनाओं को कुचलने केलिए अंग्रेज़ों ने भारत में साम्प्रदायिक भेद भाव का बीजारोपण किया । भारत छोडते छोडते अंग्रेज़ सरकार ने हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य को खूब बढावा दिया । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह भेद-भाव अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था ।

---

1. श्रीराम सिंह - एकलव्य, पृ.8

देश का विभाजन इसका परिणाम था। यह हमारे इतिहास की अत्यंत दुखदायी घटना है। सांप्रदायिकता का दूसरा कुफल गांधीजी की हत्या है जो हमारे इतिहास की दूसरी मर्मभेदी घटना है।

स्वतंत्रता के बाद देश की राजनैतिक परिस्थितियों ने साम्प्रदायिकता को बढाने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता दी। जाति-बिरादरी, साम्प्रदायिकता के माध्यम से जनता का तथाकथित सेवक अपने जाति-बांधवों से वोट मांगने की सावधान अपील करता है। जहां दल के नाम पर वोट मिलते हैं, वहां दल के नाम पर और जहां सम्प्रदाय के नाम पर, जाति के नाम पर वोट मिल सकते हैं, मांगे जाते हैं[1]।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने साम्प्रदायिक दंगों से त्रस्त देश का चित्रण करके जन मन को इसके विरुद्ध जागृत कराने का प्रयत्न किया है। जैसे -

उन विरोधी शक्तियों की आज भी तो चल रही है चाल,
यह उन्हीं की है लगाई, उठ रही जो घर-नगर से ज्वाल,
काटता उनके करों से एक भाई दूसरे का भाल,
आज उनके मंत्र से है बन गया इनसान पशु विकराल[2]।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद भी "मंत्रों और आयतों की जगह दहाड सुनाई देती है। पूजाघरों से आती सुगन्धी, जलती लाशों की चिराइंध में बदल जाती है[3]। इसे आलोच्य युग के किसी भी कवि ने

---

1. डॉ. शेरजंग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. 122
2. बच्चन - धार के इधर-उधर, पृ. 51-52
3. सर्वेश्वर - कुआनो नदी, पृ. 80

अनदेखा नहीं छोडा । नोआखाली, बिहार और पंजाब में धर्म के नाम पर हुए अत्याचारों को कवियों ने अपनी कविता का विषय बनाया । सारा भेद-भाव भुलाकर एक हो जाने की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर दिया है । "मन्दिर, मस्जिद, मठ और विहार सभी हमारे गौरव और गरिमा के प्रतीक हैं । हमें अपना गौरव पहचानना है[1] ।

जीवन का यथार्थ चित्रण

स्वतंत्रता के पश्चात् काव्य रचना किये जानेवाले सभी कवियों ने अपने को समाज का अभिन्न अंग माना है । निरानन्द, सुख दुख से अछूता जीवन उन्होंने नहीं चाहा । जीवन की कटुता एवं विषमता को उन्होंने अनुभव किया है । उन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव किया है, दूसरों के अनुभव करते देखा है, उन सबको ईमान्दारी से यथार्थ रूप में चित्रित करना अपना कर्तव्य माना है । जैसे -

मैं गाता हूँ गाने ज्यादातर जिन्दगी के
उसी के सुखों के उसी के दुखों के[2] ।

सत्ताधारियों को प्रसन्न करने केलिए उनकी स्तुति करना इन कवियों ने पसंद नहीं किया है । झूठी प्रशंसा उनके वश की बात नहीं थी -

मैं क्या करूँ
मैं चूहे को चूहा ही कह पाता हूँ

----

1. सोहनलाल द्विवेदी - पूजागीत, पृ.93
2. भवानीप्रसाद मिश्र - गांधी पंचशती, पृ.233

यदि मैं कहता गणपति वाहन
तो शायद मिनिस्टर होता[1]।

प्रात: काल मिल के साईरन से लेकर रात में आकाशवाणी से मौसम का हाल प्रसारित होने तक रोजमर्रा की जिन्दगी के यथार्थ चित्र मर्मस्पर्शी वाणी में चित्रित करना स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है ।

बेकारी

स्वातंत्र्योत्तर भारत की एक ज्वलंत समस्या है शिक्षित लोगों की बेकारी । रोजगार के दफ्तरों में हज़ारों की संख्या में शिक्षित व्यक्ति का नाम दर्ज किया गया है । साक्षात्कार मात्र आडम्बर होता है । भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति, बेकारी की आशंका और जीविका के सम्बन्ध में अनिश्चय आदि शिक्षा काल में ही युवकों को पीड़ित करते हैं । अंग्रेज़ी शिक्षा एक ऐसे मध्यवर्ग को जन्म दे रही थी जो किताबी पढाई के कारण हाथ-पैरों से निकम्मा होता जा रहा था । शिक्षा संस्थाओं अथवा सरकारी दफ्तरों में बाबूगीरी करने के अतिरिक्त मध्यम वर्ग के शिक्षित युवकों के पास रोज़ी कमाने का कोई साधन नहीं था[2] । यह स्थिति आज भी मौजूद है । दो महायुद्धों, स्वतंत्रता संघर्ष, विभाजन और तज्जन्य समस्याओं तथा अन्य कई कारणों से शिथिल पडी हुई आर्थिक व्यवस्था आदि कारणों से बेकारी बढी । बेचारे नवयुवक रोज़ "नो वेकन्सी" का शिकार बन जाता है[3]। यह देखकर कवि मौन नहीं रह सका -

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा - अतुकांत, पृ.43
2. डॉ. शंभुनाथ पांडेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ.19
3. प्रभाकर माचवे - स्वप्न भी, पृ.48

मैं बार-बार
नौकरी के दफ़्तर
और डाक घर तक
जाकर लौट / आता हूँ
अर्जी और अपना प्रेमपत्र लिये
अपने ज़माने में
कितना बड़ा फ़ासला है
एक कदम के बाद
दूसरे उठाने में[1]।"

भूख और गरीबी का चित्रण

भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन आज भी वह अविकसित देश रहा है। देश की आम जनता गरीब है। मंत्रियों ने बतायी अन्न की इफरात है, लेकिन यहाँ भात अभी तो सपना हो गया है और भारत माता की आँखों से नीर बह रहा है[2]। अक्सर देश की दरिद्रता को सूचित करने केलिए कवियों ने व्यंग्य का भी सहारा लिया है। सोहनलाल द्विवेदी ने "अर्ध-नग्न" कविता में भारत की दरिद्रता का खुला बयान किया है। अन्नपूर्णेश्वरी भारत माता क्षुधित है। वह कंगालिनी बन गयी है। रत्नाभरणा भारत धात्री आज भिखारिणी बन गयी है[3]।

---

1. श्रीकांत वर्मा - माया दर्पण, पृ.104
2. नागार्जुन - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.50
3. सोहनलाल द्विवेदी - पूजागीत, पृ.9

भारत की दरिद्रता का प्रमुख कारण महंगाई और कालेबाजारी है। "रोटी और स्वाधीनता" कविता में दिनकर ने इस बात को स्पष्ट किया है कि जब सभी नागरिकों को रोटी न मिले, तब तक आज़ादी का कोई अर्थ नहीं है। भारत भूषण ने कहा है कि हमारा समाज साहित्यकार को भी केवल पैसे केलिए साहित्य रचना करने को बाध्य करता है। उन्होंने लिखा -

जो एकांत में बैठकर कविता रचा करूँ ?
मैं तो बस कभी-कभी अनुवाद करता हूँ
जब बच्चों की फीस या
बीवी को देने केलिए
अतिरिक्त पैसों की ज़रूरत पड जाती है[1]।

देश की गरीबी की ओर शासक वर्ग आँखें मूंदकर रहते हैं। कवियों ने इस बात की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है -

खाली पेट पर / जो रखकर चिराग
तैराते जा रहे हैं / अपने ऐश्वर्य के सरोवर में
बुझती आँखों के जो / बनाकर बंदनवार
सजाते जा रहे हैं
संसद और विधान सभाओं के द्वार[2]।"

---

1. भारत भूषण - एक उठा हुआ हाथ, पृ.28
2. सर्वेश्वर - गर्म हवायें, पृ.24

महानगरीय सभ्यता पर व्यंग्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतवर्ष में नगरों का महत्व बढ गया है । औद्योगीकरण के कारण लोग जीविकोपार्जन केलिए गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर चलने लगे । इस कारण से नगरों की आबादी तेज़ी से बढ़ी । लेकिन आवास, शिक्षा, भोजन, सफाई आदि की व्यवस्था में वृद्धि नहीं हुई । नगरों की स्थिति शोचनीय बन गयी ।

आलोच्य युग के कवियों में श्रीकांत वर्मा, भारतभूषण, सर्वेश्वर और अज्ञेय ने इस विषय की ओर ज्यादा ध्यान दिया है । श्रीकांत वर्मा की कविताओं में नगर उसके सम्पूर्ण रूप में मौजूद है -

शहरों के छतों में
ह-ल-च-ल
हुई
मक्खियाँ
बैठ गयीं
भ-ह-रा
अपनी अपनी मेज़ों पर[1] ।

नागरिक सभ्यता व्यक्ति और व्यक्ति के बीच मानवीय सम्बन्धों केलिए कोई महत्व नहीं देती है । प्यार जैसे मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है । नगरों में सम्पन्न वर्ग का हृदय भावनाशून्य बन गया है । मध्यवर्ग कुंठित और त्रस्त है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के संघर्ष में वे स्वार्थी बन गये हैं । नागरिक सभ्यता में मानवता का नाम तक

1. श्रीकांत वर्मा - दिनारंभ, पृ.33

नहीं मिलेगा । इस अवसर में बच्चन ने इस प्रकार लिखा है -

वे कुंठित, संत्रस्त, विखंडित, ध्वस्त
निराश, हताश, परास्त, पिटे, अलगाये,
अपने घर में निर्वासित - से
ऊबे ऊबे / अन्ध गुहा में डूबे-डूबे।[1]

नगरों में जो दिखावटी जिन्दगी और खोखली हँसी दिखाई पडती है उस पर कवियों ने व्यंग्य किया है ।

युवा पीढी के मन में जो भीड और अकेलेपन का बोध पनप रहा है वह आधुनिक नागरिक सभ्यता की देन है ।

समसामयिक समस्याओं का चित्रण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले हमारे सामने प्रमुख रूप से एक समस्या थी - दासता से मुक्ति । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे सामने अनेक समस्यायें आयीं । ये समस्यायें मात्र राजनीतिक नहीं, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भी है ।

पूंजीवादी व्यवस्था के कारण समाज में वर्ग संघर्ष बढा । इसे समाप्त कर समाजवादी समाज की स्थापना करना था ।

---

1. बच्चन - उभरते प्रतिमानों के रूप, पृ.102-103

सरकारी कर्मचारियों में नैतिक पतन हुआ । इस अवस्था में परिवर्तन लाये बिना देश को आशानुकूल उन्नत नहीं किया जा सकता था । आर्थिक अवस्था को सुधारने केलिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनायें तथा अन्य कार्यक्रम शुरू किये । लेकिन देश उनसे अधिक लाभ नहीं उठा सके । गरीबी और भुखमरी देश में साधारण बात बन गयी । किसानों की दशा अच्छी नहीं थी । मध्यवर्गीय आदमी जीने केलिए तडप रहा था । शिक्षित बेकारों की संख्या प्रतिदिन बढ रही थी । पश्चिमीकरण की दौड में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक कमियाँ आ पहुँची । नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी । विधवा समस्या, वेश्या समस्या, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, सती आदि अनेक समस्याओं का हल करना बाकी था ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कवि तथा अन्य साहित्यकार पहले से भी अधिक जन जीवन के निकट आये और समाज की समस्याओं से परिचित होने लगे । कवियों ने अपनी कविताओं में उपर्युक्त समस्याओं का चित्रण करके समाज की आँखों के सामने रखा जिससे समाज को इनकी ओर विशेष ध्यान देने की प्रेरणा मिली ।

नागार्जुन, कुँवरनारायण, प्रभाकर माचवे, भवानीप्रसाद, भारतभूषण जैसे प्रायः इस युग के सभी कवि साधारण मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य थे । इसलिये इनकी कविताओं में मध्यवर्गीय बेचैनी का यथार्थ रूप मिलता है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में नारी

भारतीय साहित्य इस बात का साक्षी है कि युग के बदलने के साथ ही नारी के रूप बदले हैं । वैदिक काल में स्त्री पूर्ण स्वतंत्रता का

अनुभव करती थी । उत्तर वैदिक काल मे उसके पतन का इतिहास आरंभ हुआ । वहाँ से लेकर आज तक युग युगों से "नारी नर का एकाधिपत्य भोग रही थी"[1] ।

महाकाव्य काल में मातृत्व की प्रतिष्ठा बनी हुई थी । लेकिन उस काल में भी नारी पुरुष की सम्पत्ति थी । जैन धर्म ने नारी को पुरुष की मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधा कहा । बौद्ध धर्म और बौद्ध साहित्य में नारी की स्थिति में पर्याप्त परिष्कार हुआ ।

धर्मशास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थ "मनुस्मृति" में नारी-जीवन का सम्पूर्ण चित्र उपलब्ध है । मनु ने "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति"[2] कहकर नारी को सदा केलिए अस्वतंत्र रखने का आदेश समाज को दिया । मुसलमानों के शासन काल में नारी केवल विलासिता की वस्तु बन गयी ।

पुराणों में नारी का जीवन संकुचित परिधि में ही रह गया । विधवा की स्थिति दयनीय थी । सती प्रथा को भी पुराणों में प्रोत्साहन दिया गया । और पातिव्रत धर्म का पालन ही नारी का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य माना गया ।

वीरगाथा काल में भी नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण नहीं था । वह कामोपभोग का साधन मात्र रह गयी । नारी केलिये राजा परस्पर लड़ते थे । सती प्रथा, पर्दा प्रथा, शैशव-विवाह आदि कुप्रथायें प्रचलित थी ।

---

1. प्रभाकर माचवे - अनु-क्षण, पृ.73
2. मनु - 9/14-15 (बीस स्मृतियाँ)

कबीर ने नारी को माया कहा और साधना के मार्ग पर बाधा कहकर उसकी निन्दा की । तुलसी की सीता भारतीय नारी के परमोज्ज्वल रूप का विधान करती है । रीतिकालीन नारी विलास की सामग्री थी ।

19 वीं शती में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहनराय, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस प्रभृति समाज सुधारकों ने नारी की दशा सुधारने केलिए प्रयत्न किया । अंग्रेज़ों के शासन काल में पहले पहल सार्वदेशिक रूप में स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध किया गया । ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज जैसी संस्थाओं और भारत में आये डानिश, जर्मन और अमरीकी धर्म-प्रचारकों ने भारतीय नारी की उन्नति केलिए बहुमूल्य योग दान दिया ।

20 वीं शती में इस बात की ओर ध्यान देनेवाले प्रमुख व्यक्ति गाँधीजी थे । इन सब प्रेरणाओं के अतिरिक्त स्वयं नारी हृदय में भी युग युग से सुप्त चेतना जागृत हुई । वह घर की चार दीवारी से बाहर आकर राजनीति में सक्रिय योग देने लगी ।

इन सारे प्रयत्नों के होते हुए भी, स्वतंत्र भारत में नारी शोषण का शिकार बन रही है । शिक्षा की दृष्टि से भारत की अधिकांश महिलायें आज भी अशिक्षित है ।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने नारी की स्थिति के चित्रण करके उसको सचेत कराने केलिए प्रयत्न किया है । मनु को उद्धृत करके नारी को निरंतर शोषित करनेवाले लोग यह भूल गया है कि मनु ने यह भी कहा है -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला:क्रिया:[1] ।

इस सत्य को समझकर आलोच्य युग के कवियों ने स्त्री के प्रति किये जानेवाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठायी । उन्होंने नारी को मित्र माना है । नारी शोषण का विरोध करते हुए नागार्जुन ने लिखा -

नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर
नहीं करेगा वह दूसरा विवाह
सदा रहेगा एक पत्नीव्रत शील[2] ।

नारी के उत्थान केलिये ज़ोर से नारे लगानेवाले इन कवियों ने वर्तमान समय में आधुनिक होने केलिए पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण करनेवाली नारी के अनैतिक आचरणों का विरोध किया है ।

वेश्या समस्या

वेश्या वृत्ति हमारे समाज के लिये एक विषम समस्या है । यह नारी जीवन के लिये एक घृणित एवं जघन्य पाप भी है । धार्मिक क्षेत्र में देवदासी रूप में नारी का प्रवेश उसके वेश्या रूप का प्रथम स्वरूप है । कालान्तर में धार्मिक भावना विलीन हो गयी । यही वेश्यावृत्ति आगे चलकर एक सामाजिक विभीषिका के रूप में आज भी मौजूद है ।

---

1. मनु - III/56 (बीस स्मृतियाँ)
2. नागार्जुन - युगधारा, पृ.42

सामाजिक व्यवस्था भी एक कारण है । वेश्या की पुत्री भी वेश्या जीवन अपनाने केलिये बाध्य है क्योंकि उसके सामने अन्य कोई रास्ता नहीं । आर्थिक पराधीनता, सामाजिक परिस्थितियाँ, उचित संरक्षण का अभाव, अशिक्षा, संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन, अज्ञान आदि भी इसके कारण हैं ।

प्रत्येक युग के समाज सुधारकों और साहित्यकारों ने इस कुत्सित वृत्ति का विरोध किया ।

कुछ कवियों ने समाज को दोषी कहने के साथ साथ स्त्री को ही इस के विरुद्ध संघर्ष केलिए आह्वान भी किया है । अज्ञेय ने वेश्यावृत्ति को इस प्रकार चित्रित किया है -

और खडी खम्भे के अन्धियारे में चेहरे की मुर्दनी छिपाये
थकी उँगलियों से मूजी आँखों से रूखे बाल हटाती
लटकी मैली झालर के पीछे से
बोलेगी "दया कीजिये, जैंटिलमैन
और लगेगा झूठा जिसके स्वर का दर्द
क्योंकि अभ्यास नहीं है अभी उसे सच के अभिनय का ।[1]

सती प्रथा

सती प्रथा नारी को जीवन से वंचित करनेवाली एक कुरीति है । सती शब्द का अर्थ है - सत्य का गमन करनेवाली साध्वी, पतिव्रता । ऐतिहासिक दृष्टि से सती प्रथा की सूचना वैदिक काल से प्राप्त होती है ।

---

1. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए थे, पृ.58

पति दिवंगत हो जाता है तो पत्नी अपने पति की चिताग्नि में प्रवेश कर उसी का अनुगमन करती है । यही "सती" है । अथर्ववेद, गृहयसूत्र, स्मृतिग्रन्थ, पुराण, महाभारत आदि में सती का उल्लेख मिलता है । जब युद्ध क्षेत्र में अपने पतियों की वीरगति की सूचना पातीं तो राजपूत पत्नियाँ सब श्रृंगार करके चिता में सती हो जाती थी । रामायण में मेघनाद की पत्नी सुलोचना के अपने पति के साथ सती होने का उल्लेख मिलता है ।

प्राचीन काल में कवियों ने सती को प्रोत्साहन दिया था । पति की मृत्यु के साथ नारी का अस्तित्व भी समाप्त हो, ऐसा माना जाता था ।

कालान्तर में "सती" एक प्रथा के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हो गयी । वह सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान का विषय बन गया । स्त्रियों को बलात् अग्नि में झोंका जाने लगा । तब समाज में इसके प्रति अनास्था होने लगी । इसको अविवेक और मोह का विलास मानने लगा । सन् 1829 में यह प्रथा कानून द्वारा रोकी गयी ।

आधुनिक युग में जीवन को नष्ठ करना पाप समझता है । विधवा स्त्री को जीवन के उन्नायककारी कर्तव्यों के प्रति प्रेरित करना उचित है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश रखना उपयुक्त होगा -

"मिली जो देह उसका घात करना,
महापातक स्ववपु का पात करना ।
सहो काँटे कि उर यह फूल होवे,
सहो यह दुख कि विधि अनुकूल होवे ।"[1]

---

1. बलदेवप्रसाद मिश्र - साकेत संत, पृ.82

राजनीतिक चेतना

सन् 1947 में स्वतंत्र होने के साथ ही भारत को कई समस्याओं का भी सामना करना पडा जिनका विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय के आरंभ में किया गया है । देश-विभाजन साम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थियों के पुनर्निवास की समस्या, काश्मीर और गोआ की समस्यायें, देशी रियासतों की समस्यायें, गांधीजी, नेहरू और शास्त्री की मृत्यु, चीन और पाकिस्तान का आक्रमण आदि प्रमुख राजनीतिक घटनाओं एवं समस्याओं ने स्वातंत्र्योत्तर कवियों को प्रभावित किया । वर्तमान राजनीति पर उन्होंने काफी विचार किया । राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय चेतना इस युग की कविताओं में भरी हुई है ।

स्वतंत्रता का स्वागत

भारतीय जनता के साथ भारत के साहित्यकारों ने भी चिरप्रतीक्षित स्वतंत्रता का मुक्त मन से स्वागत किया । कवियों ने स्वतंत्रता का स्वागत करके नयी जिम्मेदारियों, उत्तरदायित्व और गौरव की ओर संकेत किया है । उन्होंने स्वतंत्रता को एक अमूल्य वरदान कहा । स्वातंत्र्य सूर्य से ताप और स्वतंत्रता सरोवर से जल (ताप और जल जीवन के प्राण तत्व है) ग्रहण करके खिले स्वतंत्रता रूपी कमल का कवियों ने स्वागत किया।[1] विभाजन से उत्पन्न अमानवीय परिस्थितियों ने उनके मन को ग्लानि से भरा दिया फिर भी उन्होंने स्वातंत्र्य सूर्य के उदय का स्वागत किया । जैसे -

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र - दूसरा सप्तक, पृ.6

उठो आँख खोलो कि पौ फट गई है
युगों की अन्धेरी निशा कट गई है
नया प्राण लेकर हवा आ रही है
नया गान लेकर सब आ रही है[1]।

स्वतंत्रता की खुशी मनाते समय आने वाले संकटों के प्रति भी वे सजग थे। उन्होंने स्वाधीनता की प्रशस्ति मात्र न गाकर समाज को नये दायित्वों से अवगत कराने का प्रयत्न भी किया है। स्वतंत्रता संघर्ष के बलिदानियों का जयगान करना वे नहीं भूले।

देश-विभाजन पर ग्लानि और क्षोभ

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में भारत का विभाजन हुआ। विभाजन और उससे उत्पन्न परिस्थितियों के कारण देश में दुख, निराशा, विद्वेष और अनिश्चय का वातावरण उत्पन्न हुआ। भवानीप्रसाद मिश्र, बच्चन जैसे कवियों ने दुख प्रकट करने के साथ इसे "सांप्रदायिक दंगों का खूनी परिणाम"[2] कहकर इस केलिये सांप्रदायिकता को दोषी ठहराया।

शरणार्थी समस्या

देश-विभाजन के परिणाम स्वरूप पाकिस्तान से लाखों की संख्या में हिन्दु शरणार्थी बनकर भारत आये। वे काफी संख्या में दिल्ली में एकत्रित हो गये। इन के पुनर्वास की समस्या स्वतंत्र भारत की एक प्रमुख समस्या थी। इनके करुण जीवन का प्रभाव तत्कालीन कवियों पर ज्यादा पडा।

---

1. भवानीप्रसादमिश्र - गांधी पंचशती, पृ.112
2. वही, पृ.167

काश्मीर, गोआ और देशी रियासतों की समस्यायें

स्वतंत्रता प्राप्ति के केवल दो महीने बाद अक्तूबर 1947 में पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला किया । काश्मीर को हस्तगत करना उनका उद्देश्य था । अनेक देशी रियासतों को भारत में सम्मिलित करने की समस्या भी भारत के सामने थी । काश्मीर और गोआ के अस्तित्व की रक्षा का स्वर स्वातंत्र्योत्तर कविता में मुखरित हुआ । दिनकर, प्रभाकर माचवे, नीरज, नागार्जुन जैसे कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा इसकी प्रतिक्रिया व्यक्त की । काश्मीर समस्या पर विचार करते हुए नागार्जुन ने लिखा है कि काश्मीर पर काश्मीरी जनता का राज होगा ।

सिरीनगर जम्मू ऊधमपुर गिलगित वो लद्दाख
दूर-दूर तक फैले हैं जी, काश्मीर के शाख !
गिलगित के अड्डे पर अब अमरीकी कुत्ता भूँकेगा
काश्मीर का बच्चा-बच्चा अब इन पर थूँकेगा
काश्मीरी ही काश्मीर का कर सकते उद्धार ।[1]

गाँधीजी की हत्या

स्वतंत्र भारत की सबसे दुखदायी घटना थी गाँधीजी की हत्या । इसका प्रभाव समस्त भारतवर्ष पर पड़ा । कुछ कवियों ने ग्लानि और क्षोभ प्रकट किया और साम्प्रदायिकता को बापू की हत्या के लिये दोषी कहा । गाँधीजी के आदर्शों का पालन करने के लिये उन्होंने समाज को प्रेरणा दी ।

---

1. नागार्जुन - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.39-40

दिनकर के विचार में गांधीजी की मृत्यु एक व्यक्ति की मृत्यु नहीं, "मनुजता के सौभाग्य विधाता की मृत्यु है[1]। बापू के बिना भारत की अवस्था देखने में असमर्थ कवि ने बापू को फिर लौट आने को कहा[2]। नागार्जुन ने यह प्रतिज्ञा भी ली कि साम्राज्यवादी दैत्यों के विकट खोह जब तक खंडहर न बनेंगी तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा[3]।

राष्ट्रीयता की भावना

एक राजनीतिक व्यवस्था के अधीन रहनेवाले तथा परस्पर एकता का भाव रखनेवाले समुदाय को राष्ट्र कहता है। जातीय एकता, भाषा, धर्म, भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक एकता और ऐतिहासिक परम्परा राष्ट्र के आधारभूत तत्व है। राष्ट्रीयता एक प्रवृत्ति है जो जीवन के मूल्यों के तारतम्य में राष्ट्रीय व्यक्तित्व को एक उच्च स्थान प्रदान करती है[4]।

प्राचीन भारत में जनपदों का सामूहिक नाम भारतवर्ष था। "भारतवर्ष" नाम हमारी प्राचीन राष्ट्रीय भावना का मूलाधार है। वेदों में हमारी राष्ट्रीय भावना के आदर्शतम उदाहरण मिलता है। चौथी और पाँचवीं शताब्दी में गुप्त साम्राज्य की छाया में प्रत्येक प्रदेश, साहित्य, भाषा, कला, शिल्प आदि की दृष्टि से स्वतंत्र था। फिर भी राजनैतिक

---

1. दिनकर - बापू, पृ.39
2. वही, पृ.41
3. नागार्जुन - युगधारा, पृ.58
4. Nationalism in its broader meaning refer to the attitude which ascribes to national individuality, a high place in the hierarchy of values - Encyclopedia of Social Sciences, Vol.XI, p.231

दृष्टि से एक संघीय ढाँचे के अधीन था । सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हर्षवर्द्धन ने उत्तर भारत में राजनैतिक एकता स्थापित की । 12 वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण के बाद दिल्ली सल्तनत की स्थापना से भारत के इतिहास में राजनीतिक गठन का युग आरंभ हुआ । 16 वीं शती में मुगलों के शासन काल में भारत में राजनीतिक गठन के साथ साथ सांस्कृतिक पुनरुत्थान भी हुआ । अंग्रेज़ों के आगमन के बाद भारत में राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई । गुलामी, भारतीय जनता के मन में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के पीछे की प्रबल प्रेरक शक्ति रही ।

अंग्रेज़ों ने यहाँ अनेक सुधारवादी प्रवृत्तियाँ कीं । वे यातायात की सुविधायें लाये । उन्होंने भारतियों को पाश्चात्य ढंग की शिक्षा दी । इन सभी कार्यों ने भारत में राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बना दिया । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हमारी राष्ट्रीयता की जड़ें हमारी ऐतिहासिक और आर्थिक परम्पराओं में गहरी पैठी हुई है । तत्कालीन कवि भी समय समय पर इस भावना को मजबूत बनाने में अपना अपना योगदान भी दे रहा था ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में उपलब्ध राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य पूर्व राष्ट्रीयता से भिन्न है । स्वतंत्रता के पहले लिखी गयी कविताओं की राष्ट्रीयता में देश की मुक्ति केलिये संघर्ष और बलीदान की भावना प्रमुख रही थी । स्वातंत्र्योत्तर कविता में जो राष्ट्रीयता है उसमें स्वतंत्र भारत का गौरव गान है, स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आकांक्षा है, देश-प्रेम है, विसंगतियों पर व्यंग्य है, साथ ही अंतर्राष्ट्रीय चेतना भी है ।

यह दुख की बात है कि आज भारत में स्वस्थ और प्रखर राष्ट्रीयता का एक प्रकार से अभाव है । फिर भी वर्तमान समय में राष्ट्रीयता की भावना उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, आर्थिक शोषण आदि के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये प्रेरणाप्रद है ।

देश-प्रेम

देश की अवधारणा चाहे नयी हो, पर देश-प्रेम की भावना वैदिक काल से चली आ रही है । राष्ट्रीयता के मूल में देश प्रेम की भावना रहती है । हमारी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आकांक्षा, तिरंगे झंडे का अभिवादन, शहीदों और बलिदानों के प्रति आदर, देश की विसंगतियों और विद्रूपताओं को व्यक्त करके उन्हें दूर करने की इच्छा, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम, भविष्य के प्र ति आकांक्षा आदि देश-भक्ति के अंग है । गांधीजी, विनोबा, नेहरू जैसे नेताओं और अन्य वीर-पुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने की मनोवृत्ति वास्तव में देश-प्रेम से प्रेरित है । स्वातंत्र्योत्तर कविता में देश-प्रेम उपर्युक्त सभी रूपों में मिलता है । वर्तमान युग में राजनीतिक मतवाद, भ्रष्टाचार, छल कपट आदि अनेक कारणों से जहाँ जहाँ देश प्रेम में कमी हो रही है वहाँ इन कवियों ने सही राह दिखायी है ।

पाकिस्तान और चीन के आक्रमण की प्रतिक्रिया

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत को चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों का सामना करना पडा । ये आक्रमण भारत की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को झकझोरनेवाले थे । इन आक्रमणों की प्रतिक्रिया भी स्वातंत्र्योत्तर कविता में व्यक्त किया गया है । चीन की मनुष्यत्व हीनता पर कवियों ने रोष प्रकट किया । युद्ध का विरोध करनेवाले अहिंसा के पुजारी कवियों ने भी अहिंसा का परित्याग कर "गिराओं बम, गोली दागो" का सन्देश दिया क्योंकि पशुता के सामने हमारे स्नेह और हमारा सहिष्णुता का कोई मूल्य नहीं ठहरेगा । जैसे दिनकर ने लिखा -

---

1. दिनकर - परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.58

"यह नहीं शान्ति की गुफा, युद्ध है, रण है
तप नहीं, आज केवल तलवार शरण है[1]।"

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक विसंगतियाँ

स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है वर्तमान राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण। आलोच्य युग के सभी कवियों ने इस विषय पर विचार किया है। इन्होंने किसी राजनीतिक सिद्धांत का प्रचार नहीं किया, न दलगत राजनीति का। स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में राजनीति से सीधा साक्षात्कार करती हुई नज़र आती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति अपने पूरे रूप में कालुष्य लेकर प्रकट हुई है। हड़ताल, जुलूस, घेराव, बन्द, हिंसा आदि जीवन के अनिवार्य अंग बन गए। आज नये नये दलों का निर्माण हो रहा है। दल-बदल साधारण प्रवृत्ति बन गई है। राजनैतिक नेता भाषणों पर ज्यादा विश्वास रखता दिखाई पड़ता है। जन सेवा उन्होंने प्राय: छोड़ दी है। मतदान कागज़ी कंचन का दास हो रहा है। राजनीति एक व्यवसाय बन गयी है। गणतंत्र "एक बीमार गाय" के समान है जिसकी साँस जाती है, बन्द होना बाकी है[2]।" "राजनीति का शरीर गन्दा है[3]।"

---

1. दिनकर - परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.12
2. कैलाश वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.24
3. वही, पृ.74

संसद पर भी इस युग के कवियों की दृष्टि गयी है। वहाँ "भारतीय लोकतंत्र का सब कुछ है - समाजवादी ढोंग, भाई - भतीजा वाद, सुविधा की राजनीति, संसदीय प्रणाली का मारदोल, हें हें करती हुई भीड"[1]। चुनाव लोगों की राय का प्रतीक नहीं, धन और धमकी का आसरा है[2]। "एक ओर झूठे आश्वासन और दूसरी ओर लगातार फुसफुसी देनेवाले[3] सत्ताधारी मुखौं[4] की नकली मुखौटों का पर्दाफाश करते हुए कवियों ने यह चेतावनी भी दी कि "प्रजातंत्र में मनमानी नहीं चलेगी[5]।"

स्वतंत्रता चिर प्रतीक्षित होते हुए भी उसके मिलने की कुछ ही वर्षों में उसका महत्व खो गया। इसलिये दुष्यंत कुमार ने लिखा -

"गाँधी का शिष्य मैं
कोई अनुशासन, कानून नहीं मानता
दर असल
मैं बुरी तरह स्वतंत्र हूँ[6]।"

आज स्वतंत्रता के नाम पर सर्वतंत्र स्वतंत्रता, अराजकता, उच्छृंखलता और भीड की राजनीति है[7]। स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों, विडम्बनाओं और विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है।

---

1. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध, पृ.
2. अशोक वाजपेयी - फिलहाल, पृ.67
3. कैलास वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.28
4. वही, पृ.37
5. दुष्यंतकुमार - एक कंठ विषपायी, पृ.101
6. वही, पृ.133
7. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, - पृ.17

युगपुरुषों का स्मरण

युग पुरुष उसको कहता है जो सबकी पीडा के साथ अपने मन की व्यथा को जोड सके, जहाँ तक समय मुड सके, उसे निर्दिष्ट दिशा में मोड सके, जो सारे समाज का धर्म गुरु होता है, जो सबके मन का अन्धकार अपने प्रकाश से धोता है[1]। इस दृष्टि मे स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने गाँधीजी, नेहरू, शास्त्री, विनोबा, जयप्रकाश, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, चन्द्रगुप्त, अशोक, गौतम बुद्ध आदि महापुरुषों का स्मरण किया है। उनके प्रति श्रद्धांजलि भी अर्पित की है। उनके महान आदर्शों की स्थापना करने का प्रयत्न भी उन्होंने किया है। इन महात्माओं के जीवन दर्शन से समाज में नयी चेतना फूंकने का प्रयत्न भी उन्होंने किया है।

देश के नवनिर्माण की चेतना

स्वातंत्र्योत्तर कविता में समाज में नूतन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करके देश के नवनिर्माण की आकांक्षा का स्वर सुनाई पडता है। "स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी कविता में नई सामाजिक व्यवस्था, नये मनुष्य की प्रतिष्ठा, जीवन मूल्यों की नई यथार्थ चेतना, आधुनिकता बोध की नई दृष्टि, नये भारत की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप अर्चना और वन्दना का स्वर मुखर हुआ है[2]।

---

1. दिनकर की सूक्तियाँ, पृ.78
2. डाॅ.देवराज पथिक - नयी कविता

प्रत्येक भारतीय की तरह कवि ने भी स्वतंत्र भारत के बारे में सुनहले सपने देखे थे । लेकिन वे सपने टूट गये तो निराशा के अन्धकार में डूबकर बिलखने के बदले अपनी कविताओं में नयी शक्ति भरकर देश के नवनिर्माण करने की ओर प्रवृत्त होने लगे । मोहनलाल द्विवेदी की कुछ पंक्तियाँ इस बात के प्रमाणस्वरूप ली जा सकती हैं -

विषम पथ ये सम बनेंगी,
सुखद जीवन क्रम बनेंगी,
जन्म नव, जीवन नवल,
नवदेश, नवयुग ज्ञात होगा[1] ।

अन्तर्राष्ट्रीय चेतना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अंतर्राष्ट्रीय समझौते और सहयोग की आवश्यकता और महत्त्व बढ गया । आज कोई भी राज्य पूर्ण रूप से आत्म निर्भर नहीं है । सुरक्षा एवं शांति केलिए भी राष्ट्रों के बीच स्वस्थ सम्बन्ध अनिवार्य बन गया है ।

विश्व की एकता और मानवतावादी चेतना का प्रसार और प्रचार स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक मुख्य प्रवृत्ति है । यह प्रवृत्ति उसकी अंतर्राष्ट्रीय चेतना का परिचय देती है । कोमनवेल्थ, इसरायल और अरब देशों के युद्ध, वियतनाम युद्ध आदि अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर आलोच्य युग की कविता में विचार किया गया है । कवियों ने यह आशा भी प्रकट की है कि

---

1. मोहनलाल द्विवेदी - पूजागीत, पृ.100

दुनिया भर के देशों में
सब जगह लोग हैं दोस्त-किस्म के
शान्तिशीलता जिनको प्रिय है
आना-जाना मिलना-जुलना
लेन-देन साहित्य विचार और भावों का ।[1]"

आर्थिक चेतना

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही विस्थापितों के पुनर्वास केलिये सरकार ने करोडों रुपये खर्च किये । चुनाव केलिये भी बहुत रुपया खर्च किया गया । चीन और पाकिस्तान के आक्रमण ने भारत की आर्थिक स्थिति को खराब कर दिया । आर्थिक अभाव ने सामाजिक विकास में रुकावट उत्पन्न की । अंग्रेज़ों के शासन काल में आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदायों का अन्त हुआ । "ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने भारत को राजनीतिक दृष्टि से गुलाम बना दिया, आर्थिक दृष्टि से दिवालिया और सामाजिक दृष्टि से अगतिशील[2] ।"

पूंजी की कमी,कुशल प्राविधिज्ञों का अभाव, एकांकी उत्पादन, पिछडी हुई कृषि व्यवस्था, उद्योग और श्रम की मात्रा में व्यापक असंतुलन आदि हमारी आर्थिक पिछडेपन के कारण है । स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने पूंजीवाद और पूंजीपतियों का विरोध किया, किसान, मज़दूर और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की , वर्ग वैषम्य को चित्रित करके समानता केलिए क्रान्ति का आह्वान किया, श्रम के महत्व को उद्घोषित किया ।

1· भवानीप्रसाद मिश्र - गांधी पंचशति, पृ·217

2· नर्मदेश्वर प्रसाद - जाति-व्यवस्था, पृ·111

रोटी और वसन जीवन के प्रथम सोपान है[1]। इस बात का समर्थन करते हुए दिनकर ने लिखा -

जिनका उदर पूर्ण हो वे सोचें जो बात,
हम भूखों को सिर्फ चाहिए एक वसन, दो भात ।
भूख लगी है, रोटी दो[2]।"

पूंजीवाद का विरोध

19 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के बाद, उत्पादन को सुचारु रूप से चलाने केलिए अधिक श्रम, पूंजी और उत्पत्ति के अन्य साधनों की आवश्यकता होने लगी । समाज के साधारण उत्पादकों को इन्हें जुटा पाना कठिन कार्य था । धीरे धीरे सम्पत्ति और पूंजी कुछ ही लोगों के हाथों में एकत्रित होती गयी । इस व्यवस्था में अधिकांश श्रमिक अपना स्वामित्व खोकर मज़दूर बन गये । वैयक्तिक सम्पत्ति और पूंजी के समर्थक पूंजीवादी लोग मज़दूरों का खूब शोषण करते हैं । हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद भी इस स्थिति में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ । सम्पन्न लोग अधिक सम्पन्न बन जाते हैं और शोषित गरीब से गरीबतर हो जाते हैं । स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने इस व्यवस्था की कटु आलोचना की है ।

आलोच्य युग के कवियों ने पूंजीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया दो प्रकार व्यक्त की है । एक तो पूंजीवाद की खुलकर निन्दा और उसका विरोध किया है । दूसरा, इस व्यवस्था को मिटाने केलिए शोषित वर्ग को क्रांति केलिए आह्वान किया है । "ये परजीवी सत्ता और सुविधा के जाल से

---

1. दिनकर - नीलकुसुम, पृ.104
2. वही, पृ.96

छुटकारा नहीं चाहते[1]। यह सत्य है । इसलिये क्रांति आवश्यक बन जाती है । दूसरों के श्रम से अनुचित लाभ उठाने, परहित का हनन करने, परमर्म का छेदन करने से ही पूजीपति बडी रकम एकत्रित करने में सफल होते हैं । पूंजीपतियों की पूंजी सार्वजनिक सम्पत्ति होनी चाहिए जिससे कि वह पूंजी शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा इत्यादि पर खर्च होकर पुन: उन सहस्रों मनुष्यों तक पहुँच जाय जिन्होंने वस्तुत: उसको पैदा किया था[2]। वास्तव में पूंजी एक सामूहिक उपज है । दरअसल हमारी अधिकांश समस्याओं का कारण पूँजीवाद है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले गांधीजी के साथ प्रत्येक भारतीय ने "रामराज्य" का सपना देखा था । लेकिन स्वतंत्रता के बाद वह सपना पूर्ण नहीं हुआ । "परतंत्र भारत की जनवेदनायें और शासन प्रणाली तक कोई उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर न हुआ । जनजीवन को पीसनेवाली पूँजीवादी समाज-व्यवस्था भी ज्यों की त्यों बनी रही । यह स्थिति कवियों केलिए सह्य नहीं थी । उन्होंने प्रशासन की नीति और पूँजीवादी समाज-व्यवस्था पर व्यंग्य बाणों से प्रहार कर अपना रोष व्यक्त किया[3]।" जैसे -

"धोखे से भी साथ नहीं पूंजी को देना है[4]"
क्योंकि "दूजे कंधों पर चढकर बढ चलना गलत है[5]।"

---

1. कैलास वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.45-15
2. जगदीश सहाय श्रीवास्तव - समाज दर्शन की रूपरेखा पृ.118
3. डॉ.कृष्णलाल हंस - प्रगतिवादी काव्य साहित्य, पृ.302-303
4. भवानीप्रसाद मिश्र - गांधी पंचशती, पृ.224
5. वही, पृ.269

वर्ग-वैषम्य

सम्पत्ति के असमान वितरण ने समाज में दो वर्गों को जन्म दिया - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग या पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग या शोषक वर्ग अथवा शोषित वर्ग । उत्पादन के साधनों के स्वामित्व रखनेवाले और श्रम का उपयोग करनेवाले पूंजीपति वर्ग है । "सर्वहारा वर्ग से तात्पर्य आधुनिक मजदूरों से है जिनके पास उत्पादन का अपना खुद का कोई साधन नहीं होता, इसलिये जो जीवित रहने केलिये अपनी श्रम शक्ति को बेचने को विवश होते हैं । सर्वहारा वर्ग १९ वीं शताब्दी का श्रमजीवि वर्ग है[1] ।"

इन दो वर्गों के हितों में वैरुद्ध्य होने के कारण इनके बीच संघर्ष उत्पन्न होता है । उच्च वर्ग के लोग सदा निम्न वर्ग का शोषण करते हैं । निम्न वर्ग के लोग इतना दलित एवं दीन होते हैं कि रोटी के ऊपर सोचने में भी असमर्थ है । "पेट की आग के डर से इस वर्ग के लोग न सिर्फ हर अन्याय को चुपचाप सहते और अकाल को सोहर की तरह गाते हैं, भेडिये को भाई भी कहते हैं । यही नहीं वे दूसरों को भी अपराध के असली मुकाम पर ऊँगली रखने से मना करते हैं[2] ।"

स्वातंत्र्योत्तर कवि सदा शोषित वर्ग के साथी रहे । माचवे ने एक कविता में लिखा -

---

1. Manifesto of the Communist Party - Marx and Engeles
2. डॉ॰ यश गुलाटी - कविता और संघर्ष चेतना, पृ॰ 149

नहीं यहाँ पर कुछ भी शाश्वत या चिरकालिक
सब कुछ बँटा हुआ दो रिश्तों में है नौकर अथवा मालिक[1]।

वर्ग विभाजन के कारण समाज के लोग दो प्रकार के जीवन जी रहे हैं। एक ओर विलासिता का जीवन और दूसरी ओर आदमी जीवित रहने केलिए खून को पसीना बनाकर बहाते हैं। गरीबी का भार इस निम्न वर्ग पर सीधे पड़ते हैं और सुविधा प्राप्त लोगों ने इन्हें सदा भू भार समझे और समझते आ रहे हैं[2]। इस पूँजीवादी वर्ग चेतना पर व्यंग्य प्रहार करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है -

बढ न जायें। छा न जायें
मेरे इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ
हमला न कर बैठें खतरनाक
कुहरे के जनतंत्री
वानर ये, नर ये
समुदाय भीड
डार्क, मासेज ये "गाँव" है
श्यामवर्ण मूढों के दिमाग खराब है[3]।"

हमारे समाज में 'कहीं दूध के बिना मानव की संतान तरसती है तो कहीं श्वान क्षीर के मटके खाली करते जाते हैं। कोई घी से नहा

---

1. प्रभाकर माचवे - स्वप्न-भंग, पृ.82
2. नागार्जुन - युगधारा, पृ.65-66
3. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ.24

रहा है, किसी को रोटी तक नहीं मिलता ।"[1] दिनकर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने वर्ग वैषम्य को मिटाने केलिये क्रांति का आह्वान किया है ।

सर्वहारा वर्ग के प्रति विशेष सहानुभूति

भारत एक कृषि प्रधान देश है । खेतीहर मज़दूर हमारे समाज का वह अंग है, जिसका बुरी तरह शोषण किया जा रहा है । महंगाई, मिलावट आदि साधारण जन के जीवन को कठिन बनाता है । आलोच्य युग के कवियों ने इन परिस्थितियों को अपनी कविताओं में रेखांकित किया है ।

औद्योगिक सभ्यता के विकास से उत्पन्न भारत की समस्यायें पश्चिम की समस्याओं से भिन्न है । "भारत के मजदूर वर्ग के सामने विज्ञान तथा अन्य सुविधाओं की अति से उत्पन्न और अकेलेपन अथवा उसके ध्वंस से उत्पन्न कुंठा और त्रास की समस्या नहीं है, यहाँ औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न समस्यायें हैं - मज़दूरों की गन्दी बस्तियाँ, गाँवों की स्वस्थ और मुक्त परम्पराओं के स्थान पर शहरों में बढ़ते हुए, सभ्यता के नाम पर उत्पन्न होते हुए कलंक"[2] आदि । इस कलंक की ओर समाज और सरकार को सचेत कराने का प्रयत्न स्वातंत्र्योत्तर कविता ने किया है । शोषित और पीड़ित जनता को अपने अधिकारों के प्रति सचेत कराने का प्रयत्न भी किया गया है । जैसे -

---

1. दिनकर नीलकुसुम, पृ.96
2. सावित्री सिन्हा - तुला और तारे, पृ.76

समस्या एक -
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर और शोषण-मुक्त
कब होंगे ?[1]

मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

हमारे समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच त्रिशंकु के समान लटके मध्यवर्ग की स्थिति बहुत असहाय और शोचनीय है । मध्यवर्ग की संख्या पूँजीपतियों से अधिक है । मध्यवर्गीय व्यक्ति निम्नवर्गीय व्यक्ति से अधिक बुद्धिमान और शिक्षित भी है । नागार्जुन, भारतभूषण, त्रिलोचन जैसे आलोच्य युग के प्राय: सभी कवि मध्यवर्ग का व्यक्ति है । इसलिये इस युग की कविताओं में मध्यवर्गीय जीवन के अनेक चित्र उभरकर सामने आते हैं । ये मध्यवर्गीय लोग सरकारी कार्यालयों या दफ्तरों में बाबू है । उनकी आर्थिक विषमताओं के साथ फाईलों के बीच जीवन बितानेवाले उनकी मानसिक विषमताओं को भी कवियों ने रेखांकित किया है ।

कागज़ी योजनाओं पर व्यंग्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1951 में हमारी आर्थिक उन्नति केलिये भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनायें शुरू की । किसी भी देश के आर्थिक विकास में गाँवों का प्रमुख स्थान होता है । गाँधीजी की आर्थिक नीति में गाँव केन्द्र में रखा गया है । इसलिये ग्रामीण जनों के उत्थान और कल्याण केलिये कई प्रकार की योजनायें बनाई गई है । लेकिन इन योजनाओं का

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ. 162

लाभ जनता के कुछ गिने-चुने प्रतिनिधि लेते हैं । योजनाओं की निरर्थकता ने कवि को दुखी बना दिया है ।

श्रम का महत्व

श्रम के महत्व को उद्घोषित करते हुए कर्मण्यता का सन्देश देना स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । कोई भी प्रयास जो एक निश्चित उद्देश्य की सिद्धि केलिए किया जाता है, श्रम कहलाता है । कभी व्यक्ति अपनी इच्छा से अपनी आवश्यकता केलिये श्रम करता है, कभी सामाजिक आवश्यकताओं केलिए । कर्मठ मनुष्य मरने के क्षण तक वृद्ध नहीं होता है और अकर्मण्य मनुष्य यौन को क्षण-प्रतिक्षण खोता है । सुविधा से जो सुख मिलता है, वह मूल्यवान नहीं होता है, पर श्रम से मिली सफलता का सुख और स्वाद भिन्न होता है[1] । आलस्य मात्र व्यक्ति का नहीं, देश का दुर्भाग्य है[2] ।

समाजवाद

वर्ग वैषम्य को मिटाकर समाजवादी समाज को स्थापित करना आलोच्य युग की कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । समानता से सम्बन्धित दो प्रकार की विचारधारायें हमारे समाज में प्रचलित हैं । समाजवाद एक सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारा है । मार्क्स इसका जनक और अधिष्ठाता माना जाता है ।

---

1. श्रीराम सिंह - एकलव्य, पृ.13-19
2. दिनकर - परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.56

स्वातंत्र्योत्तर कविता का लक्ष्य किसी विचारधारा या सिद्धान्त का प्रचार नहीं । मार्क्सवाद के अनुसार शोषक और शोषित वर्ग में निरंतर संघर्ष चलता रहता है । मार्क्स के विचार में अंतिम विजय सर्वहारा वर्ग की होती है । रूसी क्रांति का आधार मार्क्स का सिद्धांत था । वहाँ इसका प्रवर्तक लेनिन थे । चीन का साम्यवाद अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद नहीं । भारत ने सैद्धांतिक रूप से समाजवाद को स्वीकार किया है । लेकिन व्यावहारिक स्तर पर इसकी स्थापना नहीं हुआ है ।

भारत की अर्थ व्यवस्था मिश्रित अर्थ व्यवस्था है । भारत ने पूर्ण रूप से मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं किया है । इस परिस्थिति में स्वातंत्र्योत्तर कविता का विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट हो जायेगा कि कवियों का लक्ष्य किसी सिद्धांत का प्रचार नहीं, आर्थिक शोषण का अंत करना है । समाज को महत्व देने के साथ ही इन्होंने व्यक्ति की नितांत उपेक्षा नहीं की ।

गाँधीजी भी समाजवाद की स्थापना के पक्ष में थे । लेकिन रक्तक्रांति का मार्ग उन्हें स्वीकार नहीं । भवानीप्रसादमिश्र, सोहनलाल द्विवेदी जैसे कवि गाँधी विचारधारा के समर्थक थे ।

<u>सांस्कृतिक चेतना</u>

समाज में मनुष्य के जीवन को उन्नत बनाने वाली एक व्यापक अवधारणा है संस्कृति । सृष्टि के प्रारंभ में अन्य जीवियों की तरह मनुष्य भी एक प्राकृतिक प्राणी था । लेकिन सृजनात्मक वृत्ति ने उसको सांस्कृतिक प्राणी बना दिया । समाजशास्त्रियों ने सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त सभी प्रकार के ज्ञान को संस्कृति कहा[1] । "संस्कृति मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों,

---

1. Leonard Broom and Philip Selznick - Principles of

नैसर्गिक शक्तियाँ तथा उनके परिष्कार का द्योतक है, अर्थात् मानव जीवन के आचार विचार का शुद्धीकरण है जिसका परम उद्देश्य जीवन का चरमोत्कर्ष प्राप्त करना है[1]।"

सभ्यता और संस्कृति में थोडा अन्तर होता है। सभ्यता मनुष्य जीवन का बाहरी विकास है। संस्कृति मनुष्य का आन्तरिक उत्कर्ष है। भारतीय संस्कृति ने विश्व की अनेक संस्कृतियों को आत्मसात् कर लिया है। उसकी उल्लेखनीय विशेषता उसकी मूलभूत एकता है। इतिहास, भूगोल, भाषा, रस्म और रिवाज़, आचार-विचार आदि में भारतीय संस्कृति का वैविध्य स्पष्ट होता है। लेकिन इस वैविध्य में जो एकता झलकती है वह है हमारी संस्कृति की आन्तरिक सत्ता।

भारत का अतीत उज्ज्वल था। गीता, महाभारत, रामायण आदि हमारी संस्कृति के "ट्रेशर ऐलन्ड्स"[2] है। वाल्मीकी ने राम को सम्पूर्ण भारत के प्रतीक पुरुष के रूप में चित्रित किया। रामायण और महाभारत की कथाओं को आधार बनाकर भारत की सभी भाषाओं में अनेक कृतियाँ रची गयी है। अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारत में जो नवजागरण हुआ, वह सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला था। सभी धार्मिक ग्रन्थों ने प्राय: एक ही सन्देश समाज को दिया है - बुराई को समाप्त करके अच्छाई की ओर बढना।

भारत के "पाँच हज़ार वर्षों की महान संस्कृति"[3] के प्रति आलोच्य युग के कवियों ने श्रद्धा प्रकट की है। दिनकर ने शान्ति और सभ्यता के

---

1. लजपतराय गुप्त - बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ.35

2. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture, p.85

3. भवानीप्रसाद मिश्र - गान्धीपंचशती पृ.3

उन्नयन के तत्वों को हमारे अतीत में खोजने का प्रयत्न किया[1]।

वर्तमान सांस्कृतिक संकट

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भयंकर सांस्कृतिक संकट उपस्थित हुआ है। आज सभ्यता का अर्थ "हर अगले पल नई तरह से ऊबना उबाना है।"[2] पश्चिम के अन्धानुकरण करने के भ्रम में हम अपनी संस्कृति का महत्व भूल रहे हैं। पुरानी मान्यतायें और आस्थायें खण्डित हो रही है। विघटित मूल्यों के प्रति आलोच्य युग के कवियों ने गहरी व्यथा प्रकट की है और नवीन मूल्यों को पुन: स्थापित करना भी चाहा। सत्य, नीति, अहिंसा आदि का महत्व कम हो रहा है। हिंसा और क्रांति बढ़ रही है। सर्वत्र भ्रष्टाचार दिखाई पड़ता है। मानव आज दानव बन गया है। विज्ञान के प्रभाव के कारण जीवन में यांत्रिकता आई है। धर्म का महत्व कम हो गया। शिक्षा के क्षेत्र में भी कई कमियां आ गई।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने इन सभी पहलुओं पर विचार किया है। इस अमानवीय सभ्यता का विरोध करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा -

संस्कृति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रों के
अंदर का वासी वह
नग्न अति बर्बर देह
सूखा हुआ, रोगीला पंजर मुझे दीखता है[3]।

---

1. दिनकर - नीलकुसुम, पृ.84
2. कैलास वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.11
3. मुक्तिबोध - चांद का मुँह टेढ़ा है, पृ.79

परम्परा के प्रति मोह तथा रूढियों का विरोध

यह स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । यहाँ परम्परा और रूढि का अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है । परम्परा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त एक अमूल्य चीज़ है, जिसको समाज पीढियों से ग्रहण करता चला आया है । सामाजिक संगठन में परम्परा का बडा हाथ होता है । डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी[1] ने परम्परा को एक गतिशील, जीवन्त प्रक्रिया कहा । उसमें हमें जो कुछ मिलता है, उस पर खडे होकर आगे केलिये हम कदम उठाते हैं । "परम्परागत आचार, व्यवहार, संस्था, वस्त्र, विधि, गीत, लोकवार्ता आदि परम्परा के अंग हैं[2] । वास्तव में परम्परा हमारी सांस्कृतिक विरासत है ।

परम्परा के निर्जीव या ह्रासशील अंश रूढि है । "रूढियाँ आप से आप बन जाया करती है जैसे हाथ में घट्टे पड जाते हैं[3] । जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन होने के साथ परम्परा के कुछ तत्व रूढि बन जाते हैं । इनका तिरस्कार करना आवश्यक है ।

आलोच्य युग के कवियों ने एक ओर परम्परा से प्रेम किया है तो दूसरी ओर रूढियों का तिरस्कार भी किया है । आधुनिक होने केलिये या समाज में आधुनिकता लाने केलिये परम्परा को ठुकराना उनको अच्छा नहीं लगा। लेकिन राजनीतिक-सामाजिक क्रान्ति, आर्थिक संघर्ष, पश्चिम का अन्धानुकरण आदि कारणों से परम्परा विघटित हो रही है ।

1· साहित्यिक निबन्ध, पृ॰612

2· Encyclopedia of Social Sciences, Vol.15, p.63

3· अमृतराय - सह चिन्तन, पृ॰50

युवा पीढ़ी अपने जीवन में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं चाहती है। परम्परा को वह अपने सुखी जीवन के मार्ग में बाधा मानती है। इसलिये वह इसे तोड़ देना चाहती है। इसको "डि-आथराइसेशन" कहलाता है[1]।"

रूढ़ियों का विरोध करते हुए कवि ने लिखा -

गिरे युग का शीर्ण वल्कल,
रूढ़ियों का छत्र श्यामल[2]।

कुछ कवियों ने रूढ़ियों में परिवर्तन करके आधुनिक युग के अनुकूल बनाना चाहा। लेकिन यह आसान नहीं।

मानसिक गुलामी पर व्यंग्य

दो सौ वर्षों की लम्बी गुलामी ने भारतीयों को एक प्रकार से मानसिक रूप मे भी गुलाम बना दिया। अंग्रेज़ हमारे देश से गये, हम स्वतंत्र हुए, लेकिन ऐसा लगता है अंग्रेज़ियत यहाँ से अब तक नहीं गयी।

---

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.10
2. सोहनलाल द्विवेदी - पूजागीत, पृ.9

युवा पीढी ने अंग्रेज़ियत में डूबना आधुनिकता और प्रगति माना है । उन्होंने वास्तव में अपनी संस्कृति और अपने मूल्यों का निषेध किया है । भवानी प्रसादमिश्र, प्रभाकर माचवे जैसे कवियों ने इस अवस्था का चित्रण करके जन मन को इस मानसिक दासता के विरुद्ध सचेत बनाने का प्रयत्न किया है ।

युद्ध एवं शांति

दो महायुद्धों के भीषण संकट झेलने के बाद अब एक तीसरे विश्वयुद्ध की भीषणता मानवता को सता रही है । पिछले दो महायुद्धों में भीषण नरसंहार हुआ । इससे भी भीषण था युद्ध का ध्वंसावशेष । आर्थिक संकट ने नैतिक संकट उत्पन्न किया और इस प्रकार संस्कृति का ह्रास हुआ । युद्ध की विकरालता ने मानवता को शांति की शाश्वतता में विश्वास करने केलिये प्रेरित किया । हिरोशिमा और नागसाकी ने मानवता को शांति के बारे में सोचने केलिए प्रेरित किया ।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने इस सत्य को पहचान लिया कि "युद्ध एक उन्माद है, शांति एक सत्य है[1] ।" उन्होंने युद्ध की विभीषिकाओं का चित्रण करके शांति की आवश्यकता से मानवता को सचेत कराने का प्रयत्न किया । अंचल ने एक कविता में लिखा -

---

1. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव - निबन्ध संचयन, पृ.427-428

बन्द करो इस नरभक्षक मरघट की सौदेबाजी
हमें तुम्हारे अभिशापों की याद अभी है ताजी
xx xx xx
जहरीले अणु के विस्फोटकों को अब बुझ जाने दो[1] ।

समाजशास्त्रियों ने यह चेतावनी दी कि "पिछले दो महायुद्धों में जीवन और सम्पत्ति की बृहत क्षति हुई है और भविष्य में यदि और जब युद्ध हुआ, यह क्षति और नाश कई गुना बढ जायेगा और मानव जाति का अतिजीवन ही खतरे में होगा[2] ।

विश्व के सामने भारतवर्ष शान्ति का प्रतीक मानी जाती है । स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने इस शान्तिप्रियता की प्रशंसा की है । अणु के सृजनात्मक पक्ष के समर्थन करने के साथ ही उन्होंने उसके ध्वंसात्मक प्रयोग का विरोध भी किया है । अणु के दुरुपयोग से मानवता के संहार का चित्र प्रस्तुत करके समाज को इसके विरुद्ध सचेत कराने का प्रयत्न इन कविताओं में किया गया है ।

अमरीका और सोवियत रूस विश्व के दो महत्शक्तियां है जिनके पास बडे बडे संहारक अस्त्र हैं । लेकिन दोनों युद्ध से कतराते हैं, क्योंकि -

---

1. अंचल - अनुपूर्वा, पृ.8
2. हंसराज भाटिया - समाज मनोविज्ञान, पृ.429

सबके पास डंक है
सबको / यह ज्ञात है
डसने के बाद
मधुमक्खी मर जाती है[1]।

सांस्कृतिक सुरक्षा केलिये भी अणु के ध्वंसात्मक पक्ष का विरोध करना आवश्यक है ।

यद्यपि हम युद्ध विरोधी, शांति, स्नेह और अहिंसा के पुजारी हैं, फिर भी आपद्धर्म के रूप में युद्ध को स्वीकार करने के पक्ष में हैं । दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण देती है -

हम हैं शिवा-प्रताप रोटियाँ भले घास की खायेंगे
मगर किसी जुल्मी के आगे, मस्तक नहीं झुकायेंगे[2]।"

जीवन की यांत्रिकता का विरोध

यह भी स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रवृत्ति है । आधुनिक युग में विज्ञान का प्रभाव बढने के कारण एक प्रकार की यांत्रिक सभ्यता का जन्म हुआ । आधुनिक होने की दौड में हम इस यांत्रिक सभ्यता को बढाते हुए चल रहे हैं । नगरों में यह सभ्यता अधिक देखी जा सकती है ।

---

1. कैलास वाजपेयी - देहान्त से हटकर, पृ.15
2. दिनकर - नीम के पत्ते, पृ.39

वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमारी सामाजिक व्यवस्था में गहरा प्रभाव छोडा है । मानव मशीनों से दबा गया है । उदात्त मानवीय मूल्यों का ह्रास हो गया है । यांत्रिक सभ्यता को ही सब कुछ मानी गयी है । ऐसा लगता है कि मनुष्य मशीनों का दास बन गया है । वैज्ञानिक आविष्कारों ने एक ओर मनुष्य को अनेक प्रकार की सुख सुविधायें प्रदान की है, दूसरी ओर उन्हें अकर्मण्य भी बना दिया है ।

इसलिये आलोच्य युग के कवियों ने इस यांत्रिक सभ्यता का विरोध किया है । इस अवसर पर माथुर जी की एक कविता देखिये -

आविष्कारों के सुख साधन
सब अस्त्र बन गये शोषण के
बस इसीलिये होगा विनाश, मानव का मानव पर
दुख-दोहन अनाचार इसीलिये कि रुकता नहीं
कभी गति का पहिया [1] ।"

दिनकर ने समाज को यांत्रिक सभ्यता के बदले मानवता का सन्देश दिया है -

"भोगेंगे सुख, पर, भोगासुर के न ग्रास हम होंगे
यंत्र चलायेंगे, पर, यंत्रों का न दास हम होंगे ।
xx xx xx
जब तक नित्य नवीन सुखों की प्यासी बनी रहेगी,
मानवता तब तक मशीन की दासी बनी रहेगी [2] ।"

1· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·18

2· दिनकर - कोयला और कवित्व, पृ·45

वर्तमान शिक्षा प्रणाली

मनुष्य को वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर करानेवाला साधन है, शिक्षा । समाजशास्त्रियों ने शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार दी है - सीमित अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य है व्यक्ति को, साम्प्रदायिक जीवन में दीक्षित करने की प्रक्रिया जिससे कि वह अपने धर्म के अनुसार समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर सके । व्यापक अर्थ में शिक्षा का अर्थ है मानव की आध्यात्मिक प्रकृति का विकास जिसका साम्प्रदायिक जीवन केवल एक साधन मात्र है । पहली बात धर्म के अन्तर्गत आती है तो दूसरी बात संस्कृति के अंतर[1] ।

प्राचीन भारत में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का भार गुरूजनों पर रखता था । राज्य का शिक्षा पर कोई नियंत्रण नहीं था । वर्ण व्यवस्था ने ब्राह्मणों को शिक्षा देने का अधिकार दिया था । अंग्रेज़ों के शासन काल में शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तनआया । ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सबसे पहले शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया । तब से लेकर अब तक कुछ परिवर्तनों के साथ शिक्षा पर प्रान्तीय सरकारों का नियंत्रण रहता है । अंग्रेज़ों ने भारत में, अपने शासन में सहयोग मिलने के उद्देश्य से भारतीयों को अंग्रेज़ी शिक्षा दी । 19 वीं और 20 वीं शती में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं और देशमुख, चिपलूणकर, अगरकर, करमचन्द, कारवे, तिलक, गोखले, मालव्य, गाँधीजी जैसे मनीषियों एवं समाज सुधारकों ने सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था की । विश्व भारती, काशी विद्यापीठ, जामिया मिलिया, गुजरात विद्यापीठ आदि इस समय शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे ।

---

1. जगदीश सहाय श्रीवास्तव - समाज दर्शन की ~~भूमिका~~ रूपरेखा, पृ.234

स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधारवादी परिवर्तन आये । भारत सरकार ने सन् 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग" की स्थापना, सन् 1952 में "मुदलियार कमीशन" की नियुक्ति सन् 1957 में "आल इंडिया काउंसिल फार एलिमेन्टरी एजुकेशन" की स्थापना आदि द्वारा शिक्षा को सुव्यवस्थित और अधिक समाजोपयोगी बनाने का प्रयास किया ।

लेकिन पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगकर आज शिक्षा ने अपनी पवित्रता को नष्ट किया है । देश में बढती हुई बेरोजगारी से छात्र वर्ग कुंठित है । अध्यापक वर्ग भी अपनी सीमित आय के कारण वर्तमान समाज में जीना कठिनमहसूस करता है ।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों,ने आँखें खोला तो देखा कि शिक्षा के क्षेत्र में भी चारों ओर अराजकता का राज है । शिक्षा में राजनीति का हस्तक्षेप होने के कारण शिक्षा संस्थायें राजनीति का अखाडा बन गया है । शिक्षा के क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार बढा । नेताओं की प्रेरणा पाकर विद्यार्थी राजनीति में भाग ले रहे हैं ।

इन सभी मामलों पर आलोच्य युग के कवियों ने विचार किया है । जैसे -

और छात्र बडे पुरज़ोर हैं,
कालिजों में सीखने को आये तोड-फोड हैं ।
अभी पढने का क्या सवाल है ?
अभी तो हमारा धर्म एक हडताल है । [1]

---

1. दिनकर - परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.63

हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था महत्वपूर्ण कही जा सकती है । नालन्दा, तक्षशिला आदि प्राचीन विद्यापीठों का उल्लेख करते हुए हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर सुधार लाने की आवश्यकता पर कवियों ने ज़ोर दिया है ।

राष्ट्रभाषा प्रेम

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने प्रेम प्रकट किया है । "एक गलत भाषा में गलत बयान देने से मर जाना बेहतर है-[1] यही कवि का विश्वास है । गलत भाषा से तात्पर्य अंग्रेज़ी भाषा से है ।

धार्मिक चेतना

आलोच्य काल की कविता में धर्म के सम्बन्ध में भी काफी विचार किया गया है । मानव जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान होता है । संस्कृति के एक महत्वपूर्ण अंग भी है यह । इसका सामाजिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है । "धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलू से है जो व्यक्तित्व केलिए एक महान तत्व है, अत: व्यक्ति या सम्पूर्ण समाज केलिए धर्म का एक प्रभावशाली स्थान है[2] ।"

प्रकृति की गोद में जीवन बितानेवाले वैदिक आर्यों को अग्नि, वायु, आदित्य आदि के दैवी जगत् से साक्षात् सम्पर्क था[3] ।" उनके जीवन में इस सम्बन्ध की झलक देखी जा सकती है । वहाँ से लेकर आज तक भारत में

1. सर्वेश्वर - गर्म हवायें, पृ.46
2. डॉ. कृष्णकुमार मिश्र - सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, पृ.107
3. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture, p.55

जैन, बौद्ध, सिख आदि कई धर्मों ने जन्म लिया । "धर्म ही सामाजिक कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता था[1] । प्राचीन भारत की इस धार्मिक चेतना का उल्लेख स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने कहीं कहीं किया है -

> भारत ऐसा देश है जहाँ पर ईश्वर लेता था अवतार ।
> राम, कृष्ण, विक्रम के प्रतिनिधि, और बुद्ध बन जन्मा प्यार ।
> यहाँ नारियाँ दुर्गा बनकर दैत्यों का करती संहार ।
> दया, धर्म का, स्नेह क्षमा का तथा शूरता का भंडार[2] ।

सभ्यता के विकास के साथ साथ सामाजिक मान्यतायें भी बदल रही है । प्राचीन भारत में धर्म ग्रन्थों का पाठ करनेवाला धर्मात्मा और सज्जन समझा जाता था । लेकिन, वर्तमान युग में ईमानदारी और सच्चाई से अपना काम करनेवाला, सज्जन और धर्मात्मा माना जाता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान ने भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया । आज धर्म पर भी विज्ञान का प्रभाव पडा है । समाजवाद, लोकतंत्रवाद आदि विचारधाराओं के कारण मानव समाज उन्नति कर रहा है । हमारी समस्त समस्याओं का समाधान हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों से नहीं हो सकता । आधुनिकीकरण के प्रभाव में धर्म का महत्व कम होता जा रहा है । "हमारी भाषा में नागरिक आया तो ईश्वर बाहर चला गया है[3] । प्राचीन युग में जो स्थान धर्म और दर्शन का था वही आज के

---

1. राधाकमल मुखर्जी - भारत की संस्कृति और कला, पृ.17
2. हरिकृष्ण प्रेमी - संघर्ष के स्वर, पृ.17
3. अलोक वाजपेयी - फिलहाल, पृ.176

युग में विज्ञान और राजनीति को प्राप्त हो गया है । प्राचीन युग में जो बात देवताओं, ऋषियों एवं धर्माचार्यों के मुँह से कहलवाने पर मान्य समझी जाती थी, वही अब वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों के द्वारा कही जाने पर स्वीकार्य होती है[1] ।"

आलोच्य युग के कवियों ने धार्मिक अन्धविश्वासों एवं रूढियों का विरोध किया । मूर्तिपूजा के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठाई । वर्तमान समय के धार्मिक अधःपतन देखकर भारत भूषण ने ईश्वर पर भी व्यंग्य किया है । उनकी "टूटा सपना" कविता इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है ।

रात मैं ने एक स्वप्न देखा है,
मैं ने देखा कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई,
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं ।
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल दिया है,
नारद गिटार सीख रहे हैं,
गणेश टाफी खा रहे हैं
और बृहस्पति अंग्रेज़ी से अनुवाद कर रहे हैं[2] ।"

धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों, आडम्बरों और अनीतियों का भी इन कवियों ने विरोध किया है । इन कवियों का ईश्वर "धार्मिक पाखण्डों से ऊपर एक ऐसी रहस्यमयी सत्ता है जो सर्वव्यापी और सर्वकल्याणकारी है जिसे पुजारियों के मन्दिरों का बन्धन स्वीकार नहीं है[3] ।" स्वर्ग और नरक की कल्पना पर उन्होंने विश्वास नहीं किया है ।

---

1. गणपतिचन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ.3
2. भारतभूषण - ओ अप्रस्तुत मन, पृ.102
3. डॉ. सुखबीर सिंह -हिन्दी कविता की समकालीन चेतना, पृ.131

मानवतावाद

स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है मानवतावाद । यह हमारी संस्कृति की एक विशेषता है । पहले, यह छायावादी कविता की एक भेदक प्रवृत्ति रही थी । स्वतंत्रता परवर्ती युग में कवियों की दृष्टि सार्वभौमिक बन गयी है । अपने देश की उन्नति के अलावा, सारे विश्व में मनुष्य मात्र की उन्नति उनका लक्ष्य बन गया ।

आज राष्ट्रों के बीच स्वस्थ सम्बन्ध होता है । लेकिन विज्ञान के चमत्कार और युद्ध की विभीषिकाओं के कारण लोग मनुष्यता भूल रहे हैं । स्वातंत्र्योत्तर कविता में मानवतावादी भावधारा का प्राधान्य है । मानवता की रक्षा उसका अभीष्ट है -

आग झुलसाये मनुज को जो
स्वाहा हो सकूँ उसमें प्रथम । यह पुण्य दो
जो वरेण्य पिता
लिख सकूँ प्रत्येक की । हाहाकार कोलाहल कथा
यह एकांत दो[1] ।

अनैतिकता और भ्रष्टाचार से भरे इस दुनिया में लोक कल्याण और मानवता की रक्षा केलिए विश्व मानव की कल्पना करके इन कवियों ने अपनी मानवतावादी चेतना का परिचय दिया है ।

---

1. नरेश मेहता - मेरा समर्पित एकांत, पृ.6

व्यंग्य

व्यंग्य, जिसे अंग्रेज़ी में "सटेयर" कहता है, संस्कृत साहित्य की परम्परा में हास्य व्यंग्य के नाम से प्रसिद्ध है । हास्य व्यक्ति के मन को उल्लसित और आह्लादित करता है, व्यंग्य उसके हृदय पर चोट करता है । "स्वस्थ और रचनात्मक व्यंग्य साहित्य की निधि है[1] ।" "व्यंग्य, रचनाकार के हाथ में एक सशक्त शस्त्र मानता है जिससे वह युगीन अंतर्विरोधों और विसंगतियों का पर्दाफाश कर सकता है[2] ।" समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अराजकता आदि पर जनता का ध्यान आकर्षित करना व्यंग्य का उद्देश्य है ।

संस्कृत साहित्य में व्यंग्य की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है । हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक व्यंग्य का प्रयोग किया जा रहा है । कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी जैसे कवियों ने अपने समय के समाज की आलोचना करने केलिये व्यंग्य को सशक्त माध्यम स्वीकार किया । कबीर ने निम्नलिखित दोहे में तीर्थयात्रा पर इस प्रकार व्यंग्य किया है -

कबीर तीरथ करि करि जग मूवा, डूंघे पाणीं नहाई ।
रामहि राम जपंतडां, काल घसीट्यां जाई[3] ।।

बिहारी का व्यंग्य -

नहीं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।
अली कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल[4] ।।

---

1. छविनाथ मिश्र - आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप, पृ.13
2. कृष्णबिहारी सहगल - प्रकर 1972, पृ.4-9
3. कबीर ग्रन्थावली, पृ.63
4. बिहारी सतसई, पृ.21

प्रसिद्ध है ।

वर्तमान समय में व्यंग्य का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जा रहा है । आधुनिक हिन्दी कविता में भारतेन्दु युग से लेकर कवियों ने व्यंग्य का प्रयोग किया है । भारतेन्दु ने "आँखें फूटें भरा न पेट । क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट" कहकर बेकारी पर, और "भीतर तत्व न झूठी तेजी ! क्यों सखि सज्जन नहिं अँग्रेज़ी ।।" कहकर हमारे अँग्रेज़ी प्रेम पर, और "अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी / पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी" कहकर अँग्रेज़ों के आर्थिक शोषण पर व्यंग्य किया । मैथिली शरण गुप्त ने "भारत भारती" में अनेक विषयों पर व्यंग्य का प्रयोग किया है । उनकी "कृषि और कृषक", नाथूराम शर्मा शंकर की "हमारा अधःपतन" आदि कवितायें व्यंग्य का प्रयोग करके किसान की दुर्दशा और हमारी सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालनेवाली हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में व्यंग्य का प्रयोग बढ गया है । इस अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विसंगतियों का जो चित्रण किया गया है उन सब केलिये कवियों ने व्यंग्य का प्रयोग किया है । नागार्जुन ने "बूढवर" कविता में वृद्ध विवाह पर, "लाधिका" में बहुपत्नी प्रथा पर और "प्रेत का बयान" में शोषकों पर व्यंग्य किया है । केदारनाथ अग्रवाल ने "पैतृक सम्पत्ति" में किसानों की दुर्दशा पर व्यंग्य किया है । माचवे ने राजनेताओं पर व्यंग्य करने केलिए "देशोद्धारकों से" कविता लिखी । इस प्रकार अन्य कवियों ने भी व्यंग्य का प्रयोग किया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में व्यंग्य को एक अलग प्रवृत्ति के रूप में नहीं रखा, क्योंकि यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण कविता में बिखरी हुई मिलती है ।

आस्था का स्वर

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने समाज के दुख, विसंगतियों और विडम्बनाओं को देखकर घबराकर पलायन नहीं किया है । स्वतंत्रता के पहले ही रामराज्य का सपना देख आनेवाले कवि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन सपनों को साकार करने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध दिखाई पडता है । इसका स्पष्ट प्रमाण है उनकी कविताओं में गूंजनेवाला आस्था का स्वर ।

स्वातंत्र्योत्तर कवि, चाहे मार्क्स के सिद्धांतों में विश्वास रखनेवाले हो, या गाँधीजी के सच्चे अनुयायी हो, किसी वाद या सिद्धांत के प्रचार करना उनका लक्ष्य नहीं रहा । मतों और सिद्धांतों से, समाजोपयोगी, भारतीय संस्कृति के पोषक और मानवता को पोषित करनेवाले अंशों को ग्रहण करके एक समन्वयकारी प्रवृत्ति इस युग की कविताओं में देखी जा सकती है । वर्गहीन, शोषण मुक्त, जाति-वर्ण-धर्म भेदों से रहित, समाजवादी समाज की स्थापना इन कवियों का लक्ष्य था । उन्हें आस्था थी कि यह सपना किसी न किसी दिन साकार होगा । दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियों में इस आस्था का स्वर मुखरित होता हैं -

> रजनी हो दीर्घायु भले, पर, अमर नहीं है ।[1]
> अरुण-बिन्दु-धारिणी उषा आती ही होगी ।

नरेश मेहत्ता ने मनुष्य की कर्म शक्ति को पहचाना और उस पर आस्था प्रकट की । सर्वेश्वर ने कहा कि दुर्बलता और व्यथा से अंतदृष्टि मिलेगी ।

---

1. दिनकर - कोयला और कवित्व , पृ.68

लघु मानव की प्रतिष्ठा

यह इस युग की कविता की एक प्रमुख प्र वृत्ति है । स्वातंत्र्योत्तर कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में की गयी है । इस युग के कवियों ने अपने लघु व्यक्तित्व को स्वीकार किया है । उनकी वैयक्तिकता में सामाजिकता भी सन्निहित है ।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने अपनी कविताओं में आम मानव के स्थान पर लघु मानव को प्रतिष्ठित किया है । उनकी पीडा, दर्द, और समस्याओं को चित्रित करना इन कवियों ने अपना कर्तव्य समझा है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में लघुमानव की प्रतिष्ठा की । उन्होंने लिखा - "तुम मनुष्य हो, छोटे हो, ठिगने हो, लघुता तुम्हारा जीवन है, लघुता तुम्हारे आस्फालन की नियामिका है अतएव लघुता सम्पूर्ण आत्मविश्वास के बावजूद तुम्हारी चरम नियति भी सिद्ध होगी ।"[1]

धर्मवीर भारती ने "टूटा पहिया" प्रतीक द्वारा लघुमानव की गरिमा को प्रतिष्ठित किया है । आधुनिक मनुष्य मस्तिष्क और चेतना से बौना है । "बौनों की दुनिया" में माथुर जी ने इस बौनेपन का चित्र उभारा है । परिस्थितियों ने उसे बौना बना दिया है । बेसहारा भटकने वाले आधुनिक मनुष्यलघु मानव-की विवशता को माथुरजी ने चित्रित किया है ।

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा - नयी कविता के प्र तिमान, पृ.165

स्वातंत्र्योत्तर कवि ने अपनी लघुता में भी सम्पूर्णता माना है -

मैं तो सम्पूर्ण हूँ
अखण्ड हूँ
और मेरी विफलता ?
नहीं, वह नहीं है[1]।"

भारत भूषण ने अपने को दर्पण का खण्ड माना है, क्योंकि अपने लघु अस्तित्व में भी दर्पण का खण्ड पूर्ण और सार्थक है । अज्ञेय को अपनी लघुता पर गर्व है ।

क्षण का महत्व

स्वातंत्र्योत्तर कविता में कहीं कहीं क्षण को महत्व देते दिखाई पड़ता है । क्षणवाद या क्षणबोध से तात्पर्य प्रत्येक क्षण में जीना और उसे स्वीकार करना है । इस युग के कवियों ने प्रत्येक क्षण की अनुभूति को सत्य माना है । "क्षण को सत्य मान लेने का अर्थ होता है, जीवन की एक एक अनुभूति को, एक एक व्यथा को, एक एक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप से स्वीकार करना[2]।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में प्रत्येक क्षण की अनुभूति मिलती है । "दो पल भी यदि हो जाये तो जीवन को सुन्दर होने दो" कहकर कुँवरनारायण ने

---

1. भारतभूषण - अनुपस्थित लोग, पृ.14
2. रामदरश मिश्र - हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ.81

और "क्षण के अखण्ड पारावार का आज हम आचमन करते हैं" कहकर अज्ञेय ने क्षण के महत्व को उद्घाटित किया है । माथुर जी के विचार में जीवन के हर क्षण का उपभोग करना चाहिए क्योंकि ये क्षण अमोल है -

"क्षण-जीवन का उपभोग परम"[1]
"बाँधो ये क्षण अमोल"[2] ।

जिस क्षण का हम उपभोग करते हैं, वह क्षण पुन: नहीं लौट आयेगा । इसलिये वर्तमान क्षण का सही उपभोग करना चाहिए । स्थायित्व में इन कवियों को विश्वास नहीं था । इसलिये उन्होंने वर्तमान क्षण की अनुभूतियों को ही सत्य माना है । और इसलिये प्रत्येक क्षण का पूर्णतया उपभोग करना चाहिए ।

अभी मैं वर्तमान हूँ - क्षण हूँ[3] ।
xx xx xx
झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाए सन्नाटे का
एक क्षण हमारा[4] ।

कवि ने प्रत्येक क्षण की स्वतंत्र सत्ता मानी है । उनको न अतीत में विश्वास है न भविष्य में । उन्होंने अतीत और भविष्य का समन्वय वर्तमान क्षण में देखा है -

---

1. माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.41
2. वही, - जो बंध नहीं सका, पृ.62
3. भारतभूषण - अनुपस्थित लोग, पृ.80
4. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार, पृ.21

हम शायद वर्तमान का असली रूप नहीं
हम कुछ अतीत हैं -
जिसका भावी स्वप्न अभी घटनेवाला !
xx xx xx
हम कुछ भविष्य हैं
अभी नहीं जो घटित हुआ-
जिसको अतीत ने देखा था ।[1]"

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ

फ्रायड मनोविश्लेषण का प्रवर्तक है । उनकी मान्यता है कि मनुष्य के समस्त कार्य कलापों का केन्द्र बिन्दु "काम" वासना है । फ्रायड ने सुख प्रदान करनेवाली समस्त कार्यों को "काम" कहा । भय और काम सम्बन्धी भावनायें मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ है । नैतिक और सामाजिक कारणों से यौन भावनाओं का दमन कर लेता है और ये भावनायें अचेतन में जाकर रह जाती है । और वहाँ से कला, साहित्य आदि परिष्कृत रूप में अभिव्यक्ति पाती है । यह फ्रायड का सिद्धांत है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में जिस वेदना की अनुभूति दिखाई पड़ती है वह अपूर्ण यौनेच्छाओं का परिणाम है -

---

1. कुँवरनारायण - तीसरा सप्तक, पृ.169

लौट आ, ओ फूल की पंखुडी !!
फिर / फूल में लग जा
चूमता है धूल का फूल
कोई हाय ।[1]

अज्ञेय ने प्यार की पीडा को अभिव्यक्ति दी है, वह अधूरी काम वृत्तियों का परिणाम है । फ्रायड ने जीवन की मूल शक्ति "काम" माना है । कामेषणा ही जिजीविषा है । अज्ञेय की कविता में इस जिजीविषा देखी जा सकती है :-

दो ही तो सच्चाईयां हैं
एक ठोस, पार्थिव, शरीरी-मांसल रूप की
एक द्रव, वायवी, आत्मिक-वासना की धधक की
बाकी आगे मृषा की, आत्मसम्मान की असंख्य खाइयां है ।[2]

कुंवरनारायण ने "चक्रव्यूह" में सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति की है । संशय, अनिश्चय, निराशा कुंठा और संत्रास भी विवेच्ययुगीन कविताओं में अभिव्यक्त किया गया है । अकेलेपन का बोध भी युवा मन को घेरा रहा है । शहरी सभ्यता ने वैयक्तिकता को जन्म दिया । उसके कारण एक प्रकार का ऊब मन में हुआ । मन का उत्साह नष्ट हो गया है । प्रणय में भी एकरसता आ गयी है -

---

1. शमशेर - कुछ और कवितायें, पृ.40
2. अज्ञेय - क्योंकि मैं उसे जानता हूं, पृ.23

आखिर आयगा वह दिन
जिसदिन होठों पर यद्यपि होंगे होंठ
पर खाई होगी हम दोनों के बीच
xx xx xx
जिस दिन तन होगा तन में लीन
पर मुर्दा होगी मन की सारी प्यास[1]।

निष्कर्ष

तीसरा अध्याय स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि और प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय के आरंभ में किया गया है। आलोच्य युग की प्रवृत्तियों में वे सभी प्रमुख और गौण प्रवृत्तियाँ आयी है जिनको विवेच्य युगीन कविता में अभिव्यक्ति मिली है। समाज की मूल इकाई व्यक्ति से लेकर पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर आलोच्य युगीन कविता में विचार किया गया है। नागरिक सभ्यता, राजनीति, पूंजीवाद, वर्ग-वैषम्य, रूढि, नारी जागरण आदि विषयों पर विचार करते वक्त कवियों का स्वर पूर्व वर्ती युगों की अपेक्षा तीव्र देखा जा सकता है। भविष्य के प्रति आस्था एक उल्लेखनीय विशेषता है।

---

1. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष, पृ.30

स्वातंत्र्योत्तर कविता में कुछ पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्तियों की झलक भी देखी जा सकती है । पंत, निराला और नरेन्द्र शर्मा की कुछ कविताओं में मध्यकालीन भक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है । माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर आदि की कुछ कविताओं में छायावाद का स्वर भी है । नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की कुछ कविताओं में प्रगतिवाद की ध्वनि भी होती है । लेकिन उनकी ज्यादातर कवितायें युग जीवन का यथार्थ चित्रण करनेवाली है । पंत, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल प्रभृति छायावादी कवियों ने स्वतंत्रता के बाद युग चेतना को ग्रहण करके काव्य रचना की । मानव जीवन के किसी भी पहलू को स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने अनदेखा नहीं छोड़ा है ।

ööööööööööööööö

अध्याय - चार

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना

सुमित्रानन्दन पंत

जन मन को जीवन का अमर संगीत सुनानेवाले कवि पंत जी ने अपने काव्य जीवन के आरंभ से ही समष्टि पर दृष्टि रखी थी । उनकी स्वतंत्रता परवर्ती कविताओं में जीवन की वास्तविकताओं को देखने का प्रयास दिखाई पड़ता है । निम्नलिखित पंक्तियाँ इस तथ्य से खूब साक्षात्कार कराती है -

मैं गाता हूँ
मैं प्राणों का
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ ।
मैं जन मन को
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ ।

जन धरणी पर
जीवन का स्वर्ण बसाता हूँ ।[1]"

उत्तरा की भूमिका में पंतजी ने यह स्वीकार किया है - "मैं ने परिस्थितियों की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नहीं किया है ।" उन्होंने कलाकार को "सेना नायक या सैन्य वाहक" नहीं "युग-सन्देश-वाहक" माना है । जीवन के संघर्षों की प्रतिध्वनियाँ उनकी कविताओं में सर्वत्र सुनायी पड़ती है । उनकी कवितायें "युग जीवन के स्वप्नों की शोभा से वेष्टित है[2] ।" जीवन संघर्ष से वे कभी विरत नहीं रहे । उनके ही शब्दों में -

मैं विराट जीवन का प्रतिनिधि हूँ । मैं वन के
भर्मर से, युग के जनगम से चिर परिचित हूँ[3] ।

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध

पंतजी व्यक्ति और समाज में किसी एक को प्रधानता न देकर दोनों में सामंजस्य स्थापित करने के पक्ष में थे । ज़िन्दगी के सभी क्षेत्रों में यह सामंजस्य भावना उनका जीवन दर्शन बन गयी है । उन्होंने व्यक्ति और समाज को दो अन्योन्याश्रित सिद्धांतों की तरह स्वीकार किया है । "आज व्यक्ति के उतरो भीतर / निखिल विश्व में बिचरो बाहर[4]" -

1· उत्तरा, पृ·75
2· रजतशिखर, पृ·51
3· वही, पृ· 56
4· उत्तरा, पृ·115

यही उनकेलिये काम्य है । व्यक्ति का जीवन तभी सार्थक होता है जब वह विश्व-जीवन के निर्माण में सहयोग दे ।[1]

व्यक्ति और समाज में द्वैत नहीं है । कवि की दृष्टि में व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका विकास समाज की प्रगति का विरोधी नहीं है । पंत जी ने व्यक्ति को बूंद और समाज को समुद्र कहकर इन दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्थापित किया है ।

सामाजिक चेतना

पंतजी ने अपनी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में युग चेतना को वाणी देने का प्रयास किया है । अपने को किसी एक विचारधारा या "वाद" की संकीर्ण परिधि में स्थापित कर लेने का आग्रह उनके मन में नहीं था । उन्होंने मार्क्सवाद की उपयोगिता को एक व्यापक समतल सिद्धांत की तरह स्वीकार किया है । किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त क्रांति और वर्ग युद्ध के पक्ष को उन्होंने मार्क्स के युग की सीमायें मानी हैं[1] । विभिन्न सिद्धांतों का आदर करते हुए उनकी सच्चाई स्वीकार करना श्रेयस्कर है । "कवि जीवन-संदर्भों में ही अपनी एक विशिष्ट दृष्टि निर्मित कर रहा था । इस प्रक्रिया में निश्चय ही मार्क्सवादी विचारधारा की एक खास स्थिति है, किंतु साथ ही साथ वह मार्क्सवाद को अपनी दृष्टि से प्रभावित भी करना चाहता था[2] ।" इसलिये उन्होंने वादों की संकीर्ण दायरे से मुक्त होकर, विश्व वेदना को वाणी देने का प्रयास किया है । समाज से अलग होने का बोध पंत की कविताओं में नहीं मिलेगा ।

---

1. पंत - उत्तरा - भूमिका
2. डॉ॰रामजी पाण्डेय - सुमित्रानन्दन पन्त:व्यक्तित्व और कृतित्व,पृ॰70-71

आज अभाव की शक्तियाँ जग में पग पग में काँटे बोती हैं, चतुर्दिक घृणा और द्वेष है, स्पर्धा से जग जीवन परितापित है, किसी के हृदय में प्रीति नहीं, उल्लास और आशा नहीं; प्रतिहिंसा, तृष्णा, संशय और भय, नयनों की भाषा है । पंत जी ने इन परिस्थितियों से प्रभावित होकर इस प्रकार लिखा -

जीर्ण नीति अब रक्त चूसती जन का,
सदाचार शोषक मन के निर्धन का,
स्वार्थी पशु पहने / मुख नव मानवपन का[1] ।

"युगान्तर", "उत्तरा", "रजतशिखर", "कला और बूढा चाँद" "चिदम्बरा" आदि उनकी स्वातंत्र्योत्तर काव्य रचनायें हैं जिनका अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय में किया गया है । उन कविताओं में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से मिलती हैं ।

साम्प्रदायिकता का विरोध

पंत जी के विचार में जाति पाँति की भावना मन की रज का जडत्व है जो मृत्यु से ही जाता है । जिस प्रकार शलभ दीप की ज्वाला में पडकर अपना प्राण नष्ट करता है उसी प्रकार जाति-पाँति रूपी ज्वालामें पडकर मनुष्य अपने प्राणों को बलि देता है । यदि हम जाति, वर्ग, नय, धर्म केलिये रक्त बहाना छोड नहीं सकते -

---

1. उत्तरा, पृ.35-37

तो अच्छा हो अगर छोड दें
हम हिन्दु मुस्लिम औ ईसाई कहलाना ।
मानव होकर रहें धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व में बाँधकर[1] ।"

जाति को पंत जी ने व्यर्थ माना है । उनकी दृष्टि में सब मनुज समान हैं । ईशा के अनुचर है । जितने भी दंगे हुए, मनुष्य के मन से जाति पाँति की भावना नहीं कटती है । इसलिये कवि ने कहा कि जाति भेद के अन्धकार को मिटाने केलिये जनमानस में "मानवता" की ज्योति जलाना आवश्यक है । जाति द्वेष के काले बादलों के बीच मानवता की सुवर्ण रेखा चमकेगी, यही कवि का विश्वास था -

काले बादल जाति-द्वेष के
काले बादल विश्व-क्लेश के
काले बादल उठते पथ पर
नव स्वतंत्रता के प्रवेश के !
आज दिशा में घोर अंधेरी
नभ में गरज रही रणभेरी ।

लेकिन -

देश जातियों का कब होगा
नव मानवता में रे एका;
काले बादल में कल की
सोने की रेखा[2] ।

1· स्वर्णधूलि, पृ·115

2· वही, पृ·109,110

भविष्य में भारत में जाति नहीं रहेंगी, हिन्दु मुस्लिम नहीं रहेंगे, वे भारत के नर रहेंगे, वे मानव होंगे, वे उच्चादर्शों से प्रेरित होकर, जाति द्वेष से मुक्त, मनुजता के प्रति जीवित और विकसित होंगे । इसकेलिये कवि ने गांधीजी को पुनः अवतरण करने केलिये कहा । उन्होंने हिन्दु और मुसलमान को बापू के दो चरण कहा है, जो एक नूतन कल्पना है[1] ।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है कि पंत ने जाति-भेद के बारे में बहुत सोच विचार किया है । उन्होंने जाति भेद और साम्प्रदायिक भेद-भावना को मिटाने की तीव्र अभिलाषा प्रकट की और इसके स्थान पर मानवता का सन्देश भी दिया ।

रूढि-विरोध

पंतजी ने सदैव ही "उन आदर्शों, नीतियों तथा दृष्टिकोणों का विरोध किया है, जो पिछले युगों की संकीर्ण परिस्थितियों के प्रतीकहैं, जिनमें मनुष्य विभिन्न जातियों, वर्गों तथा सम्प्रदायों में विकीर्ण हो गया है[2] । आधुनिक मनुष्य इस वैज्ञानिक युग में भी रूढियों से ग्रस्त है ।

ओ विज्ञान,
देह भले ही वायुयान में उडे,
मन अभी
ठेले, बैलगाडी पर ही
धक्के खाता है !
री, रूढिप्रिय जडते
तेरी पशुओं की सी

---

1. युगांतर, पृ.75
2. उत्तरा - भूमिका, पृ.7

सशंक, त्रस्त चितवन देख
दया आती है[1]।

विज्ञान ने मनुष्य को उन्नत बनाया लेकिन दुख की बात है कि वह अब भी रूढियों से ग्रस्त है । इसलिये जीर्ण से संघर्षण करने केलिये पन्तजी ने आह्वान किया । अन्ध रूढियों और मृत आदर्शों को काटकर "युग मानव के संघर्षों को नव चेतना में डुबाना चाहिए । इसकेलिये पुरातन के जड पाश को छिन्न करना अनिवार्य है । रूढिवादिता एवं बाह्य आचारों के बदले आन्तरिक पवित्रता कवि की राय में आज की आवश्यकता है ।

मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से दूषित, प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूंगा मैं न कलंकित[2]।

मन की पवित्रता केलिये रूढि रीतियों के धर्मान्ध पिशाच प्रेत को भगाना चाहिए, युग युग के मृत संस्कारों को छोडना चाहिए ।

रौंदेंगे पाँवों के नीचे, युग युग के मृत
संस्कारों को खोद, मिटा देंगे जन मन से[3]।

विगत युगों की घृणित क्षुद्रता को मिटाकर जीवन के प्रति नई दृष्टि रखना आवश्यक है ।

---

1. कला और बूढा चाँद, पृ.76
2. स्वर्णधूलि, पृ.118
3. रजतशिखर, पृ.65

आलोच्य युग के कवियों में रूढियों के प्रति इतनी तीव्र प्रतिक्रिया पन्तजी ने ही व्यक्त की है ।

शोषित जन के प्रति सहानुभूति

"नग्न, क्षुधातुर, जीवन्मृत भू के असंख्य शोषित जन" के प्रति पन्त जी ने गहरी व्यथा प्रकट की है -

दीनों दुखियों के मनस्ताप से मथित
मैं प्रलय बाढ बन युग के, पुलिन डुबाती[1] ।

पंत जी हमेशा "युग युग से अभिशापित, शोषित जन गण" के साथ थे । "युग संकट में उद्‌बोधन के गान छेडकर जनता को साहस और संबल देना उनका लक्ष्य था । नग्न, क्षुधित मनुष्यता की छलना और जीवन की रक्त क्षीण, निष्ठुर विषण्णता देखकर कवि के हृदय में करुणा का सागर उमड पडा है । उनकी सहानुभूति और उनका आक्रोश निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

वर्तमान का भीषण उत्पीडन है इनको
निर्ममता से कुचल रहा । यदि एक बार तुम
आँखें खोलकर देख लोगे जो सचमुच
करुणा से विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलों के जग के वासी[2] ।

1· युगांतर, पृ·158
2· रजतशिखर, पृ·60

फूलों के जग के वासी पूँजीपति वर्ग है । उनके प्रति रोष भी इस कविता में देखा जा सकता है ।

पूँजीवाद का विरोध

पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के कारण जो वर्ग-वैषम्य की स्थिति उत्पन्न हुई उसका भीषण रूप पंत की कविता में देखा जा सकता है । "युग-विषाद", "युग-संघर्ष", "फूलों का देश जैसी कई कविताओं में उन्होंने पूँजीवाद का विरोध प्रकट किया है । इस प्रवृत्ति में पन्तजी का एक विशेष दृष्टिकोण उल्लेखनीय है । उनके मतानुसार ह्रास की शक्तियाँ धनिकों और श्रमिकों का स्वरूप धारण करके पृथ्वी का नाश कर रही हैं -

शोषक हैं इस ओर, उधर है शोषित,
बाह्य चेतना के प्रतीक जो निश्चित !
धनिकों श्रमिकों का स्वरूप धर बाहर
ह्रास शक्तियाँ नाश हित तत्पर [1] ।

इसलिये इस धनिक श्रमिक तर्कवाद को मिटाकर पृथ्वी पर मानवता को प्रतिष्ठित करना कवि का लक्ष्य था ।

---

1. चिदम्बरा, पृ.202-203

स्वतंत्रता का स्वागत

युगों का तिमिर आवरण चीरकर भुवन को परिदीप्त कर तरुण अरुण के समान उदित स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए पन्त जी ने लिखा -

धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मंगल
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल ।
xx xx xx
जय भारत गाओ, स्वतंत्र जय भारत गाओ ।[1]"

स्वतंत्रता के सुअवसर पर मनुष्य के साथ प्रकृति भी उल्लसित दिखाई पडती है । '15 अगस्त 1947' कविता में पंत जी ने स्वतंत्रता का स्वागत करने के साथ ही राष्ट्रनायकों को श्रद्धांजलि भी अर्पित की है । भारत का दासत्व, विश्व-मन की दासता थी, और भारत की स्वतंत्रता लोक जागरण की शंखध्वनि और नव संस्कृति का आलोक। विजय ध्वजा फहराकर, बंदनवार बंधाकर स्वातंत्र्य मनाना चाहिए । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारतीय जनता ने गौरव का अनुभव किया है । इस अवसर पर सारे भेद-भावों को भूलने केलिये सारे वाद विवाद को डुबाने केलिये पन्तजी ने जनता का आह्वान किया ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ नवीन उमंग और नवयुग निर्माण की चेतना का उदय भी हुआ । पन्त जी को इस पर गौरव का अनुभव करते दिखाई पड़ता है कि युगों की दासता की लौह श्रृंखला टूट गयी है ।

---

1. स्वर्णधूलि, पृ.123-124

और आज हमारा प्रिय भारत स्वाधीन हो गया है । इस स्वतंत्रता का संरक्षण करना परम आवश्यक है । इसीलिये बलि, त्याग और श्रम आवश्यक है । देश के युव जन को इस केलिये प्रेरणा देते हुए पन्त जी ने लिखा है -

मुक्ति नहीं पलती दृग जल से हो अभिसिंचित,
संयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित ।
मुक्ति मांगती कर्म वचन मन प्राण समर्पण,
वृद्ध राष्ट्र को, वीर युवकगण, दो निज यौवन[1] ।

भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता निश्चय ही संतोष जनक है । लेकिन, पन्त जी के विचार में, आंतरिक चेतना को जागृत किये बिना देश की उन्नति नहीं होगी -

शत सहस्र दीपों से भी अह,
बन न सकेगा जन पथ विस्तृत
दीप शिखा कहती सिर धुनकर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित[2] ।

क्योंकि हमारा मन अब भी मुक्त नहीं हो सका । मध्ययुग की क्षुद्र विकृतियाँ शीश उठाकर, नव्य राष्ट्र को क्षीण बना रही है । विविध मतों, दलों और व्यूहों में बँटकर देश आज निर्वीर्य, निर्बल और निस्तेज हो रहा है[3] ।

---

1. स्वर्णधूलि, पृ. 123-124
2. युगांतर, पृ. 101
3. वही, पृ. 109

राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ ही आंतरिक चेतना को भी जागृत कराने की इस प्रवृत्ति में कवि की समन्वयवादी दृष्टि देखी जा सकती है ।

गांधी की हत्या

पन्त जी ने बापू की मृत्यु के बाद उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में कई कवितायें लिखी थीं । "युगांतर" एवं "खादी के फूल" की कवितायें इस कोटि में आती हैं । चिर पुराण को अपने आत्मबल से चिर अभिनव बनाकर चले गये मनुजों का मानव गांधीजी के प्रति कवि ने देवोचित श्रद्धांजलि अर्पित की है । स्वतंत्र भारत को बापू का चिर जीवित स्मारक बनाने केलिये वे इच्छुक थे -

अमर तुम्हारी आत्मा, चलती कोटि चरण धर जन में नूतन,
कोटि नयन आभा तोरण बन, मन ही मन करते अभिनंदन !
भूल क्षणिक भस्मांत स्वप्न यह, कोटि कोटि उर करते अनुभव,
बापू नित्य रहेंगे जीवित भारत के जीवन में अभिनव ![1]

गांधीजी की मृत्यु पर भारतवर्ष की प्रकृति भी जनता के साथ दुख प्रकट करती दिखाई पड़ती है । तृण-तरु प्रार्थना में रत हैं, सागर दुखी है, आकाश मौन है - चिंतित है; समीरण भी श्वास रोककर ध्यानमग्न हुआ है ।

---

1. चिदम्बरा, पृ.187

कवि की राय में क्षणभंगुर तन के ओझल हो जाने से दुखी मत होना चाहिए । उनकी आत्मा अमर बन गयी है । विषाद की अचेतन शिला की तरह आँसू बहाती धरती से पन्त जी ने कहा -

तू अमरों की जनी, मर्त्य भू में भी आकर
रही स्वर्ग से परिणीता, तप पूत निरंतर ।
xx xx xx
कीर्ति स्तंभ से उठ तेरे कर अंबर पट पर
अंकित करते रहे अमिट ज्योतिर्मय अमर[1] ।"

गाँधीजी की अक्षय स्मृति को नींव बनाकर उस पर संस्कृति का लोकोत्तर भवन निर्मित करने केलिये कवि ने प्रेरणा भी दी है ।

देश-प्रेम

पन्तजी सच्चे देश भक्त थे । हमारे तिरंगे झण्डे का वन्दन राष्ट्रीयता और देश प्रेम का प्रमाण है । निम्नलिखित पंक्तियों में पंत जी ने झण्डे का वन्दन किया है ।

शक्तिस्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वंदित भारतमाता
धर्मचक्र रक्षित तिरंगे ध्वज अपराजित फहराता ।
xx xx xx
आज तिरंगे से रे अंबर
रंग तरंगित

---

1. युगान्तर, पृ.70

xx xx xx

करो तिरंगे का अभिवादन

xx xx xx

इन्द्रधनुप्रभ तिरंग फहराओ[1] ।

पन्त जी ने कहा कि "आत्मविजय ही विश्व विजय है । "तिरंगा ध्वजा" हमारी आत्मविजय का निशान है । इसकी वन्दना करना आवश्यक है । यह ध्वजा हमें आत्मविश्वास देगी ।

तुम्हें देख जन मन निर्भय हो
धरती पर नव स्वर्णोदय हो
भागे अविद्या दैन्य निराशा
जागे उच्च जीवन अभिलाषा
एक ध्येय हो भूषा भाषा
शांति शक्ति के धर्म चक्र तुम
जग में नित जन मंगल लाओ[2] ।

हिमालय और गंगा भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ हैं । हिमालय का गौरव अनन्त है । वह भारत का शाश्वत प्रहरी है । उनका गौरव गान गाते हुए पन्त जी ने अपने देश प्रेम को अनन्य सिद्ध किया है -

गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,

---

1. युगान्तर, पृ. 87-93
2. स्वर्णधूलि, पृ. 121

कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता[1]।"

भारतीय संस्कृति केअनन्य उपासक पंतजी ने हिमालय और गंगा को हमारी संस्कृति के आधार स्तंभ माना है।

युग पुरुषों का स्मरण

गांधीजी, नेहरू, कवीन्द्र रवीन्द्र, नबी जैसे युग पुरुषों के प्रति पन्त जी ने अपनी कविताओं में श्रद्धांजलि अर्पित की है। "हिंस्र धरा पर प्रथम अहिंसक मानव बनकर आये" युग मानव थे गांधीजी। वे "भावी संस्कृति का आधार" और "नव-युग निर्माता" थे। उनके प्रति कवि ने निम्नलिखित कविता द्वारा आदर प्रकट किया है।

देव-पुत्र था निश्चय वह जन मोहन मोहन
सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण[2]।

जैसी पंक्तियाँ गांधीजी की त्यागमयी महानता की ओर इशारा करती हैं।

मनुज अहं के गत विधान को बदल गए, हिंसा हर[3]!

---

1. युगान्तर, पृ.83-86
2. युगान्तर, पृ.74
3. वही पृ.77

जैसी पंक्तियाँ उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांत की प्रशंसा में लिखी गयी हैं। "युगान्तर" की कविताओं में पन्तजी ने बापू की महानता को इस प्रकार अंकित किया है - अपने अमृत स्पर्श से अछूतों का उद्धार करके मृत संस्कृतियों के विकृत भूत से मानव को मुक्त करके बापू ने जड़ता, हिंसा और स्पर्धा से भरे उनके मन में चेतना, अहिंसा और नम्र ओज भरा, पशुता के पंकज को मानवता का सरोज बना दिया, पशुबल की कारा से जग की आत्मा को विमुक्ति दिलाई, विद्वेष और घृणा से लडनेवाले को प्रेम का सबक सिखाया। उन्होंने सत्याग्रह किया, जातिभेद का विरोध किया, खादी का प्रचार किया, हरिजनों के उद्धार केलिये प्रयत्न किया। गाँधीजी, इस यंत्राभिभूत युग में मानव जीवन का परित्राण करने केलिये जडवाद से जर्जरित जग में अवतरित महान आत्मा थे। उन्होंने भारतीय जनता को "रामराज्य" का सपना दिया और उसे साकार करने केलिये कर्म का सन्देश भी दिया।

खादी के अकलुष जीवन सौन्दर्य पर सरल
भावी के सतरंग सपने कँप उठते झलमल[1]।"

xx xx xx

स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश सर्वोच्च शिखर पर
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष पर[2]।"

xx xx xx

यांत्रिकता के विषम भार से जर्जर भू पर
मानव का सौन्दर्य प्रतिष्ठित कर देवोत्तर[3]।

---

1. युगान्तर, पृ.69
2. वही, पृ.68
3. वही, पृ.74

"इस विशालतम जन समुद्र के भाग्यविधायक, जनगण के नायक, भारत के ज्योतिरत्न" जवाहरलाल के प्रति भी पन्तजी ने आदर प्रकट किया । युगद्रष्टा कवीन्द्र रवीन्द्र अपने गीतों से धरती पर नवजीवन बरसकर चले गये । अब इस पृथ्वी को जगाने केलिये उनको एक बार फिर आना चाहिए ।

एक बार फिर आओ कवि, इस विधुर देश को
अपनी अमर गिरा से नव आश्वासन देने ।
आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आपकी,
वाणी के वर पुत्र, धरा की महामृत्यु को
अमर स्वरों से जगा, विश्व को दो जीवन वर[1] ।"

"हिंस्र, बर्बर अरबों के रण जर्जर जीवन में, मरुस्थल में ज्योति निर्झर के समान अवतरित नबी" के सामने भी पन्त जी ने श्रद्धा से शीश झुकाया । उच्च कुल में जन्म लेने पर भी "मैं भी अन्य जनों सा हूँ" कहकर सब से साधारण जीवन बितानेवाले नबी पन्तजी के अनुसार एक दूरदर्शी शासक, धर्म केतु, विश्वास सेतु और नीतिज्ञ थे ।

स्वर्ग दूत जबरील तुम्हारा बन मानस पथ दर्शक,
तुम्हें सुझाता रहा मार्ग जन मंगल का निष्कंटक
तर्कों, वादों और बुतों के दासों को, जन रक्षक,
प्राणों का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकर्षक[2] ।"

---

1. चिदम्बरा, पृ. 194
2. वही, पृ. 174

"विश्वात्मा के नव विकास, परम चेतना के प्रकाश और ज्ञान-भक्तिश्री के विलास श्री अरविन्द के प्रति भी पन्त जी ने आदर प्रकट किया है । और जब वर्तमान युग में -

" जीवन संघर्षण मे लोहित गए मर्त्य के पग थक !
जीर्ण युगों की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अहं की दासी बन, स्वार्थों को किए समर्पण,
अंतर्विश्वासों के उन्नत श्रृंग रहे ढह भू पर,
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ अनुर्वर

तो कवि ने अरविन्द से यह प्रार्थना की है कि -

" तुम्हें पुकार रहा तव अंतर, भावी मानव ईश्वर
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को वर ![1]"

युग पुरुषों के प्रति आदर प्रकट करने में पन्त जी आलोच्य युगीन कवियों में सबसे आगे थे । उनकी "श्रद्धा के फूल", "अंतिम पैगम्बर" "कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति", "मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति", "श्री॰ अरविन्द के प्रति" जैसी कवितायें इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । इन स्वर्गीय महात्माओं की पुण्य स्मृति के सामने उनको नतशीश देखा जा सकता है ।

राजनीतिक चेतना

पन्तजी के विचार में, राजनीतिक दृष्टि से वर्तमान युग जनतंत्र का युग और सांस्कृतिक दृष्टि से लोक मानवता का युग है ।
स्वतंत्र भारत की राजनीति अत्यंत कलुषित हो गयी है । नेता भाषणप्रिय मात्र रह गया है । पन्त जी ने तीखी वाणी में इसका चित्रण किया है ।

---

1. चिदम्बरा, पृ॰199

कुत्ते की तरह बोलता
तो बात भी थी !
कैसा भूँकता है कुत्ता,
मुहल्ला गूँज उठता है
भौं - भौं[1]।

कवि के मतानुसार नेतागण केलिये जनता के मन में कोई स्थान नहीं है। नेताओं पर व्यंग्य प्रहार करते हुए पन्त जी ने लिखा -

मैं उदरक्षुधा से
पीड़ित जीवन कंकालों को अर्थशास्त्र का
लोकतन्त्रिय संजीवन देने आया हूँ!
मात्र जन सेवक हूँ मैं
मेरे पास अनेक नई योजना बनी है,
कार्यरूप में जिनको परिणत भर करना है[2]।

सांस्कृतिक चेतना

"मानव सभ्यता आज एक ऐसे संक्रान्ति स्थल पर पहुँची है जहाँ उसे निज पिछले जीवन का मंथन कर और पिछले आदर्शों, मूल्यों का विश्लेषण कर, विविध विगत संस्कृतियों का महत् समन्वय करके एक लोक सभ्यता निर्मित करनी है[3]। आज विश्व के सांस्कृतिक क्षितिज में भयानक मेघ चारों ओर उमड

---

1. कला और बूढ़ा चाँद, पृ.205
2. रजतशिखर, पृ.31
3. उत्तरशती, पृ.89

घुमड घिर रहे हैं। राष्ट्रों के कटु स्वार्थ, स्वत्व धन बल की तृष्णा, पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था आदि इसका कारण है। हमारी सांस्कृतिक गिरावट की ओर संकेत करते हुए पन्त जी ने लिखा है कि आज वास्तव में मनुज मर गया है। व्यक्तित्वहीन होकर वह बाहर दौड रहा है। व्यक्तित्वहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है। यांत्रिकता से मानव का मन आज निर्जीव हो गया है। उनका हृदय चूर्ण हो गया है। मनुज अब व्यक्ति नहीं, समूह बन गया है, ऐसा समूह, जो यंत्रों से चालित इच्छाओं का समूह है, घृणा, द्वेष, स्पर्धा और तृष्णाओं का समूह है; नारकीय कटुता, निर्ममता और अवचेतन की अन्ध वासना का समूह है।[1]

> संस्कृति ? ज्यों के हित मारण की दासी है!
> युग अपनी मुट्ठी में अणु संहार लिये है!
> विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दों में!
> हिल हिल उठते आज चेतना भुवन, मनुज की
> भावी की आशंका से! अह, आज मनुज का
> आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक।[2]

विवेच्य युग में पंत और दिनकर ने हमारी सांस्कृतिक गिरावट के बारे में अधिक सोच-विचार किया है।

जीवन की यांत्रिकता का विरोध

आधुनिक युग में विज्ञान ने यंत्रों के बल से अनेक चमत्कार दिखलाये। लेकिन अब यह शंका का विषय है कि मनुष्य विद्युत पर शासन

---

1. रजतशिखर, पृ.71
2. चिदम्बरा, पृ.242

करता है या विद्युत बाष्प यंत्र मनुष्य को अधिकृत किए हैं । मानव का अंतर दर्प से चूर्ण हो गया है । जड भौतिकता ने उसे हृदयहीन कर दिया है । "आज विज्ञान ने प्रकृति की मूल शक्ति देकर मानव को महानाश के पथ पर छोड दिया है[1] । पन्त जी केलिये यह पृथ्वी श्मशान के समान दिखाई पडती है -

आज निखिल विज्ञान शक्ति मानव हाथों में
विश्व प्रलयकारिणी बन गयी, लोक विनाशक !
कापालिक बन गया मनुज है, जीवन बलि प्रिय;
मानव शव का पूजक, साधक भू श्मशान का ![2]

हम अभी यंत्र का मानवीकरण नहीं कर सके हैं, उसे मानवीय अथवा मानव का वाहन नहीं बना सके हैं, बल्कि वही अभी हम पर आधिपत्य लिये हुए हैं । यंत्र युग के मनुष्य की चेतना में अभी सांस्कृतिक परिपाक नहीं हुआ है ।

भौतिक द्रव्यों की घनता मे
चेतना भार लगता दुर्वह,
भू जीवन का आलोक ज्वार
युग मन के पुलिनों को दुस्सह[3] ।

आज भौतिकता लोहे के निर्मम चरण बढाकर मानव आत्मा को रौंद रही है । मानव आत्मा यंत्रों के विकट अस्थिपंजर में अंतिम सांस ले रही है । विज्ञान ने मनुष्य को भौतिक सुख संपन्न बनादिया है ।

---

1. रजतशिखर, पृ.68
2. वही, पृ.71-72
3. उत्तरा, पृ.68

लेकिन अंतरमन दुखी है । अंतरिक्ष युग अब आँखों के सामने आया है । और

उपग्रहों में परिभ्रमण कर
चंद्र, भौम, उशना के प्रांगण
छूने को, लो, दिग् विजयी नर !
सर्वक्षेम के स्वर्ण बीज क्या
बोएगा वह उन धरणी पर ।
मन को यह विश्वास न होता,
जीवन-शक्ति जग का अंतर ।"[1]

पन्तजी भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय को पक्षपाति थे । उनके मतानुसार इस समन्वय से ही मानवता का त्राण संभव है । उन्होंने विज्ञान को केवल साधन माना, साध्य नहीं ।

ओ इस्पात के सत्य,
मनुष्य की नाड़ियों में बह,
उसके पैरों तले बिछ -
लोहे की टोपी बन
उसके सिर पर मत चढ़ ।[2]
x x x x x
ओ इस्पात के तथ्य
मैं तेरा जूता पहन
दृढ संकल्प के चरण
बढ़ाऊँगा -
पर तुझे

---

1. चिदम्बरा, पृ.339
2. कला और बूढ़ा चाँद, पृ.91

मूर्धन्य स्थान
नहीं दे सकता !
तू साधन रह,
साध्य न बन ![1]

विवेच्य युग के अन्य कवियों ने जहाँ यांत्रिकता का विरोध मात्र प्रकट किया वहाँ पन्त जी ने जो समन्वय का सन्देश दिया है वह उनकी मौलिक उपलब्धि है ।

मानवतावाद

पन्त जी ने देखा कि पृथ्वी में आज अपार विभव है, पर दारिद्र्य अपरिमित है । यहाँ अगाध ज्ञान है लेकिन असंख्य लोग अविद्यातम से पीड़ित है; मन रोगग्रस्त है । जीवन विषम हो गया है । मनुज की आत्मा मृत है । धरा का वक्ष राष्ट्रों के स्वार्थों से खंडित है । युग पथ मनुज रक्त से पंकिल है । दैत्य के सब मनोरथ पूर्ण हुए । अब स्वर्ग रुधिर से अभिषेकित हुआ है । मानव अपने अंतर्जगत का वैभव भूल गया है - जीवन का सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि भूमि पर नहीं रहते हैं । मानव की सृजन चेतना निष्क्रिय होकर पंगु पड़ी है -

अंतर्मन के भूमिकंप से ध्वंस भ्रंश हो
अंतर्विश्वासों के, उन्नत आदर्शों के
शिखर सनातन बिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर
मानव के नयनों से शाश्वत का प्रसन्न मुख
अस्त हो गया, यह वसुन्धरा निरानंद है ।[2]

1· कला और बूढ़ा चाँद, पृ·100

2· युगान्तर, पृ·107-108

कवि का अटल विश्वास था कि यांत्रिकता के विषम भार से डूबनेवाली जगत् की रक्षा भारत की आध्यात्मिक ज्योति से ही कर सकेगी। "भूत तमस में खोए जग को फिर अंतर्पथ दिखाना, मानवता के हृदय पद्म को पंक मुक्त कर ऊर्ध्व उठाना युग की आवश्यकता है। मानवता के सामने विद्युत और अणु सिर झुकेगा। वे वसुधा पर नव स्वर्ग सृजन के साधन बनेंगे।

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता;
xx xx xx
मैं नव प्रभात के नभ में उठ, मुस्काता;
जीवन पतझर में जन मन की डालों पर
मैं नव मधु के ज्वाला पल्लव सुलगाता।[1]

वर्तमान युग में तर्क नियंत्रित यांत्रिकता के पद प्रहार से अंतर्मन के सूक्ष्म संगठन ध्वस्त हो रहे हैं। आज धरा के भूतों के इस तमस क्षेत्र में, जीवन तृष्णा और मनोदाह से क्षुब्ध दग्ध, जर्जर जन गण चीत्कार कर रहे हैं। मानव के मुख पर मानव गौरव नहीं झलकता है। उनका हृदय रुद्ध है; मन स्वार्थों में सीमित है। इस परिस्थिति में पंतजी ने मानवता का महान सन्देश दिया है -

मानव अंतर हो भू विस्तृत
नव मानवता में भव विकसित।[2]
xx xx xx

---

1. उत्तरा, पृ.11-12
2. वही, पृ.38

ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव जग जीवन,
देश जाति वर्गों से
निखरे नव मानवपन[1]!

पन्तजी मानवता के अनन्य उपासक थे। बाह्य जगत् की उन्नति के समान अंतर्मन का विकास भी मानवता की जय केलिये आवश्यक है। कवि ने अपनी कविताओं में इस समन्वय का संदेश दिया है।

अंतर्राष्ट्रीय चेतना

पन्त जी की दृष्टि में मनुष्य को रक्त, जाति, वर्ण, धर्म और संकुचित राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे से मुक्त होकर सत्य, प्रेम एवं मनुष्यत्व का उपासक बनना चाहिए। पूर्व और पश्चिम का भेदभाव छोड़कर सबको मानवता का सन्देशवाहक बनना चाहिए -

तो अच्छा हो अगर छोड दें
हम अमरीकन रूसी औ' इंग्लिश कहलाना!
निखरे भू देशों से ऊपर,
पृथ्वी हो सब मनुजों का घर
हम उसकी सन्तान बराबर[2]!

पंतजी की अंतर्राष्ट्रीय चेतना में भी उनकी समन्वय भावना देखी जा सकती है।

---

1. चिदम्बरा, पृ.178
2. स्वर्णधूलि, पृ.115

युद्ध एवं शान्ति

एक तीसरे विश्वयुद्ध की भीषणता आज विश्व पर छायी हुई है। यह निश्चय है कि विज्ञान की संहारक शक्ति एक दिन मानवता का अंत करेगी। इसलिये -

देश, राष्ट्र और राज्यों के हित नित युद्ध कराना
हरित जनाकुल भू पर विष पावक बरसाना[1]

हमको छोड़ना चाहिए।

तीसरे विश्वयुद्ध केलिये धरा के
राष्ट्र आज सन्नद्ध दीखते: अणु विस्फोटों
रतज कीटाणुओं, गरल-दृष्टि से-वसुंधरा पर
महा प्रलय, अंतिम विनाश लाने को उद्यत !![2]

यांत्रिकता और युद्ध भीति से पीड़ित जगत को अपनी कविताओं द्वारा शांति का संदेश सुनाना कवि का लक्ष्य था। भारत के सत्य और अहिंसा का सिद्धांत विश्व को सही पथ दिखाने में समर्थ है। गाँधीजी ने अहिंसा को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक बनाया है। पन्त जी के विचार में -

सत्य अहिंसा होंगे भावी के पथ दर्शक,
विचरेगी मानवता फूलों के प्रदेश में
नव संस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोषित ![3]

---

1. स्वर्णधूलि, पृ.115
2. युगान्तर, पृ.106
3. चिदम्बरा, पृ.248

x x x x x

और

सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण
मानवीय स्पर्शों से भरते धरती के व्रण ।

विश्व शांति और विश्व संस्कृति की कल्पना करते वक्त पंत जी पर गाँधीजी और गौतम बुद्ध का प्रभाव देखा जा सकता है ।

धार्मिक चेतना

देश-विदेश की अनेक समस्याओं पर सोच-विचार करते वक्त पंत जी ने अपनी धार्मिक चेतना को भी प्रकट किया है । "आज मानव का अंतस्तल अणु-त्रास से कँपता है । साधु का वेश धरकर मन हँसता है । पंचवटी का हृदय आज श्रीहीन है । श्रद्धा जटायु की पंख-सी कटी हुई है । जन मन विह्वल और अशांत है । जग जीवन नीरस, असार और विश्री लगता है । उर का स्वप्न अचानक सतरंगी बुदबुद के समान बिखर गया है । जीवन संघर्षण से लोहित मर्त्य के पग थक गये हैं । मानव आत्मा को भौतिक आडम्बर कुचल रहा है । हृदय भर अन्धकार है, चेतना का प्रकाश बुझ गया है, सभ्यता का हृदय चूर्ण हो गया है । युगान्तर की कविताओं में पन्तजी ने अपने इन्हीं विचारों को वाणी दी है । और भू तमस में खोए जग को आध्यात्मिक ज्योति दिखाने का प्रयास भी पन्त जी ने किया है ।

---

1. युगान्तर, पृ॰73

भूत तमस में खोए जग को
फिर अंतर्पथ आज दिखाओ,
मानवता के हृदय पद्म को
पंक मुक्त कर ऊर्ध्व उठाओ ।"[1]

पंतजी की धार्मिक चेतना के मूल में निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर नवमानवता की प्रतिष्ठा करने की भावना निहित है ।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

पन्त जी ने स्त्री को माता माना है । उनके मतानुसार स्त्री को पुरुष की दासी नहीं बननी चाहिए । वे, समाज में स्त्री और पुरुष को समानाधिकार देने के पक्ष में थे । उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ इस तथ्य से खूब साक्षात्कार कराती है -

हो स्वतंत्र नारी जैसे नर
देव धार हो मातृ कलेवर ।[2]

समाजवाद

उत्तरा की भूमिका में पंत जी ने लिखा है कि मानवता को वर्गहीन बनाने केलिये समतल प्रसारगामी के साथ ऊर्ध्वगामी बनना पड़ेगा, जो हमारे युग की एकांत आवश्यकता है । शोषण मुक्त, वर्गहीन समाज की स्थापना पन्तजी का लक्ष्य था ।

1. चिदम्बरा, पृ.190
2. स्वर्णधूलि, पृ.116

निष्कर्ष

पन्त जी हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर युग के युग सन्देश वाहक थे। उनकी विवेच्य युगीन कविताओं की प्रमुख एवं उल्लेखनीय विशेषता उनकी समन्वय-भावना है। उन्होंने समस्त सामाजिक असंगतियों और सांस्कृतिक अधःपतन का कारण जीवन में संतुलन या समन्वय का अभाव माना है। व्यक्ति और समाज, जड और चेतन, भौतिकता और आध्यात्मिकता, बाह्य जगत् और अंतर्जगत पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के समन्वय पर उन्होंने ज़ोर दिया।

महद् समन्वय आज चाहिये युग मानव को
देव मनुज पशु जिसमें हों अंतःसंयोजित[1]।"

समन्वय को उन्होंने युग की आवश्यकता मानी है। वादों और सिद्धांतों के संकीर्ण दायरे से वे सदा दूर रहे थे। मार्क्सवाद का प्रभाव ग्रहण करने पर भी वे उसे पूर्णता से अपना नहीं सके। सन् 1944 में पन्तजी पॉण्डिचेरी में श्री अरविंद आश्रम गये। वहाँ के आध्यात्मिक वातावरण का गहरा प्रभाव उनपर पडा। पंतजी की समन्वय भावना में अरविंद दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। अरविंद दर्शन का मूल तत्व समन्वय है। उत्तरा की भूमिका में कवि ने इसे स्वीकार किया है। पंतजी की कविताओं में जो मानवतावाद की प्रतिष्ठा होती है वहाँ कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट होता है। इनके अतिरिक्त गाँधीजी, श्रीबुद्ध और फ्रायड से भी उन्होंने प्रेरणा पायी।

---

1. चिदम्बरा, पृ.272

इस प्रकार देखें तो पंत जी की स्वातंत्र्योत्तर कवितायें सामाजिक चेतना से युक्त कही जा सकती हैं । समाज के सभी पहलुओं पर उन्होंने दृष्टि डाली है । राजनीति पर विचार करते वक्त उन्होंने व्यंग्य का प्रयोग भी किया है । "सिन्धु मंथन", "वाचाल" जैसी कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । "फूलों का देश", "ध्वंस शेष", "सौवर्ण" जैसी कवितायें भी सामाजिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं । "ध्वंस शेष" अणु विनाश का चित्र उपस्थित करके मानवता को शांति केलिये आह्वान करनेवाली कविता है । राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलनों की सफलता की पूर्णता केलिये एक सांस्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता पर भी उन्होंने ज़ोर दिया है ।

मोहनलाल द्विवेदी

परतंत्र भारत में जन्म लेकर राष्ट्रीय चेतना के विकास केलिये अपना सारा साहित्यिक जीवन सौंप देनेवाले सोहनलाल द्विवेदी ने गांधीवादी जीवन दर्शन तथा गांधी विचार पद्धति को अपने जीवन तथा अपनी कविताओं में स्वीकार किया है । छायावाद युगीन कवि होने पर भी उनकी कविताओं में छायावादी कलाबाजिता नहीं है ।

कविता को समाज सापेक्ष मानकर सोहनलाल जी ने इस प्रकार लिखा है कि "शताब्दियों से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं बहिष्कृत जनता केलिये हम लिखें और उनकी भाषा में लिखें जिसे वे समझ सकें । आज हमारे राष्ट्र की मांग यही है कि हम जनता केलिये साहित्य-सृजन करें । इस दृष्टि से प्रारंभ से ही "बहुजनहिताय लिखने की मेरी चेष्टा रही है[1] ।"

---

1 प्रभाती - भूमिका

"मुक्तिगन्धा", "चेतना", "गान्ध्ययन", "पूजागीत" आदि आलोच्य कालावधि के अंतर्गत प्रकाशित उनकी काव्य कृतियाँ हैं ।

सामाजिक चेतना

आज तक कवि कल्पना में उड़ते रहे । अब उनको आकाश से उतरकर धरती पर बसना है । आज के कवि को जनता की कातर पुकार, तड़पन, बेचैनी और धड़कन को वाणी देना है । क्योंकि कवि जनता का प्रतिनिधि है । इस विचार को स्पष्ट करते हुए सोहन लाल द्विवेदी ने लिखा है -

मैं तुमसे कहता नहीं, न यह मेरा स्वर है,
यह जनता की कातर पुकार है, तड़पन है
मैं तुमसे कहता नहीं, न यह मेरा स्वर है
यह जनता की बेचैनी है यह धड़कन है[1] ।

सोहनलाल जी के विचार में कवि को जन जीवन की दोपहरी में शीतल छाया बननी चाहिए । उनको निरालंब का नव आलंबन, वसुधा के जलते कण कण में अमृत प्र वाह बनना चाहिये । सोहनलालजी इस अर्थ में युग कवि थे । उनके ही शब्दों में -

मैं जनता का साथी हूँ
मैं कवि हूँ हिन्दुस्तान का[2] ।

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ 47
2. वही, पृ.54

स्वतंत्रता के बाद कवि पहले से अधिक जन जीवन के निकट आया । अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कवि ने लिखा है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड से गुजरा है, जनता पर जो उसकी प्रतिक्रिया हुई है उसकी मानसिक आशा, निराशा, आकांक्षा, आक्रोश के भाव साकार होकर आप से साक्षात्कार करना चाहते हैं[1] ।

सोहनलालजी ने अनेक विषयों पर कवितायें लिखी हैं । समाज के किसी भी अंग को उन्होंने अछूता नहीं छोडा है ।

वर्तमान सामाजिक संकट

हम को स्वतंत्रता मिली । लेकिन हमारे गुलामी का व्रण अभी तक नहीं भरा है । हम अपने घर में परदेशी के समान है; धर्म हीन, आस्थाहीन, भटके विदेशी हैं । आज हम प्राणहीन लोह यंत्र के समान बन गये हैं जो सदा मालिक की मर्जी से चलता है । माँ-बहनों की लाज अत्याचारी लूट रहे हैं । समाज में रक्तपात, हिंसा और बर्बरता का खेल है । चारों ओर असंतोष की आग सुलग रही है । महँगाई, भुखमरी, गरीबी बढ रही है । समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त रहा है । दीवारों पर लिखा है - "रिश्वत लेना पाप है ।" लेकिन लोग रिश्वत लेने का अवसर कभी नष्ट नहीं करते हैं । कवि पूछते हैं कि -

क्या न्याय मिलेगा यों ही रिश्वत देने से,
यह राज्य चलेगा कब तक रिश्वतवालों का ?[2]

---

1. मुक्तिगन्धा, भूमिका
2. वही, पृ.42

स्वतंत्र भारत की सामाजिक स्थिति देखकर दुखी कवि ने लिखा -

मनुज हम नहीं रहे
लगता सब मवेशी है
भौतिकता के झण्डे मे हाँके सभी जा रहे,
केवल अर्थतृष्णा में भागे सभी जा रहे
कहीं भी टिकाव नहीं,
कहीं टकराव नहीं,
केवल भटकाव मात्र मानव की यात्रा[1] ।

मोहनलाल जी ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है ।

भूख और गरीबी का चित्रण

स्वतंत्र होने पर भी देश आज भी गरीब है । यहाँ दीन हीन जनों का जीना ही अभिशाप है । "अर्ध-नग्न" कविता में कवि ने इस गरीबी का चित्रण किया है ।

धोती यही एकमात्र
जिससे ढँके रहती गात्र,
पहनती इसे ही दस वर्षों से लगातार,
और कुछ नहीं, इसके भी हुए तार तार,
मिल गया जल कहीं यदि सौभाग्य से
धोती पहले एक छोर,

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.111

उससे लपटे तन,
धोती हूँ फिर और छोर !
मैं ही नहीं - मेरी ही तरह और
कोटि कोटि बहने हैं, भाई हैं ठोर ठोर ।
खाते कौर गिन गिन
काट रहे मुझ से ही अपने ज़िन्दगी के दिन[1] ।

हमारे देश में वस्त्र, अन्न आदि प्राथमिक वस्तुओं का भी अभाव है । अन्नपूर्णेश्वरी भारत माता क्षुधित है, वह कंगालिनी बन गयी है । रत्नाभरण भारत धात्री आज भिखारिणी बन गयी है[2] । ऐसे समाज ने कवि को ईश्वर से यह प्रार्थना करने ने विवश कराया है कि -

यों ही मानवता को यदि
तुमको भूखों तड़पाना है,
भरा हुआ भंडार तुम्हारा
किंतु न तुम्हें खिलाना है;
तो समेट लो इस जगती को
आज सृष्टि का अंत करो[3] ।

---

1. चेतना, पृ.5,6
2. पूजागीत, पृ.7
3. मुक्तिगन्धा, पृ.24

आर्थिक चेतना

भारत कृषि प्रधान देश है । हम ने अब तक आर्थिक रूप से स्वावलंबन नहीं पाया है । हमारा देश कंगालों का देश बन गया है । हम स्वतंत्र हुए, लेकिन, क्या, द्वार द्वार पर अन्न की भीख माँगने की आज़ादी हम को मिली ? व्यय बढ रहा है, आय घटती है । योजनाओं से हमारा सुधार नहीं होगा । रात दिन हम नीचे गिर रहे हैं । हमारे गाँवों में युग युग से अन्धकार छा गया है । वर्तमान समाज में होनेवाले रक्तपात और हिंसा का एक कारण हमारी आर्थिक स्थिति भी है । कवि की दृष्टि में हम अर्थ तृषा से सन्तप्त है । इसलिये उन्होंने यह उद्बोधन दिया कि "जीवन नहीं धन है, जीवन आत्म दर्शन है ।"

द्रौपदी के चीर के समान, रात दिन महँगाई बढ रही है । देश की आम जनता जीने केलिए तड़प रही है । अन्न-धन-हीन भारत का रूप द्विवेदीजी ने इस प्रकार चित्रित किया है -

"आज आर्त विषण्ण दीना,
मातृ मुख है कान्ति क्षीणा,
अन्न-धन-सर्वस्व हीना ।"[1]

इस दुरवस्था को बदलने केलिएकिसानों को जागृत कराना आवश्यक है । क्योंकि "जब तक किसान न जगेंगे, तब तक हिन्दुस्तान न जगेगा" ।

---

1. प्रजागीत, पृ.35

आर्थिक स्वावलंबन केलिये सोहनलाल जी ने किसानों को उद्बोधित किया है कि जिस प्रकार जवानों ने शत्रु की चुनौती स्वीकार की उसी प्रकार तुम्हें भी यह चुनौती स्वीकार करना है कि -

लेकर अन्न औरों का
नहीं है दासता लेनी[1] ।

वर्तमान भारतीय समाज में भोले भाले किसान की स्थिति कुछ इस प्रकार की है कि -

आजीवन श्रम करते रहना
मुँह से न किन्तु कुछ भी कहना,
नित विपदा पर विपदा सहना
मन की मन में सारी दहना[2] ।

उनके फटे चिथड़े देखकर, उनके सूखे खेत निहारकर कवि का मन क्षोभ से भर गया है -

यह अन्याय अनीति मिटाओ
युग युग का दुख दैन्य टालो[3] ।

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.72
2. वही।
3. गान्ध्ययन, पृ.29

वर्ग-वैषम्य

वर्तमान समाज में वर्ग वैषम्य इतना कठोर है कि "निर्धन को धनी खा रहे हैं। यहाँ बर्बर नर संहार हो रहा है। निम्न वर्ग के लोगों के अस्थि पंजरों की नीवों पर उच्च वर्ग के प्रासाद खड़े हो रहे हैं, उनकी भूखों की होली पर ये दीवाली मना रहे हैं[1]।

सोहनलाल जी ने वर्ग वैषम्य को प्रगति के मार्ग का बन्धन माना है। इसलिये उन्होंने जनता से "सुख और सम्पत्ति के कारागृह में ग्रास के दास नहीं बनने का, दिगम्बर रहकर धूलि-धूसरित रज में सो जाने" का अनुरोध किया है।

वर्ग-वैषम्य को मिटाने केलिये सोहनलालजी ने क्रान्ति को आवश्यक माना है -

कण्ठ कण्ठ में घुटन, रहेगी
कब तक सब चुपचाप रे ?
अन्तर्ज्वालामुखी धधकता
पा भीषण सन्ताप रे,
x x x x x
धधक उठेगी स्वयं एक दिन
बन जन-क्रांति महान रे[2]।"

---

1. गन्धयन, पृ.29
2. मुक्तिगन्धा, पृ.115

समाजवाद

समाजवादी समाज की स्थापना कवि का लक्ष्य था। "जिनका श्रम है उनकी धरती / जिनका हल है उनकी धरती"[1] यही कवि का विश्वास था। इसलिये उन्होंने कहा कि धनी और गरीब समान हैं, मानव मानव में समता होनी चाहिए -

विषम पथ ये सम बनेंगे,
सुखद जीवन क्रम बनेंगे,
जन्म नव, जीवन नवल
नवदेश, नवयुग ज्ञात होगा[2]।

राजनीतिक चेतना

"चलो उधर ही, जिधर आज / ले चला तुम्हारा है नेता" कहकर नेताओं पर अपना विश्वास प्रकट करने के साथ ही कवि ने यह भी कहा कि "जिनको अपने देश, वेश और अपनी भाषा का ज्ञान नहीं, ऐसे नेताओं से राष्ट्र कल्याण कभी नहीं होगा"[3]। जनता के उन्नायक बनकर स्वयं को सुधारनेवाले, गणतंत्र मनानेवाले और जनतंत्र गीत गानेवाले नेताओं से कवि का अनुरोध है -

---

1. चेतना, पृ.31
2. पूजागीत, पृ.100
3. मुक्तिगन्धा, पृ.11,17

पीछे हटो, बढो मत आगे
कथनी और, और करनी है
आज रहे तुम किस लायक ?[1]

जिस खादी को पवित्र वेश के रूप में बापू ने धारण किया, कवि कहते हैं, आज के नेताओं ने इसे कलंकित किया है । खादी का वेश सत्य का वेश था । यह शहीदों का वेश था । जो गौरव इस पर अंकित है उस गौरव को, इसकी धवलकीर्ति को धूमिल करने मे, कवि ने इन झूठे नेताओं को रोकने का प्रयत्न किया है । ऐसी भ्रष्ट राजनीति ने कवि को यह कहने केलिये विवश बनाया कि "मुझे भरोसा नहीं अब दिल्ली के दरबार का[2] ।"

नवयुग के निर्माण केलिये नेताओं को सिंहासन का मोह छोडकर जनता की आकांक्षा, तडपन, जनता की चाहें और आहें समझने केलिये जनता का साथी बनना चाहिए[3] ।

अशोक, शिवाजी, शास्त्रीजी, गांधीजी, सीमान्त गान्धी, राजेन्द्रप्रसाद प्रभृति महान नेताओं के प्रति, जिन्होंने भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम इतिहास रचा, मोहनलालजी ने श्रद्धांजलि अर्पित की है ।

हमारे वर्तमान नेताओं के अधर में उल्लास और हृदय में सन्त्रास है । भीतर से वे जनता से बहुत दूर रहते हैं, और बाहर से उनके पास । यह देखकर कवि को शंका हुई कि "यह कैसा जनतंत्र है जहाँ पर घोर विरोधाभास है ?" ऐसे नेताओं से कवि ने कहा कि "तुम जैसे नेताओं को

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.33
2. वही, पृ.51
3. वही, पृ.57

देखने से गाँधीजी की प्रतिमा तक शर्मायेगी ।" इन नेताओं पर कवि ने व्यंग्य भी किया है -

द्वार द्वार पर द्वारपाल है,
द्वार द्वार पर है प्रहरी,
प्रहरी पर प्र हरी बैठे हैं ।
देहरी के ऊपर देहरी,
कैसे पहुँचे पास तुम्हारे
पडी साँकलें हैं गहरी ?
किसे सुनायें व्यथा, दिखायें
राजभवन की है बहरी ?

सोहनलाल जी ने वर्तमान राजनीति पर काफी विचार किया है । उनकी दृष्टि नेताओं की चरित्र हीनता पर अधिक पडी है ।

स्वतंत्रता का स्वागत

सोहनलाल जी ने क्षितिज पर मुस्कानेवाली स्वतंत्रता की अरुण उषा का महर्ष स्वागत करके मंगल गीत गाया है -

पावन पर्व युगों में आया,
पुलकित बने प्राण मन काया,

1· मुक्तिगन्धा, पृ·116

गूँज रही आनन्द भैरवी
मंद हुई करुणा विहगिनी ।
गाओ मंगल गीत रागिनी !
मेरी स्वतंत्रता का नव शिशु
जन्म ले रहा बनकर नव विधु
जनता जलधि हिलोर ले रहा
ले सुख की लहरें सुहागिनी ।[1]

स्वतंत्रता पर हर्ष और उल्लास प्रकट करते हुए कवि ने कहा कि हमारी साधना आज सफल हुई है, अतीत की यातनायें केवल कथा बनकर गूँज रही है । आज धरा, आसमान, सूर्य, चन्द्र, जहान, ग्रह, खगोल, विधि-विधान सब बदल रहे हैं, स्वतंत्र राष्ट्र का नवीन पट खुल रहा है । जननी को बन्धनहीन बनानेवाली वह रजनी धन्य है । युगों की तप साधना आज के दिन पर निछावर करती है । हमारे सपनों को साकार बनानेवाला यह दिवस, यह क्षण अमर है । नये राष्ट्र का उदय हुआ है, नया संस्कार हुआ है, स्वतंत्रता का नूतन अवतार हुआ है ।

अन्धकार हो गया दूर, नव
किरणों का मधुपान करो ।
आती युग भारती धरा पर
कवि ! उठ मंगल गान करो ![2]

---

1. चेतना, पृ.26
2. मुक्तिगन्धा, पृ.6

तिरंगे झंडे की वन्दना

तिरंगा झण्डा हमारी स्वतंत्रता का प्रतीक है । स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए द्विवेदीजी ने स्वतंत्र भारत की पताका का भी अभिनन्दन किया है ।

लहरे तिरङ्गा ध्वज अपना !
जिसने सत्य बना दिखलाया
आज़ादी का सपना ।
जिस जयध्वज को पाकर आगे,
सोये भाग्य हमारे जागे,
दूर हुए सदियों के बन्धन
रोना और कलपना ।
लहरे तिरंगा ध्वज अपना ।"[1]

"जय केतन" कविता में कवि ने तिरंगे ध्वजे को इन्द्रधनुष के समान नभ में छहराने की अभिलाषा प्रकट की है । "राष्ट्र-ध्वजा" में राष्ट्र ध्वज को राष्ट्र की विजय का अमर निशान कहकर उसकी वन्दना की है ।

देश-विभाजन

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश का विभाजन हुआ । इस पर सोहनलाल जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपना दुख प्रकट किया है -

---

1. चेतना, पृ॰1,57,64

गाँधी तो मर गया उसी दिन
जब यह देश विभक्त हुआ
गाँधी की आत्मा से पूछो
कितना दुखी अशक्त हुआ ।[1]

गाँधीजी की मृत्यु

गाँधीजी की मृत्यु पर "यह समस्त देश बन गया महा ममान है", कहकर द्विवेदीजी ने अपना दुख प्रकट किया । साथ ही उन्होंने "अधम, तुझे क्या मिला आज ले करके जान महात्मा की" पूछकर गोडसे पर अपना रोष भी प्रकट किया है । देश के नष्ट को उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया -

"आज कौन है शेष देश में जो अब फिर तेरा त्राण करे ?"[2]

कवि को ऐसा लगा कि सारा देश एक महा श्मशान बन गया है, काल की छद्म वेश में चिराग बुझ गया है । सारा भारत अनाथ हो गया है । गाँधीजी के अभाव में भारत की स्थिति वैसी ही है जैसी राम के बिना अयोध्या या कृष्ण के बिना व्रजमंडल । दुख का ताप कवि के कंठ से इस प्रकार निकला -

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.87
2. गान्ध्ययन, पृ.93

धू-धू जला शरीर, हो गई,
राख महामानव काया,
आह अभागे देश ! सभी कुछ
खोकर तू ने क्या पाया ।

लेकिन उनको निराशा नहीं, क्योंकि आज कण कण में बापू की मूर्ति रमी है, कोटि कोटि जन के मन में उसी की ज्योति छिपी है । अमर प्रकाश पुंज बनकर वह अंबर और अवनी में छा गया है । इसलिये कवि ने लोगों को सत्य का धारण करके अहिंसा के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है । गाँधीजी ने जो कहा उसी की तिल तिल पूर्ति करने का अनुरोध भी उन्होंने किया है । बापू के अभाव में देश को हिम्मत न हारने का उद्बोधन भी उन्होंने दिया है ।

साम्प्रदायिकता का विरोध

सोहनलाल जी को अपनी कविताओं में साम्प्रदायिक भेद-भावना का विरोध करते दिखाई पड़ता है । उनकी दृष्टि में मन्दिर, मस्जि़द, मठ और विहार सभी हमारे गौरव और गरिमा के प्रतीक है। हमको अपने गौरव को पहचानना है । साम्प्रदायिक भावना तो अंग्रेज़ों का षड्यंत्र था । हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी भाई-भाई है । आपस में लड़नेवाले हिन्दु और मुसलमान को सम्बोधित करते हुए कवि ने कहा कि मन्दिर और मस्ज़िद से ऊपर अपने को पहचानना आवश्यक है । गीता और कुरान से ऊपर हमें अपने को पहचानना चाहिए ।

साम्प्रदायिक भेद भावना के स्थान पर कवि ने एकता का सन्देश दिया है ।

1. चेतना, पृ.3।

देश प्रेम

भारत की पुण्य भूमि पर गर्व करते हुए सोहनलालजी ने इस प्रकार लिखा -

कहाँ संसार में ऐसी
धरा जो उर्वरा इतनी
ललचती शत्रु की आँखें
कि यह हो सम्पदा मेरी[1] ।

सीमान्त के पहरुए, देश के सिपाही से कवि ने माँ के मुकुट हिमालय को कभी झुकने नहीं देने का अनुरोध किया है । एक देश-प्रेमी कवि ही ऐसा कह सकता है कि -

निज संस्कृति निज जाति न भूलो,
निज पौरुष निज ख्याति न भूलो[2] ।

हिमालय भारत की भौगोलिक सीमा मात्र नहीं है । हिमालय की कल्पना में भारतीय संस्कृति की आत्मा निहित है । जवाहर की प्रदीप्ति से चमकनेवाले हिमालय की छवि अनंत है । उसके दर्शन केलिये देश और विदेश उत्सुकता से खडे रहते हैं । कवि ने हमारे अभिमान के प्रतीक हिमालय का जयगान करते हुए लिखा है -

----

1. मुक्तिगन्धा, पृ.73
2. वही, पृ.66

है हिमालय आज उन्नत,
देख निज गौरव समुन्नत[1] ।

देश के नव-निर्माण की चेतना

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश में एक नवीन चेतना आई है । मुरदा प्राणों में फिर नवीन तरुणाई छाई है ।

जन जन में, जनपद जनपद में
आज नया जीवन जागा,
नया देश निर्माण हो रहा
ध्वंस कहीं उठकर भागा
आज नया मानव उठता है
लेकर जागृत हुंकारें[2] ।

नवयुग के नव भारत के निर्माण करने केलिये नेताओं को सिंहासन का मोह छोड़कर जनता का साथी बनना चाहिए । देश के नवनिर्माण की चेतना सोहनलाल जी की कविताओं में सर्वत्र देखी जा सकती है ।

भारतीय जनता के मन में स्वतंत्र भारत के प्रति सुनहले सपने थे । जैसे -

---

1. पूजागीत, पृ.111
2. मुक्तिगन्धा, पृ.7

स्नेह के दीपक गृह गृह जलें ।
खिला रहे अपने सुख का शीश,
तम के घन न छलें ।
गृह गृह में हो मंगल उत्सव
x x x
दुरित शमित दुर्भाव दुराशा,
स्नेह आर्द्र हो अपनी भाषा
ललचे स्वर्ग देख धरती को
अमृत चषक ढलें[1] ।

लेकिन स्वतंत्रता के बाद देश में हुई खास परिस्थितियों के कारण यह सपना टूट गया तो जनता निराशा के अन्धकार में डूब गयी । उन्होंने सोचा कि -

क्या आज़ादी यह वही देखते थे अब तक,
जिसका हम आँखों में प्यारा प्यारा सपना ।
xx xx xx
आज़ादी तो आयी, बरबादी गयी नहीं,
पूरी न हुई वह आशा जो मन में पूजी[2] ।

इस अवसर पर कवि ने जनता को कर्मण्यता का सन्देश देकर देश के नवनिर्माण केलिये प्रेरणा दी ।

---

1. चेतना, पृ.67
2. मुक्तिगन्धा, पृ.39-40

सांस्कृतिक चेतना

"अशोक के प्रति", "पेशवा शिवा" जैसी कविताओं में सोहनलाल जी ने भारत की प्राचीन संस्कृति के गौरव का स्मरण किया है। वर्तमान युग में होनेवाले सांस्कृतिक ह्रास पर उन्होंने दुख प्रकट किया है। आज दया और धर्म हमारा रक्षक न बन सके, वे केवल मन का दंभ बने। सत्य शरणार्थी बन गया है। हमें अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति को पहचानना है। हमें अपने को जानना चाहिए। श्रुतियां और स्मृतियां हमारी प्राचीन संस्कृतिके अमृत कुंभ हैं। भारत का पथ सत्य और न्याय के पुराने आदर्शों से बना हुआ है जिसके आगे सभी युग सभी जमाना नतमस्तक हैं।

आज हमारे समाज में "विजय उसी की जिसमें बल है" की नीति चल रही है। मानव आज दानव बन गया है। देश देश में भय छा गया है। ऐसे समाज को गीता के सन्देश की याद दिलाते हुए कवि ने अनुरोध किया है कि हमारे मन में प्रेम की भावना होनी चाहिए। उन्होंने समाज को सत्य, अहिंसा और एकता का सन्देश दिया -

एकता सब धर्मों का धर्म,
अहिंसा, हो जीवन का मर्म
सत्य की सेवा हो सत्कर्म
विश्व में हो मंगल कल्याण।[1]

---

1. युगागीत, पृ.81

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि की लोकमंगल की भावना भी निहित है ।

सोहनलाल जी ने तुलसी, कबीर भारतेन्दु आदि कवियों, बुद्ध, शंकर आदि वेदान्तियों, काशी जैसे पुण्य स्थानों, गंगा जैसी पुण्य नदियों एवं भारत के प्राचीन दर्शन, पुराण आदि की महत्ता अपनी कविताओं में घोषित की है । अपनी महान संस्कृति का उद्घोष करते हुए कवि ने जनता के मन में आत्मगौरव जगाने का प्रयत्न किया है ।

रूढियों का विरोध

भारत की प्राचीन परम्परा से प्रेम करने के साथ ही सोहनलालजी ने रूढियों का विरोध भी किया है ।

गिरे युग का शीर्ण वल्कल
रूढियों का छत्र श्यामल,
खिलें सुख के सुमन सुन्दर,
बह मधुर मलयज बहा कि ।[1]

युद्ध एवं शान्ति

आज दुनिया में लेखनी नहीं, तलवार राज करती है । इसलिये हमें खबरदार रहना चाहिए । द्विवेदीजी की दृष्टि में आज युद्ध बन्द नहीं है, यह केवल विश्राम है । कवि विश्व-शांति चाहते हैं । उन्होंने शास्त्रीजी को शान्ति चक्र का धर्म प्रवर्तक और शांति का पुरोधा कहा -

---

1. पूजागीत पृ.९

शांति खोजने गया ।
शांति की गोद में सो गया,
मरते मरते विश्वशांति
के बीज बो गया ।

x x x

सार्थक वह बलिदान
तभी जब युद्ध न होगा ।[1]

सत्य और अहिंसा

सत्य और अहिंसा गांधी विचारधारा की धुरी है । गांधीजी का लक्ष्य सत्य और अहिंसा के माध्यम से भारत में रामराज्य को स्थापित करना था ।

गांधीजी के मतानुसार अहिंसा एक आंतरिक तत्व है । बाहरी हिंसा से कोई भी पूर्णत: मुक्त नहीं रह सकता । गांधीजी सत्य और अहिंसा के चक्रों में अपना रथ सजाकर, आत्मा की उज्ज्वल धारा लेकर, अहर्निशि आगे बढा[2] ।

अहिंसा के बल पर ही भारत स्वतंत्र हुआ । द्विवेदी जी की दृष्टि में राष्ट्र को राष्ट्रपिता की सबसे बडी देन अहिंसा थी । सोहनलाल जी की कविताओं में गांधी जी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट होता है । उन्होंने सत्य को सदा साथ लेने और पशुबल को त्यागकर आत्मबल से विजय प्राप्त करने को कहा -

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.95
2. चेतना, पृ.9

चलो सत्य को लेकर सम्मुख
दुख भी चमक उठेंगे बन सुख[1]।

भविष्य के प्रति आस्था

आज क्षितिज में अन्धकार घिर रहा है। लेकिन सुखद भविष्य के प्रति कवि आशावादी है -

युग-युग घेरे रहा गगन बन
हमको सघन अन्धेरा
था सन्देह न कभी उदित
होगा फिर सुखद सवेरा[2]।

जीवन-दर्शन

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में गाँधीजी का आगमन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। उनका व्यक्तित्व विराट था। वे मानवता, त्याग, तपश्चर्या और कर्मठता के प्रतीक थे। उनके जीवन और उनकी विचार धारायें भारतीय जीवन और साहित्य को प्रभावित करती आयी थी। नेहरू जी ने यह विचार प्रकट किया है कि गाँधीजी ने लाखों भारतीयों को विविध परिमाण में प्रभावित किया। कुछ लोगों ने उनके प्रभाव से अपने जीवन के समूचे ढाँचे बदल दिये, दूसरे अंशतः प्रभावित हुए या वह प्रभाव क्षतिग्रस्त हो गया और फिर भी कुछ अंश कदापि प्रभावहीन नहीं हुआ[3]।

---

1. मुक्तिगन्धा, पृ.56
2. चेतना, पृ.8
3. Discovery of India, p.300

"तुलसी की दृष्टि जैसे अपने राम पर स्थिर हो गयी वैसे ही सोहनलाल जी की दृष्टि अपने "राम" पर स्थिर हो गई थी। गाँधीजी को लक्ष्य में रखकर ही कवि ने राष्ट्र पूजन की समस्त सामग्री अंतर के थाल में सजाने का सफल प्रयास किया है[1]।

सोहनलाल जी ने "सबरमती के संत" के अनंत गौरव का गीत गाया। वे गाँधी विचारधारा के सशक्त समर्थक थे।

निष्कर्ष

सोहनलाल जी ने अपनी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में स्वतंत्र भारत की समस्त समस्याओं पर विचार किया है। समाज में पायी जानेवाली गरीबी, भूख, महँगाई, बेकारी भ्रष्टाचार आदि समस्याओं को उन्होंने अपनीकविताओं में अभिव्यक्ति दी है। "युगबोध अभिशाप", "दिल्ली, दरबार", "यह कैसा जनतंत्र" "झण्डे फहरानेवाले", "गाँवों में" जैसी कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है। किसानों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति रही। उनके प्रति किये जानेवाले अत्याचारों को देखकर कवि क्षोभ से जल उठे।

वर्तमान राजनीति से कवि असंतुष्ट थे। इस पर उन्होंने काफी व्यंग्य भी किया है। साम्प्रदायिक भेद भावना के स्थान पर उन्होंने एकता को प्रतिष्ठित किया। "अक्षत चन्दन", "नोआखाली में गाँधी", "साम-गान" जैसी कविताओं में उन्होंने एकता का सन्देश दिया है। गाँधी जी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के साथ ही उनके बताये हुए मार्ग पर चलने केलिए

---

1. वियोगी हरि - जय भारत जय - भूमिका

कवि ने जनता और नेताओं का आह्वान भी किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के उपासक होने पर भी उन्होंने रूढ़ियों का विरोध भी किया है। वे विश्वशांति की कामना करते थे। भविष्य के प्रति आस्था का स्वर उनकी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में मुखरित होता है। उन्होंने जन जीवन के अधिक निकट आकर देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करके भारत के नवनिर्माण का सन्देश दिया है।

बच्चन

बच्चन जी स्वातंत्र्योत्तर युग के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उन्होंने जनता के विचारों को वाणी देकर एक युग निर्माता जैसा कार्य किया है। ऐतिहासिक घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण उनकी कविताओं में मिलता है। उनकी विवेच्य युगीन रचनाओं में परिवेश का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। राष्ट्रीय और सामाजिक स्तरों पर जो घटनायें घटी एवं जो परिवर्तन आये वे सभी बच्चन की कविताओं का विषय बना है। और इस प्रकार उन्होंने जीवन की स्वस्थ और सहज धरातल पर कविता की प्रतिष्ठा की।

बच्चन जी की "खादी के फूल", "सूत की माला", "त्रिभंगिमा", "आरतीऔर अंगारे", "धार के इधर उधर", "बुद्ध और नाचघर", "बहुत दिन बीते", "चार खेमे चौंसठ खूंटे", "दो चट्टाने", "कटती प्रतिभाओं की आवाज़", "उभरते प्रतिमानों के रूप" आदि रचनाओं का अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है।

सामाजिक चेतना

बच्चन जी अपनी प्रारंभिक रचनाओं में प्रणय, मस्ती एवं यौवन के प्रति समर्पित दिखाई पड़ते हैं। सन् 1950 तक आते आते उन्होंने यह पहचान लिया कि

"अब अपनी सीमा में बंधकर
देशकाल से बचना दुष्कर[1]।" है। इसलिये वे जन जीवन के निकट आये। उनकी दृष्टि में "काव्य का काम है सामयिक को भी छूकर शाश्वत बनाना, कम से कम चिरजीवि बनाना। सामयिक स्वयं भी अपनी बाहरी रूप में अल्पस्थायी भले ही हो, पर अपनी भावना में वह अन्य रूपों में प्रतिध्वनित होता रहता है[2]।"

स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों का नग्न चित्र उनकी कविताओं में मिलेगा। समाज ऊँच-नीच, छुआछूत, भेद भाव से पीड़ित है। मनुष्य और मनुष्य में यहाँ फरक होता है। सम्प्रदायवाद ने ज़ोर पकड़ा है। साम्प्रदायिकता की पिशाचिका स्वदेश पर चढ़ी है। वर्ण-वैषम्य ने देश को नरक बना दिया है।

इन परिस्थितियों से परिचित कवि ने तिमिरावृत युग का चित्र इस प्रकार खींचा है -

---

1. त्रिभंगिमा, पृ. 113
2. धार के इधर उधर - भूमिका

अब युग मुखड़ों, बौनों, नकलची वानरों का
आ गया है,
शत्रु चारों ओर से ललकारते हैं,
बीच, अपने भाग-टुकड़ों को
मुसलमाल उछल-कूद मची हुई है,
त्याग तप की हड्डियाँ भुनकर समाप्त प्राय
भ्रष्टाचार, हथकंडे, खुशामद, बंदरम पकी
की कमाई खा रही है[1]।

इसलिये बच्चन जी ने देश के कवियों तथा अन्य साहित्यकारों से जीवन का यथार्थ चित्रण करने केलिए प्रेरणा दी है -

करो विचित्र इंद्रधनु-विभा परे,
तजो सुरम्य हस्ति-दंत धरहरे,
न अब नखत निहारकर निहाल हो,
न आसमान देखते रहो खड़े
तुम्हें ज़मीन
देश की
पुकारती[2]।

1· चार खेमे चौसठ खूँटे, पृ·122

2· धार के इधर उधर, पृ·83-84

साम्प्रदायिकता का विरोध

साम्प्रदायिक भेद-भावना को छोड़कर एक हो जाने का सन्देश बच्चन जी की कविताओं में मिलता है । अपने साम्राज्यवाद के रथ को ज़ोर से चलाने और उनकी बाग डोर को मजबूत बनाने केलिये अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान को कुचला दिया, हिन्दु और मुसलमान के बीच साम्प्रदायिकता का बीज बोया । लेकिन अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी स्थिति ज़ारी रही तो यह अपनी कमज़ोरी ही है । बच्चन ने जाति भेद के स्थान पर मानवता और जातीय एकता का सन्देश दिया है -

> जिन्दगी और ज़माने की है साफ पुकार,
> बेकार है तुम्हारा होना हिन्दु,
> बेकार है तुम्हारा होना मुसलमान,
> अगर न रह सके तुम इन्सान का स्वाभिमान,
> अगर न रच सके तुम इन्सान केलिए
> सुख की जमीन,
> स्नेह का आसमान ।[1]

समसामयिक घटनाओं के प्रति बच्चन जी सदा जागरूक थे । हमारे देश में आज जाति-भेद और भाई भतीजावाद ने ज़ोर पकडा है । एक सम्प्रदायवाले दूसरे सम्प्रदायवाले की मूर्तियाँ तोडने में उत्सुक दिखाई पडते हैं । उनकी "विकृत मूर्तियाँ" कविता इस बात पर व्यंग्य करनेवाली है ।

---

1. बुद्ध और नाचघर, पृ. 46

हमको जाति-भेद की कुहेलिका को काटना चाहिए, साम्प्रदायिकता की पिशाचिका को भगाना चाहिए, वर्ग भेद के नरक को मिटाना चाहिए । ऐसा नहीं करें तो देश की स्वतंत्रता एक मरीचिका बन जायगी । इसलिये बच्चन जी ने धार्मिक एकता पर ज़ोर दिया -

हिन्दू अपने देवालय में
राम-रमा पर फूल चढाता,
मुस्लिम मस्जिद के आँगन में
बैठ ख़ुदा को शीश झुकाता,
ईसाई भजता ईसा को
गाता सिक्ख गुरू की बानी,
किंतु सभी के मन-मन्दिर की
एक देवता, भारतमाता !
स्वतंत्रता के इस सत्युग में
यही हमारा नया धरम है,
नया करम है[1] ।

जातीय एकता के सन्देश में बच्चन का देश-प्रेम चरम सीमा पर पहुँचा है ।

---

1. धार के इधर - उधर, पृ.61

रूढि-विरोध

भारत की प्राचीन परम्परा के प्रति बच्चन के मन में प्रेम था । पुराने आदर्शों पर नया युग हँसता है । लेकिन वे पुराने आदर्श मूल्यवान हैं । लेकिन परम्परा के गलित अंशों को तोडना ही चाहिए -

बोझ अच्छा है, मुसाफिर
की अगर वह चल सके,
पर बुरा है जो दबाकर
पाँव बाँधे, चाल बाँधे,
गर्व क्या प्राचीन का है ?
मोह क्या है रूढियों का ?
खोलकर गट्ठर कहीं पर एक क्षण को देख-गुन ।
यह समय का भार फेंक उतार, फिर से फूल चुन[1] ।

बच्चनजी ने रूढि को प्रगति के मार्ग की बाधा मानी है । इसलिये उन्हें तोडना अनिवार्य है ।

स्वतंत्रता का स्वागत

स्वतंत्रता दिवस पर बच्चन ने सर्वप्रथम बापू का स्मरण किया क्योंकि उन्होंने मुर्दों में नव्य जीवन का नया उन्मेष भर दिया । स्वतंत्रता दिवस पर कवि ने बापू, क्रांति के वीर, तिरंगे निशान, वन्देमातरम का गान आदि का स्मरण करना उचित समझा । स्वतंत्रता केलिये

---

1. त्रिभंगिमा, पृ.77-78

असंख्य युवकों की जवानी जेल की दीवार खा गयी । अनेकों की गर्दनों ने फाँसियों से खिलवार किया । बहुत लोगों के रक्त से संगीन की स्वरधार रंगी गई । असंख्य देश प्रेमियों की छातियों ने गोलियों की बौछार सही । इन सबको याद करते हुए कवि ने अभिमान के साथ कहा कि हमारी आज़ादी इंग्लैंड का वरदान नहीं[1] ।

लेकिन खेद की बात है कि देश में विरोधी शक्तियाँ सजग रहती है । इनसान विकराल पशु बन गया है । स्वतंत्रता के साथ हमारे ऊपर पडे नये दायित्व के प्रति कवि ने जनता को उद्बोधित किया है -

किंतु उसके साथ जिम्मेदारियों का शीश पर है भार,
दीप-झंडों के प्रदर्शन और जय-जयकार के दिन चार
किन्तु जाँचेगा तुझे फिर सौ समस्या से भरा संसार ।

हमारी आज़ादी विश्व को नया सन्देश देगी यही कवि का विश्वास था । आज़ादी के संरक्षण करने केलिये बच्चन ने युवा पीढी का आह्वान किया है -

स्वतंत्रता-लता अभी मृदुल नवल,
समूल पशु इसे कहीं न ले निगल,
कि हो हज़ार वर्ष की रगड विफल,
युवक सचेत
चौकसी
किए रहो[2] ।

---

1. धार के इधर उधर, पृ.52
2. वही, पृ.78

उपर्युक्त कविता में कवि ने स्वतंत्रता को लता से और विरोधी परिस्थिति को पशु से उपमित किया है । बच्चन ने चिरप्रतीक्षित स्वतंत्रता का स्वागत करके नयी जिम्मेदारियों, उत्तरदायित्व और गौरव की ओर संकेत किया है । "स्वतंत्रता दिवस", "आज़ाद हिन्दुस्तान का आह्वान" "आज़ादी का गीत", "ब्रह्मदेश की स्वतंत्रता पर", "देश के युवकों से" आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कवितायें हैं ।

देश-विभाजन

देश का विभाजन और तज्जन्य रक्तपात, दंगे और मारकाट केलिये बच्चन ने ब्रिटिश कूटनीति को दोषी कहा ।

स्वतंत्रता-प्रभात क्या यही-यही !
कि रक्त से उषा भिगो रही मही,
कि त्राहि-त्राहि शब्द से गगन जगा,
जगी घृणा
ममत्व-प्रेम
सो गया ।[1]

प्रस्तुत कविता इस बात का प्रमाण देती है कि देश की घटनाओं से कवि पूर्ण रूप से परिचित थे ।

---

1. धार के इधर उधर, पृ. 73-74

देश पर आक्रमण

बच्चन युद्ध का विरोध करने वाले कवि थे। लेकिन जब चीन ने देश पर आक्रमणकिया तो उन्होंने चीन के विरूद्ध युद्ध करने केलिये सैनिकों को प्रेरणा दी है -

समस्त शक्ति युद्ध में उँडेल दे,
गनीम के पहाड पार ठेल दे,
पहाड पंथ रोकता, ढकेल दे,
बने नवीन
शौर्य की
परम्परा[1]।

"दो चट्टानें" संग्रह की "सूर समर करनी करहिं" "बहुरि बंदि खलगन मति भाएं," "उधरहिं अंत न होइ निबाहू" आदि कवितायें भी इसी प्रकार चीनी आक्रमण के समय युद्ध केलिये जवानों को प्रेरणा देनेवाली कवितायें हैं। इनमें बच्चन ने भारत-चीन युद्ध को राम-रावण युद्ध कहा है।

"देश पर आक्रमण" कविता में बच्चन ने काश्मीर और हैदराबाद की समस्याओं पर विचार किया है।

---

1. धार के इधर उधर, पृ.77

राजनीतिक चेतना

बच्चन जी ने राजनीति पर काफी विचार किया है। उनकेलिये हमारी आज़ादी "उस बच्चे के समान है जिसकी माँ उसको जन्मदान करते ही देह का मोह छोड कर स्वर्गप्रयाण कर गई[1]। बापू के प्रति उन्होंने अपना आदर प्रकटकिया है। उनका बलिदान और उसकी हत्या का स्मरण किया है। स्वतंत्रता संग्राम के असंख्य बलिदानियों के सामने कवि ने श्रद्धा से शीश झुकाया है। आज़ादी की दूसरी वर्षगाँठ पर पीछे मुडकर देखने पर कवि को मालूम हुआ कि हम अपने लक्ष्य से बहुत दूर है। इसलिये कवि ने देश वासियों को याद दिलाया है कि

कटीं बेडियाँ औ' हथकडियाँ, हर्ष मनाओ, मंगल गाओ
किन्तु यहाँ पर लक्ष्य नहीं है, आगे पथ पर पाँव बढाओ,
आज़ादी वह मूर्ति नहीं है जो बैठी रहती मंदिर में,
उसकी पूजा करनी है तो नक्षत्रों से होड लगाओ।
हल्का फूल नहीं आज़ादी, वह है भारी जिम्मेदारी
उसे उठाने को कंधों के, भुजदंडों के, बल कोतोलो[2]।

देश के नेताओं से कवि की प्रार्थना यह है कि केवल दिल्ली के उद्धार करने से देश का विकास नहीं होगा। भारतमाता की लाज रखने केलिये नेताओं को प्रयत्न करना चाहिये। इस बात को व्यंग्य रूप से कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है -

---

1. धार के इधर उधर, पृ.90-92
2. वही, पृ.98

जो कि हमारी जीवित संस्कृति परम्परा में
नारी के गौरव के
सबसे शीर्ष चिह्न हैं,
जिनकी लाज बचाने को,
इज्जत रखने को,
मूल्य बडा से बडा
चुकाने को हम उद्यत ।
§फिर चालीस कोटि की माँ की
भव्य लटा की§

"मजूर", "गणतंत्र दिवस", "महागर्दभ" आदि राजनीतिक व्यंग्य कवितायें हैं जिनमें बच्चन ने वर्तमान राजनीति पर आलोचना की है । एक ओर दिल्ली में धूम-धाम से गणतंत्र दिवस मनाया जा रहा है । दूसरी ओर देश की आम जनता जो गाँवों में रहती है, निर्धन है, अपढ है । गणतंत्र दिवस कविता कवि ने इस बात को स्पष्ट करके नेताओं के कान खुलवाने केलिये लिखी है । भारत की राजधानी में जो गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस आदि मनाये जा रहे हैं उनकी लहर ग्रामवासियों तक नहीं पहुँचती है । इस पर व्यंग्य करके बच्चन जी ने लिखा -

बडी किरपा की कि जीते जी
हमें बैकुंठ का दर्शन कराया
हमें नरक निवासियों को[2] ।

1· त्रिभंगिमा, पृ·181-182

2· वही, पृ·215

'शहीद की माँ' कविता में कवि ने भारत माता की स्वतंत्रता के लिये जीवार्पण किये एक देश भक्त का जनाजा निकलने का वर्णन किया है। शहीद का शरीर तिरंगे में लिपटा था, हज़ारों ने नारा लगाया था और उस शोर में शहीद की माँ का रोदन डूब गया था। उसके आँसुओं की लड़ी फूल, खील, बताशों की झड़ी में छिप गई थी। "तेरा नाम सोने के अक्षरों में लिखा जायेगा"- जनता चिल्लाई थी। गली किसी गर्व से दिप गयी थी। तीन बरस बाद इसी घर से शहीद की माँ का जनाजा निकला। किसी ने नारा नहीं लगाया, उसका शरीर तिरंगे में लिपटा नहीं। गली किसी राहत से छुई मुई थी। कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपना व्यंग्य छिपाया है -

तिरंगे में लिपटा नहीं
(क्योंकि वह खास-खास
लोगों केलिये विहित है)
चर्चा है, बुढ़िया बेसहारा थी
जीवन के कष्टों से मुक्त हुई[1]।"

वोट पाना ही आज के नेताओं का एकमात्र लक्ष्य दिखाई पड़ता है। इस बात पर बच्चन का व्यंग्य इस प्रकार है -

आसन भी है, शासन भी है
अफसर, दफ्तर, फाइल, नोट
पुलिस, कचहरी, पलटन सलटन
सबसे ताकतवर है वोट[2]।

---

1. चार खेमे चौंसठ खूंटे, पृ.119-120
2. उभरते प्रतिमानों के रूप, पृ.78-79

'प्रजातंत्र के मरीज का सबसे बडा रोग है बडबडाना, सबसे बडी औषधि है शब्द'[1], कहकर नेताओं की भाषणप्रियता पर कवि ने व्यंग्य किया है ।

सिर्फ योजनायें बनानेवाले नेताओं की प्रदर्शन प्रियता पर भी बच्चन जी ने व्यंग्य किया है । जैसे "खजूर" कविता में उन्होंने लिखा -

भूमि आज खजूरधर्मी हो गई है,
कहीं कुछ बीज, लगाओ -
बहुत कुछ बीजा, लगाया जा रहा है -
समय पाकर वह
प्रलम्ब खजूर में ही बदल जाता
भूमि भूला, गगन से नाता बनाता[2] ।"

'प्रजातंत्र और परिवारतंत्र,' 'कलयुग का कोरस,' 'राष्ट्रपिता के समक्ष,' '26·1·63,' 'वह भी देखा यह भी देखा' आदि कवितायें वर्तमान राजनीति, नेताओं की भाषण प्रियता, अवसरवादिता और तथाकथित गांधीवादियों पर व्यंग्य करनेवाली है । देश को उन्नति की ओर अग्रसर कराने केलिये कवि ने देश के नेताओं को प्रेरणा भी दी है ।

देश-प्रेम

बच्चन की देश-भक्ति का उत्तम उदाहरण उनकी कविताओं में मिलेगा । उन्होंने राष्ट्र-ध्वजा का वन्दन किया, और यह विश्वास प्रकट किया है कि -

---

1· उभरते प्रतिमानों के रूप, पृ·81-82
2· त्रिभंगिमा, पृ·219-220

न साम-दाम के समक्ष यह रुकी,
न दंड-भेद के समक्ष यह झुकी,
सगर्व आज शत्रु-शीश पर ठुकी,
निडर ध्वजा
हरी, सफेद
केसरी ।[1]

बच्चन ने युवा पीढी को चुनौतियों को स्वीकार करने की प्रेरणा, स्वदेश केलिये मर मिटने की प्रेरणा दी है, जातीय एकता का सन्देश दिया है, भारत की संस्कृति पर गर्व किया । वेद और उपनिषद से लेकर भारत के गौरवमय अतीत पर कवि को गौरव का अनुभव करते दिखाई पडता है । गाँव, ग्रामीण सभ्यता और ग्रामीण जीवन के प्रति कवि का झुकाव था । राम, कृष्ण, गौतम, गाँधी की इस धरती के प्रति बच्चन के मन में अगाध प्रेम था ।

बच्चन की कविताओं में देश के नव निर्माण की जो आकांक्षा दिखाई पडती है, वह उनकी देश भक्ति का उत्तम उदाहरण है । देश के नव निर्माण केलिये उन्होंने युवा पीढी का आह्वान किया है -

उठो जो टूटा हुआ है उसे जोडो
एकता के सूत्र अब भी कम नहीं है,
जो फटा उसको मिलाओ,
मेल की ताकत बडी है,
छिद्र देखो, भरो
छिद्रान्वेष छोडो;

1· धार के इधर उधर, पृ·71-72

कार्य तत्परकर स्पर्धा करो
पर विद्वेष छोडो;
जो बिछा, बिखरा समेटो,
किन्तु जो बेकार उससे आँख मोडो ।
xx x xx
भर उमंगों से करो अभियान,
सागर चीरते आगे बढो, आगे बढो[1] ।

"बच्चन अपनी पीढी के एकमात्र कवि हैं जिनकी दृष्टि नयी पीढियों की यात्रा की ओर बराबर लगी हुई है और जो उन्हें आर्शीर्वाद देने के स्थान पर उनका सहयात्री बनना अधिक पसन्द करते हैं[2]।" उनकी कवितायें इस तथ्य से खूब साक्षात्कार कराती है । उन्होंने युवा पीढी को संघर्षों का सामना करने की, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा दी है, समय की चुनौतियों को स्वीकार करने केलिये युवा पीढी से प्रार्थना की है, उन्हें निज शक्ति से परिचित कराया है, उनको अपने उत्तरदायित्व के प्रति प्रेरित किया है, एक नये संसार का स्वागत करने केलिये युवा पीढी का आह्वान किया है । इनको बच्चन की देश भक्ति का ज्वलन्त प्रमाण कहा जा सकता है ।

कर्म का सन्देश

बच्चन जी ने निष्क्रियता और आलस्य की कटु आलोचना की है, भाग्यवाद की निन्दा की है और कर्म का सन्देश दिया है -

---

1· चार खेमे चौंसठ खूंटे, पृ·134

2· रामदरश मिश्र - हिन्दी कविता:आधुनिक आयाम, पृ·47-48

भाग्य लेटे का सदा लेटा रहा है
जो खडा है भाग्य उसका उठ खडा है
चल पडा जो भाग्य उसका चल पडा है[1]।

xx x xx

कर्म, प्रतिक्षण कर्म, का वरदान या अभिशाप
तुम हो जन्म के ही साथ लाए,
मुक्ति अंतिम श्वास तक मिलती नहीं है[2]।

पूँजीवाद का विरोध

पूँजीपति शोषकों पर बच्चन जी ने तीखी वाणी में व्यंग्य किया है । जैसे -

जोंक बनकर
एक तरु के रक्त-रस को
चूस तुम पोषित हुई हो ।
पीत होकर पत्तियाँ इसकी गई झड
और डालें हुई सूनी, रुग्ण-रूखी,
किंतु फिर भी
भूमि से जल खींच
तुमको वह पिलाता, पालता रखता अधर में,
प्रकृति की यह विवशता की उदारता[3]।

---

1. चार खेमे चौंसठ खूँटे, पृ.134
2. वही, पृ.133
3. त्रिभंगिमा, पृ.170-171

पूँजीपतियों का विरोध और शोषण का अंत करने की तीव्र अभिलाषा इन पंक्तियों में देखी जा सकती है । पूँजीपति से हमें कौन बचाये ? कवि की राय में हमें स्वयं उनकी चंगुल से बचना चाहिए । श्रम और फल के बीच खडी दीवार को हटाना चाहिए । उस दीवार को गिराना चाहिए । जो जोते, बोए उसी को खाने का अधिकार भी है । इसलिये शोषकों का अंत करने केलिये शोषित जनता को आगे बढना चाहिए । बच्चन जी ने अपनी "अमरबेली", "भू-पुत्रों की चुनौती" आदि कविताओं में इन्हीं विचारों को प्रकट किया है ।

शोषित जनता के प्रति कवि ने ममत्व और सहानुभूति भी प्रकट की है । "उन्नीस एक छयासठ" कविता में शास्त्रीजी की मृत्यु की घटना के माध्यम से मज़दूर स्त्रियों के दयनीय जीवन को चित्रित किया है ।

सांस्कृतिक चेतना

वेद और उपनिषद् से लेकर भारत के गौरवमय अतीत पर बच्चन जी ने गर्व किया है । हमारी संस्कृति का मूल उस अज्ञात अतीत में है । अतीत के प्रति कवि के मन में जो गौरवपूर्ण प्रेम था, निम्नलिखित कविता में वह सुवर्ण रेखा बनकर चमकता है -

ये कीर्ति-उज्ज्वल
पूज्य तेरे पूर्वजों की
अस्थियाँ हैं ।
आज भी उनके
पराक्रमपूर्ण कन्धों का

महाभारत
लिखा युग के जुए पर ।
आज भी ये अस्थियाँ
मुर्दा नहीं हैं[1] ।

लेकिन आधुनिक मनुष्य यह पैतृक सम्पत्ति भूल गये हैं । उनका जीवन सूखी सरिता के समान है । आर्य संस्कृति की महत्ता, वेदोपनिषद् की उत्कृष्टता, मानवता की भावना, शांति का सन्देश आदि बच्चन की कविताओं में मिलेगी । राम, कृष्ण, गौतम और गाँधी की इस धरती के प्रति कवि के मन में अगाध प्रेम था । सत्य और अहिंसा के आदर्शों की ओर कवि का विशेष झुकाव था । इसलिये कवि ने व्यंग्य किया -

आज सत्य
असह इतना हो गया है
कान में सीसा गला ढलवा सकेंगे
सत्य सुनने को नहीं तैयार होंगे[2] ।"

बच्चन जातीय एकता के पक्षपाती थे, मानवता के प्रबल समर्थक थे । पंचशील और वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धांत में उनका विश्वास था । इस सिद्धांत पर हिन्दु, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, पारसी और सभी बसते है ।

---

1. बुद्ध और नाचघर, पृ. 128
2. चार खेमे चौंसठ खूँटे, पृ. 176

देश-देश की सीमाओं की
दीवारों के घेरे में
एक बसा परिवार, मगर है
झगडा मेरे-तेरे में ।[1]

शांति बसेगी, सुख बरसेगा, पंचशील का व्रत सब लो । आज धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित का जग में किसी को ज्ञान नहीं होता है । मानव जीवन धारा पर बहते जलयान के समान हो गया है । आज भी हमारे समाज में दैत्य और दानव जिन्दा रहे हैं । सनातन मूल्य विघटित हो रहे हैं । मनुजता कुंठित और पराजित हो रही है । आस्थायें टूटती है । विश्वास का दम घुट रहा है । आज रुपया ही हमारा प्यारा है, साथी है, नेता है । "स्वागत-गान", "दानवों का शाप", "अंधा, पर गूँगा - बहरा युग नहीं", "रुपैया" जैसी कविताओं में बच्चन ने इन्हीं विचारों को वाणी दी है ।

बच्चन ने पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण करने का विरोध किया है । उनकी "वर्षा-मंगल" कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना कही जा सकती है । इसमें गोरा बादल अंग्रेजों का प्रतीक है और काला बादल देशी नेताओं का । अंग्रेज चले गये फिर भी पश्चिमी सभ्यता के रंग में भारतीय जनता एवं नेता रंगे हुए हैं । इस पर व्यंग्य करते हुए बच्चन ने लिखा -

---

1. त्रिभंगिमा, पृ. 122-123

गोरा बादल गया नहीं था पच्छिम को,
रंग बदलकर अब भी ऊपर छाया है ।
गोरा बादल चला गया हो तो भी क्या,
काले बादल का सब ढंग उसी का और पराया है[1] ।

धर्म, संस्कृति और सभ्यता पर पर्दा डालकर हिंसा विज्ञान की शक्ति को साथ लेकर विश्व के संहार का षडयंत्र रचने में लगी है । वर्तमान समाज को देखकर कवि को ऐसा लगा कि गांधी का जन्म व्यर्थ हुआ है । भ्रष्टाचार और जुल्म बढा । इस स्थिति को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है -

जुल्म सुना तो तुमने कानों उंगली कर ली,
भ्रष्टाचार दिखा तो आंखों पट्टी धर ली,
चुप्पी साधी, खुलकर खेली गुंडागर्दी
ओ गांधी के बन्दर तीनों लाज हया हो
लाल करो मुँह अपना अपना मार तमाचे[2] ।

आधुनिक युग में मनुष्य मनुष्य से प्रेम नहीं करता है । वर्तमान समाज मनुष्य को पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध रखने केलिये अवसर नहीं देता है । "इनसान और कुत्ते" कविता में "श्वान की यह श्वानियत इनसान की इनसानियत पर व्यंग्य करती" कहकर कवि ने इस पर व्यंग्य किया है । "कवि की आंख पूरी तरह व्यक्ति से समाज पर और समाज से सामाजिकता और मानवता पर टिकी रही है[3] ।"

---

1. चार खेमे चौंसठ खूंटे, पृ.95
2. बहुत दिन बीते, पृ.29
3. रेणु मलहोत्रा - बच्चन का परवर्ती काव्य:एक मूल्यांकन, पृ.157

उन्होंने समाज को प्रेम और एकता का सन्देश दिया -

प्रेम चिरंतन मूल जगत का,
वैर-घृणा भूलों क्षण की,
भूल-चूक लेनी-देनी में
सदा सफलता जीवन की[1]।

कवि की विश्वमानवतावादी दृष्टि और अन्तर्राष्ट्रीय चेतना उनकी कविताओं में मिलेगी । उनकी दृष्टि में -

देश तो क्या, एक दुनिया चाहते हम,
आज बँट-बँटकर मनुज की जाति निर्मम[2]।

धार्मिक चेतना

बच्चन की राय में आधुनिक मनुष्य ने ईश्वर को देवालयों में बन्द कर दिया है और वे अपनी मनमानी करने में निमग्न है । वर्तमान मनुष्य की धार्मिक चेतना कुंठित हो चुकी है । भगवान बुद्ध ने मूर्ति पूजा का विरोध किया था । लेकिन उनके शिष्य उनकी मूर्ति बनाकर उस की पूजा करते हैं । इतना तक है कि लोगों ने उनको बाजार में बिकने का सामान बना दिया है । वर्तमान समाज बुद्ध की मूर्ति रखता है, लेकिन उनके आदर्शों को धूल में मिला दिया है । इस बात पर व्यंग्य करते हुए "बुद्ध और नाचघर" कविता में बच्चन ने लिखा -

---

1· धार के इधर उधर, पृ·105-106

2· वही, पृ·49-50

बुद्ध भगवान,
अमीरों के ड्राइंगरूम,
रईसों के मकान
तुम्हारे चित्र, तुम्हारी मूर्ति से शोभायमान
पर वे हैं तुम्हारे दर्शन से अनभिज्ञ,
तुम्हारे विचारों से अनजान,
सपने में भी उन्हें नहीं आता ध्यान।[1]

प्रस्तुत कविता में बच्चन ने वर्तमान समाज की धार्मिक गिरावट की तीखी आलोचना की है। आधुनिक मनुष्य भगवान के सामने रूप यौवन की ठेल-पेल मच रहा है। इच्छा और वासना खुलकर खेल रही है। गाय और सूअर के गोश्त का कबाब उड़ रहा है। गिलास पर गिलास शराब पी जा रही है। पाइप और सिगरेट पिया जा रहा है। लोग नशे में लाल हो रहे हैं। और "मद्यं शरणं गच्छामि, मांसं शरणं गच्छामि, डांसं शरणं गच्छामि" की आवाज़ हर कण्ठ से निकलती है।

शहरी सभ्यता पर व्यंग्य

वर्तमान नागरिक सभ्यता का मानवता से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह किसी वाद, संस्था, समाज, दल, संघ अथवा मंच के माध्यम से ही मनुष्य को पहचानता है। यहाँ व्यक्ति केवल अपने नगर की सड़क, सड़क की गली और गली के फ्लेटों में केवल अपने फ्लेट का नम्बर याद रखता है। शहरी सभ्यता ने "टार की काली सड़क पर, दौड़ती मोटर से, बसों से, लारियों से मानवों को तुच्छ और बौना" सिद्ध किया है।

---

1. बुद्ध और नाचघर, पृ. 174

महानगरों के दफ्तरों में "वातानुकूलित कमरे में या बिजली के पंखों के तले, भारी परदों से घिरा, कुर्सी-मेज़ के बीच मांस के फर्नीचर के समान" जीवन बिताना कवि ने पसंद नहीं किया है । दफ्तरी जीवन को उन्होंने बन्धन समझा है । उनकी "स्वाध्यायकक्ष में वसंत," "मांस का फर्नीचर" आदि कवितायें दफ्तरीय जीवन का यथार्थ चित्र पेश करनेवाली हैं । जैसे -

सुबह को मुर्गा बनाकर है उठाता,
एक ही रफ्तार-ढर्रे पर घुमाता,
शाम को उल्लू बनाकर छोड देता,
कब मुझे अवकाश देता है
कि बौरे आम में छिपकर कुहकती
कोकिला से धड़कनें दिल की मिलाऊँ,[1] ।

"क्लर्कों के व्यस्त दफ्तरों, उल्लुओं के रात के अड्डों, क्लबों, सिनेमाघरों में, रूप-वाचपटुता-प्रदर्शक पार्टियों में, होटलों में, रेस्तराओं में, भरे हुए शहर का चित्र बच्चन ने खींचा है । भारत भूषण की कविताओं में भी इस प्रकार का चित्र मिलेगा ।

शहरी जीवन ने मनुष्य को व्यक्तिवादी बना दिया है । वह आत्म-सीमित-सभरित, संकीर्ण और अपने आप में ही बन्द है । यह पश्चिमी सभ्यता की देन है । मानव जीवन मशीनों के समान बन गया है । वे इतना आत्मसीमित बन गये हैं कि -

---

1. चार खेमे चौंसठ खूँटे, पृ.140-145

ये किसी से दोस्ती या दुश्मनी
रखते नहीं,
सम्पृक्त अपने से, विरक्त समस्त जग से,
यदि पडोसी के यहाँ हो मौत-चोरी
तो इन्हें लगता पता अखबार पढकर,
हर्ष और विषाद औ' संवेदना के
भिक्षुकों को
ये फटकने ही नहीं देते हृदय की देहरी पर[1] ।"

बच्चन की "नीम के दो पेड", 'इनसान और कुत्ते' जैसी कवितायें नागरिक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करनेवाली है । उनकी "भीतरी काँटा" कविता मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को व्यक्त करनेवाली है ।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली

केवल किताबी पढाई को महत्व देनेवाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य करते हुए बच्चन ने कहा है कि सारी प्रकृति अध्ययन करने योग्य सबसे अच्छी किताब है । बचपन के मुस्कानों में, यौवन की अलहडपन में, मरघट की उदासीनता में, श्रमसीकर के संघर्षण में, थकन की मौन शरण में क्या न ऋचायें, क्या न मन्त्र हैं ? सब कुछ पोथी से ही सीख जायगा, ऐसी बात नहीं । उषा की प्रथम किरण में, चिडियों की प्रथम लहक में, धूप-छाँह की आँखमिचौनी में और रजनी के अलस नयन में भी वर्ण, छन्द और जीवन के अर्थ होते हैं[2] ।

---

1. त्रिभंगिमा, पृ.187-191
2. वही, पृ.82-83

हडताल करना और बसें तोडना आज विद्यार्थियों का लक्ष्य बन गया है ।

विद्यालय के लडकों ने गुस्से में आकर
दो बस तोडी, तीन जला दी,
घडीसाज की "शाप" लूट ली ।[1]"

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बारे में कवि ने अपना मौलिक चिंतन प्रकट किया है ।

जीवन-दर्शन

गाँधीजी के विराट व्यक्तित्व और उनके महान आदर्शों का प्रभाव बच्चन की कविताओं में देखा जा सकता है ।

जन्म, वर्द्धन, जर्जरण और मरण यह प्रकृति के जड नियम हैं । कवि का विश्वास था कि प्रकृति के जड बन्धनों से मुक्त भी कुछ हैं, जो झुका नहीं, खंडित न होता और धराशायी न होता । वे हैं सत्य, अहिंसा त्याग और बलि । लेकिन इन महान मूल्यों का आज विघटन हो रहा है ।

बच्चन का जीवन दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है । धरती के प्रति उनके मन में प्रेम था । उनके विचार में जिसे माटी की महक न भाए, उसे जीने का हक नहीं है । और -

---

1. बहुत दिन बीते, पृ.35

जीवन हँसी भी, जीवन रुदन भी,
जीवन खुशी भी, जीवन घुटन भी,
जो न जीवन की,
जो न जीवन की गत पर आये
उसे नहीं जीने का हक है[1]।

बच्चन ने उसी को देवता माना है जो सामाजिक जीवन में पड़कर संघर्ष करता है। मनुष्य को अपना, अपने मन का मालिक बनना चाहिए, जन जन की हरपीडा का साथी बनना चाहिए। उन्होंने मानव शरीर को "प्रभु-मन्दिर" माना है, और धरती को माता। मृत्यु को उन्होंने अनिवार्य कहा। उनके विचार में "उस दिन की सन्ध्या भी होती जिस दिन का भोर होता है"। जीवन सुख दुख मय होता है।

बच्चन जी का जीवन दर्शन, उनका दार्शनिक विचार "नया वर्ष", 'जाल समेटा' जैसी कविताओं में व्यक्त किया गया है। एक एक पंखुरी सहास खिलती है और उदास झर जाती है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होगा और इसी तरह समय व्यतीत हो जाता है। गया हुआ समय फिर कभी वापस नहीं लौटेगा। गिरा हुआ सुमन कभी नहीं उठेगा। लेकिन गयी निशा दिवस का कपाट खोलता है। गिरा सुमन नवीन बीज बोता है। बच्चन जी आस्था के कवि थे। उनका आत्मविश्वास इस कविता में देखा जा सकता है।

---

1. त्रिभंगिमा, पृ. 34-35

युद्ध एवं शांति

बच्चन का युद्ध विरोधी स्वर उनकी कविताओं में सुनाई पड़ता है। उन्होंने युद्ध त्रस्त संसार को प्रेम का सन्देश दिया है -

दीवाली के दिए जलाकर,
नकली बम, तोपों, बंदूकों को धड़काकर
दुनिया को, मुझको, अपने को
धोखा मत दो।
x x x
अभी समय है,
अंतर्बल से स्नेह स्रवित हो,
इस निर्भय, निष्कंप शिखा से
अपने अपने दीप जला लो[1]।

समन्वय भावना

समन्वय की भावना बच्चन कविता की विशेषता है। पुराने और नये मूल्यों के पुरानी और नयी पीढ़ी के, पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के समन्वय की भावना उनकी कविताओं में पायी जाती है। भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की भावना को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है कि इस भौतिकता के युग में आध्यात्म को अपनी सफाई देनी और क्षमा याचना करनी पड़ती है। वैसे आध्यात्मिकता के संस्कार इस देश में इतने गहरे कर दिये गये हैं कि यहाँ जवानी भी गेरुआ रूमाल रखती है और नास्तिक भी ब्रह्मवादी होता है[2]।"

---

1. त्रिभंगिमा, पृ. 210-211
2. चार खेमे चौंसठ खूंटे - भूमिका

"सिमिफस बरक्स हनुमान" उनकी लम्बी कविता है । इसमें सिमिफस और हनुमान दो विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं - पाश्चात्य और भारतीय । इसमें भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता और महत्व को दिखाया गया है ।

कवि और व्यक्ति के समन्वय की चेष्टा बच्चन कविता की एक प्रमुख विशेषता है। सन् 1955 में एक ओर वे सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ नियुक्त किये गये । दूसरी ओर उनकी "चेतावनी", "महागर्दभ", "गणतंत्र दिवस" जैसी तीखी, व्यंग्य, ओजमयी कवितायें । "दोनों का माध्यम कवि बच्चन, लेकिन दोनों में कितनी दूरी, कितनी असंपृक्तता, कितना मुक्तभाव चिंतन और अभिव्यंजन! फिर सरकारी कर्तव्य भी सफल और कवि कर्म भी समर्थ । कवि और व्यक्ति के समन्वय की यह चेष्टा अनुकरणीय कही जायगी ।"[1]

हृदय और बुद्धि का समन्वय, विज्ञान और प्रेम का समन्वय, कविता के सत्य और विज्ञान के सत्य का समन्वय भी उनकी कविताओं में मिलेगा ।

मैं बहुत भटका, भटकना है उन्हें भी,
देह, प्राणों की, हृदय की, बुद्धि की सब
हलचलों में प्यार की ही खोज होती ।
प्यार से आगे नहीं कुछ भी कहीं है ।
दो समा सकते नहीं है जिस जगह पर
एक हो संसार सारा मिल सकेगा,

---

1. जीवन प्रकाश जोशी - बच्चन व्यक्तित्व और कवित्व, पृ. 78

आज नभ को नापते विज्ञान को
मेरे निमंत्रण प्रेम की सँकरी गली में[1]।

आलोच्य काल में बच्चन के अतिरिक्त पंत की कविताओं में इस समन्वय की भावना देखी जा सकती है ।

भविष्य के प्रति आस्था

बच्चन आस्था के कवि थे । उनकी कविताओं में अतीत के प्रति उत्कट प्रेम, वर्तमान के प्रति सजगता एवं भविष्य के प्रति आस्था होती है । अन्धकारमय युग में भी आशा की किरण प्रस्फुटित होती है । कवि का कहना है -

मृत्तिका की सर्जना-संजीवनी में
है बहुत विश्वास मुझको
वह नहीं बेकार होकर बैठती है
एक पल को,
फिर उठेगी[2]।

परिवर्तन में विश्वास रखनेवाले कवि ने नवयुग की प्रतीक्षा की है -

एक युग की शाम जाती
एक युग का प्रात आता,
भू बदलती, नभ बदलता,

1· त्रिभंगिमा, पृ·79-81
2· वही, पृ·153-154

शक्ति की तेरी परीक्षा
सृष्टि लेना चाहती है,
नव पवन के नव विहगों में तू सीख धुन।[1]

निष्कर्ष

जिन्दगी का कोई भी पहलू बच्चन से अछूता नहीं रहा है। उन्होंने महल और झोंपड़ी, मनुष्य और गधे प्रभृति प्राय: सभी विषयों पर काव्य रचना की है। उन्होंने एक साधारण मनुष्य की तरह समाज की आलोचना की है। युवा पीढ़ी के असंतोष और उनकी उच्छृंखलता पर कवि ने व्यंग्य किया है।

"धार के इधर उधर" में सामाजिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण 67 कवितायें संगृहीत है। इनमें से "रक्त स्नान", "अग्नि परीक्षा", "युद्ध की ज्वाला", "मानव रक्त", "व्याकुल संसार" जैसी कविताओं में बच्चन का युद्ध विरोधी स्वर मुखरित होता है। "देश के नेताओं से", "देश के नाविकों से" जैसी कविताओं में देश के सारथियों का ध्यान नये उत्तरदायित्व की ओर आकृष्ट कराने का प्रयत्न किया है। साहित्यकारों को भी अपने दायित्व के प्रति सचेत बनाने का उद्‌बोधन दिया गया है। "ओ मेरे यौवन के साथी" और "आज़ादी का गीत" एकता का सन्देश देती है। इस संग्रह की कविताओं में बच्चन की राजनीतिक चेतना का तीखा स्वर मिलेगा। राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय समस्याओं पर उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

---

1. त्रिभंगिमा, पृ. 77-78

"आरती और अंगारे" की कवितायें बच्चन की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक हैं। व्यास, वाल्मीकि, जयदेव, चन्दबरदायी, कबीर, जायसी, तुलसी, उमर खैयाम, गालिब, इकबाल, रवीन्द्र, ईट्स प्रभृति मनीषियों को बच्चन ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित की है। अपने परिवेश और बन्धु जनों का स्मरण भी कई कविताओं में किया गया है।

"बुद्ध और नाचघर" की अधिकांश कवितायें व्यंग्य प्रधान हैं। कुछ कवितायें दार्शनिक महत्व रखती है। इस संग्रह की अत्यंत प्रभावशाली कविता है "बुद्ध और नाचघर" जिसमें बच्चन ने वर्तमान समाज की तीखी आलोचना की है।

"त्रिभंगिमा" की दूसरी और तीसरी भंगिमा में युगीन यथार्थ को वाणी दी गयी है। "अमरबेली", "मिट्टी का द्रोणाचार्य", "गणतंत्र दिवस", "महागर्दभ" आदि व्यंग्य कवितायें उल्लेखनीय है।

"चार खेमे चौंसठ खूंटे" में कुछ आध्यात्मपरक कवितायें हैं। इस संग्रह की "कृपया", "वर्षामंगल", "भू पुत्रों की चुनौती", "राष्ट्रपिता के समक्ष" आदि कवितायें महत्वपूर्ण है। इनमें कवि ने वर्तमान राजनीति पर विचार, शोषित किसान वर्ग के प्रति आत्मीयता का भाव, तथाकथित गांधीवादियों पर व्यंग्य आदि किया है।

"दो चट्टानें" में नेहरूजी पर लिखी गयी कुछ कवितायें हैं। "बाढ़ पीड़ितों के शिविर में", "कुकडूं-कूं", "सुबह की बांग", "गैंडे की गवेषणा" आदि राजनीतिक व्यंग्य कवितायें है। इनमें शासन की निष्क्रियता और निर्लज्जता पर उन्होंने व्यंग्य किया है। "भोलेपन की कीमत", "युग-पंक युग-ताप", "सृजन और साँचा", "क्रुद्ध युवा बनाम क्रुद्ध वृद्ध" जैसी सामयिक संघर्षों की अभिव्यक्ति करनेवाली रचनायें है। "खून के छापे" में बुभुक्षित दलित वर्ग की

व्यथा को वाणी दी गयी है । इस संग्रह की सबसे लम्बी कविता है "दो चट्टानें अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान"। इसमें मूल्य विघटन की समस्या पर विचार किया गया है । आर्ष संस्कृति के प्रति अपनी श्रद्धा भी बच्चन ने इसमें व्यक्त किया है । इसमें पुरावृत्त को आधार बनाकर युगीन समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है ।

"कटती प्रतिमाओं की आवाज" की कविताओं में बदलते मानवीय मूल्यों की स्थिति को चित्रित किया है । "चाचा", "मध्यम पीढी का वक्तव्य", "दो पीढ़ियाँ" "चार पीढ़ियाँ", "नये पुराने" आदि कविताओं में कवि ने मूल्यों के विघटन का चित्र उपस्थित करके पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है ।

"उभरते प्रतिमानों के रूप" की अधिकांश कवितायें युगीन संघर्ष को अभिव्यक्ति देनेवाली हैं ।

बच्चन ने अपनी कविताओं में युगीन यथार्थ को वाणी देने का प्रयास किया है । विश्वमंगल की कामना और मानवता के उत्थान का स्वर उनकी कविताओं में मुखरित होता है । सभी प्रकार का व्यंग्य बच्चन की कविताओं में उपलब्ध है । क्लर्कों और अफसरों की बंधी बंधाई जिन्दगी, जीवन की यांत्रिकता, शहरी सभ्यता पर व्यंग्य, भीतरी अव्यवस्था का चित्र आदि उनकी कविताओं में सर्वत्र सुलभ है ।

दिनकर

दिनकर का जन्म बिहार के एक गरीब कृषक परिवार में हुआ था । उनको परतंत्र भारत की विवशताओं एवं स्वतंत्र भारत की समस्याओं को अपनी आँखों से देखने और अनुभव करने का मौका मिला था । स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया । बिहार राज्य सरकार में सब-रजिस्ट्रार, राज्य सभा के सदस्य, भागलपुर विश्व-विद्यालय के उपकुलपति, भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार आदि देश की सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम करने के फलस्वरूप दिनकर जी को विशाल अनुभव सम्पत्ति मिली जो पीछे चलकर उनकी सम्पूर्ण काव्य चेतना की प्रेरणा बन गयी ।

अग्नि में ताप के समान कवि अपनी रचना में छिपा रहता है । यही सच्चे कलाकार की स्थिति है । दिनकर की कवितायें अग्नि के समान हैं जिसमें अनुभवों से पूर्ण जीवन ताप के समान रहता है । यही आपकी कविताओं की शक्ति है ।

दिनकर के "बापू", "इतिहास के आँसू", "धूप और धुआँ", "दिल्ली", "नीम के पत्ते", "नील कुसुम", "नये सुभाषित", "परशुराम की प्रतीक्षा", "कोयला और कवित्व", "मृत्ति तिलक" आदि काव्य संग्रहों का अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है ।

सामाजिक चेतना

"भुवन का सब भार पीठ पर लेना और श्रान्त क्लान्त वसुधा पर जीवनकण बरसना कवि होकर जीने का अर्थ है । कला जीवन का खण्डन नहीं, उसकी स्वीकृति है । जीवन की लाखों डालियाँ हैं । वे सभी एक ही तरु से फूटकर निकली हैं । उस तरु के गहन मूल में बैठकर, कला, सभी डालियों का स्पन्दन ध्यान से सुनती है और सब का यथायोग्य अंकन भी करती है[1]। कला कला केलिये मात्र नहीं, कला जीवन केलिये भी है । इस बात को स्पष्ट करते हुए दिनकर ने लिखा है -

कला कला केलिये कहें तो इससे क्यों जीवन का
मुख मलीन होता, मन में कुछ चोट कहीं लगती है
कला-पुष्प खिलता जिस द्रुम पर, उसकी मूल-शिरायें
जीवन में यदि नहीं, कहाँ पर और गडी होती है ?[2]"

रंगीनियों के स्थान पर ठोस धरती, दिनकर को प्रिय थी । उन्होंने कविता को व्यक्ति द्वारा सम्पादित सामाजिक कार्य माना है ।

---

1. कोयला और कवित्व, पृ.82-83
2. वही, पृ.84

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे जीवन की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। देश आज "ज्वरग्रसित" है। ज्वरग्रसित मरीज को कच्चा पानी ठीक नहीं। उबला हुआ समुष्ण सलिल उसकेलिये पथ्य है। अब रोमांटिक कविता का समय नहीं है। जाड़ों की रात में गीतों की गरमाहट आवश्यक है। जीवन के यथार्थ से तप्त अनल आज कविता में होनी चाहिए। जीवन से "जो समझा और सीखा है, जो कुछ नयनों को दीखा है, उसे लिखना आज की आवश्यकता है। दिनकर ने अपनी कविताओं द्वारा यही कार्य किया है। उनकी कवितायें "कच्चा पानी नहीं", "उबला हुआ समुष्ण सलिल है"।

जीवन का यथार्थ चित्रण

दिनकर ने अपनी कविताओं द्वारा तत्कालीन समाज का यथार्थ और जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है। हमारे समाज में आज सब ओर धुआँ है चतुर्दिक घुटन भरी है। चोरबाजारी और रिश्वतखोरी बढ़ी। दिनकर के विचार में अब यह भी कहना कठिन है कि अपना देश स्वस्थ है या बीमार।

व्यक्ति और समाज

दिनकर ने व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना है। जिस प्रकार बूँदें समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार व्यष्टि समष्टि में मिलते हैं। जिस प्रकार मेघ धरा से उठकर अम्बर पर घिरता है और वारि बनकर फिर वसुधा के ही तन पर गिरता है उसी प्रकार समाज से छनकर ही व्यक्ति को सारे भाव मिलते हैं और पुन: वे समष्टि में ही लौट जाते हैं। इसलिये व्यष्टि को समष्टि के सम्मुख झुकना कल्याणकारी है।

व्यक्ति को समाजरूपी हार के मोती का दाना मानकर दिनकर ने लिखा -

> व्यष्टि-समष्टि-विवाद व्यर्थ है, झगडा मनमाना है
> है समष्टि ही हार, व्यक्ति तो मोती का दाना है[1]।

इसलिये यदि व्यक्ति का सुधार नहीं करता है तो समाज की उन्नति संभव नहीं है । "व्यष्टि" कविता में दिनकर ने इस बात पर ज़ोर दिया है ।

भूख और गरीबी

रोटी और वसन जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें हैं । ये जीवन के प्रथम सोपान है । इस सत्य को जाननेवाले कवि ने आँखों के आगे तडप रहे भूखे हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि बनकर कहा -

> जिनका उदर पूर्ण हो वे सोचें जो बात,
> हम भूखों को सिर्फ चाहिए एक वसन, दो भात[2]।"

दिनकर ने स्वतंत्र भारत की गरीबी का यथार्थ चित्रणकिया है । उनकी "समर शेष है" कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये -

> मखमल के पर्दों के बाहर, फूलों के उस पार,
> ज्यों का त्यों है खडा आज भी मरघट-सा संसार

---

1. नील कुसुम, पृ.96
2. वही, पृ.96

वह संसार जहाँ पर पहुँची अब तक नहीं किरण है,
जहाँ क्षितिज है शून्य, अभी तक अम्बर तिमिर वरण है ।
देस जहाँ का दृश्य आज भी अंतस्तल खिलता है,
माँ को लज्जा-वसन और शिशु को न क्षीर मिलता है[1] ।

दिनकर की दृष्टि में देश की गरीबी का प्रमुख कारण चोर-बाज़ारी है । उन्होंने "ओ धूम धाम से नहीं मनाओगे तुम क्या, कुछ ही वर्षों में दशक चोरबाजारी का ? छल, छद्म, कपट का भी उत्सव कालक्रम से होना चाहिए[2]" कहकर चोर बाज़ारी पर व्यंग्य किया है ।

साम्प्रदायिकता का विरोध

वर्तमान युग में जाति का बन्धन दृढ हो चुका है । स्वतंत्रता के पहले ही साम्प्रदायिक दंगों ने भीषण रूप धारण किया था । स्वतंत्रता के पश्चात वह आग भभक उठी ।

जल रही आग दुर्गन्ध लिये,
छा रहा चतुर्दिक विकट धूम ।
विष के मतवाले कुटिल नाग
निर्भय फन जोडे रहे घूम[3] ।

1· परशुराम की प्रतीक्षा, पृ·76
2· नीम के पत्ते, पृ·17
3· बापू, पृ·14

इस अग्नि को बुझाने केलिये आखिर बापू को अपना रक्त देना पडा । दिनकर ने साम्प्रदायिकता का विरोध ही नहीं किया, एकता का सन्देश भी दिया है ।

मांगो मांगो वरदान धाम चारों से,
मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों से ।
xx xx xx
मन्दिर और मस्जिद, दोनों पर एक तार बांधो रे[1] ।

जैसी पंक्तियां निश्चय ही साम्प्रदायिक एकता केलिये प्रेरणा देनेवाली हैं ।

शोषित जन के प्रति सहानुभूति

दिनकर सदा शोषित, पीडित साधारण जनता का साथी रहे । उनकी कवितायें ब्राह्मणी की बाहों से छूटी बीन या मेनका के मन का उड्डीन स्वप्न नहीं । वे नन्दनवन का भटका कोकिल या दूरवासी फूलों की अनजान सुगन्ध या अम्बरतल की झंकारों की लहर या अगोचर के वन का बेसुध पराग भी नहीं । उनकी कवितायें समाज की साधारण जनता की धमनी में बजनेवाली रागिनी है, उसके भीतर भरे अनल का दाह है, उसमें छिपे हुए गर्जन है । कवि के ही शब्दों में -

मैं सदा तुम्हारा दर्द बोलता आया हूं ।
जिनके ऊपर सौ चट्टानें थीं पडी हुई,
उन बेकलियों का भेद खोलता आया हूं ।
xx xx xx

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.32,78

मिट्टी पर तब से जहाँ तुम्हारा स्वेद गिरा
मैं ने उमंग में भरकर कोई गान लिखा,
औ जहाँ-कहीं शोणित की पतली धार चली
धूसर प्रतिभा ने वहाँ एक अभिमान लिखा[1]।"

हमारे समाज में वाणीहीन जनों की दुनिया बहुत बडी है। उनकी आशायें आज भी नीडों में सोती हैं - सुख से नहीं, उडने केलिये पंख नहीं होने की विवशता से। उनके कंठ नहीं खुलते हैं, इसलिये वे मूक हैं। यह बडा दुख है कि भीतर से दर्द भोगना, लेकिन उसे बंटा न पाना। इसलिये दिनकर ने उस मूक व्यथा को वाणी देने का प्रयास किया है -

एक बार फिर स्वर दो।
मूक, उदासी-भरे, दीन बेटे संपन्न महीके
मृत्यु विवर के पास आज भी जीवन खोज रहे हैं[2]।

मानव मन का श्रेय आकाशगामी बनने में नहीं, लोकसेवा करने में है। मानव का गृह तो मानव से दूर नहीं है। इस सत्य को जानकर कवि ने "उन अपार, असहाय, बुभुक्षित लोगों की, जो अब भी गाँधी में आस लगाकर मौन खडे हैं, वेदना को वाणी दी है। दिनकर की राय में जिसका अनाज, जिसकी जमीन और जिसका श्रम है रोटी भी उसकी है। आज़ादी हमें परिश्रम का पुनीत फल पाने का अधिकार देती है, शोषणों की धज्जियाँ उडाने का अधिकार देती है[3]। शोषित जनता को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाने का प्रयत्न कवि ने किया है।

---

1. नीलकुसुम, पृ.74 § 75
2. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.69
3. नीम के पत्ते, पृ.5

नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण

अपनी प्रारंभिक रचनाओं में दिनकर ने नारी को शक्ति के रूप में स्वीकार किया है । उन्होंने नर और नारी को एक ही सत्य के दो पहलू माना है । रसवन्ती में उन्होंने नारी के आकर्षक रूप को चित्रित किया है । यहाँ छायावाद का प्रभाव देखा जा सकता है । उर्वशी में कवि को नारी के मानवी रूप का पक्षपाती बनते दिखाई पड़ता है ।

वर्तमान समाज में स्त्री को पुरुष के समकक्ष स्थान मिलने केलिये जोर जोर नारे लगाये जाते हैं । भारतीय स्त्री के मन में अपनी अपेक्षा पुरुष को श्रेष्ठ मानने की एक भावना होती है, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है । कुछ लोग तो नारी समाज की निन्दा भी करते हैं । लेकिन सम्पूर्ण नारी समाज की निन्दा करना उचित नहीं, यद्यपि उसमें अपराधिनी बहुत है । दिनकर नर और नारी को पुरुष और प्रकृति मानने के पक्ष में थे ।

नर रचते कानून, नारियाँ रचती हैं आचार,
जग को गढ़ता पुरुष, प्रकृति करती उसका श्रृंगार ।[1]

वर्तमान युग में भी नारी के प्रति समाज उपेक्षित दृष्टिकोण रखता है । दिनकर की दृष्टि सदा सहानुभूतिपूर्ण एवं उदार थी । रूपसी नारी को उन्होंने प्रकृति का सबसे मनोहर चित्र कहा ।

---

1. नये सुभाषित, पृ.8

शहरी सभ्यता पर व्यंग्य एवं ग्रामीण चेतना

दिनकर ग्रामीण चेतना के कवि थे। वे जन्म और संस्कार से ग्रामीण थे। मैट्रिक पास करने तक और फिर सन् 1933 से सन् 1943 तक नौकरी के सिलसिले में वे गाँव में रहे थे। उन्होंने अपने कार्यकाल के 38 वर्षों में 19 वर्ष गाँव में और 19 वर्ष दिल्ली में बिताये। शहर और गाँव के भेद वे अच्छी तरह जानते थे। दिल्ली हमारी सारी शिराओं का केन्द्र है। आज वह विलास का केन्द्र बन गया है। देश की बेचैनी केन्द्र को बेचैन नहीं कर पा रही है। गाँवों में वज्र गिरें या बाढ आये, मगर दिल्ली के आराम का पारा चढता उतरता नहीं। वह ज्यों का त्यों स्थिर है। "हक की पुकार", 'भारत का यह रेशमी नगर' आदि कविताओं में दिनकर ने इन्हीं विचारों को व्यंग्य रूप में प्रकट किया है। दिल्ली के आडम्बर के प्रति रोष प्रकट करते हुए दिनकर ने वहाँ की सारी चमक-दमक लोच-लचक को झूठ कहा।

दिनकर के मतानुसार भारत के गाँवों को रोशन करने केलिये दिल्ली की रोशनी को मन्द करना चाहिए। शहर की सुख सुविधाओं को देखकर वे आत्मविभोर नहीं हुए। गाँवों की शोचनीय स्थिति उनको सताती है। यह वेदना उनकी कलम से इस प्रकार निकली -

वेतनभोगिनी, विलासमयी यह देवपुरी
ऊँघती कल्पनाओं से जिसका नाता है,
जिसको इतनी चिंता का भी अवकाश नहीं
खाते हैं जो वह अन्न कौन उपजाता है।[1]

---

1. दिल्ली, पृ.20

स्वतंत्र भारत का शहर सुभिक्ष है, गाँव निर्धन है । एक ओर दिल्ली में रेशमी विलास है, दूसरी ओर गाँवों में नंगे भूखे जन हैं । जब सारा देश अन्धेरे में भटक रहा है तो दिल्ली में खूब ज्योति की चहल-पहल होती है । स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद भी भारत शूलों से भरा, आँसुओं से गीला और विपत्तियों से घिरा रहता है । अभाव से ग्रस्त जनता रोती है । किसान असहाय हैं । खेतों में उनकी किस्मत अनायास जल में बह जाती है । क्या खायेंगे यह सोचकर बेचारे निराशा से पागल हो गये हैं ।

कवि इस परिस्थिति से अच्छी तरह परिचित थे कि जब अभाव के तापों से देश विकल है तो दिल्ली नरम रजाई में सुख से सोते हैं । निर्धन का श्रम पीकर लोभ के प्रेत छिपे रहते हैं । पानी के अभाव में खेत सूखे जा रहे हैं । शहर और गाँव के बीच इतनी बडी खाई पैदा करने केलिए कवि ने देश के नेताओं को उत्तरदायी कहा । नेताओं पर उनका व्यंग्य इस प्रकार है -

दीनता वेदना से अधीर
आशा से जिनका नाम रात दिन जपती है,
दिल्ली के वे देवता रोज कहते जाते,
कुछ और धरो धीरज, किस्मत अब छपती है[1] ।

"गाँव के जलने से दिल्ली में रोटियाँ कम नहीं होती है" कह कर दिनकर ने अपना सारा रोष नेताओं पर रखा है । उन्होंने यह चेतावनी भी दी है कि 'सब दिन तो यह मोहिनी न चलनेवाली है । दिशाओं की साँसें गरम होती जा रही हैं । मिट्टी फिर आग उगलनेवाली है ।

---

1. दिल्ली, पृ.22

मेघों से उभरे हुए नये गजराजों की काली काली सेनायें खड़ी हो रही है ।
दिनकर की इन पंक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दुख और गरीबी से पीड़ित जनता एक दिन संघर्ष करेगी । काले बादल संघर्ष का प्रतीक है ।

राजनीतिक चेतना

दिनकर का सारा जीवन किसी न किसी प्रकार राजनीति से जुड़ा हुआ था । स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया था । सन् 1952 से 1963 तक वे राज्य सभा के कांग्रेसी सदस्य थे । संसद के सदस्य होने के कारण दिल्ली में रहकर भारत की राजनीति की सारी हलचलों, विद्रूपताओं और विसंगतियों से वे परिचित हुए । इस अवसर पर उन्होंने लिखा -

मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूं
जनता तो चट्टानों का बोझ सहा करती
मैं चांदनियों का बोझ किसी विध सहता हूं ।[1]

जन कल्याण की उत्कट अभिलाषा उनकी इन पंक्तियों में स्पष्ट होती है । इस कारण से राजनैतिक नेताओं में दिनकर एक अपवाद बन गया ।

---

1. दिल्ली, पृ.20

दिनकर को किसी वाद या सिद्धांत के दायरे में नहीं बाँधा जा सकता । उनके विचार में मार्क्सवाद अपूर्ण है । इसकी पूर्ति उन्होंने गाँधीजी में देखी । मार्क्स ने ईश्वर को नर की भ्रान्ति और धर्म को जहर कहा । गाँधीजी ने भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता को भी महत्वपूर्ण बताया । इसलिये दिनकर की कविताओं में इन दोनों सिद्धांतों का आभास मिलता है । वे हमेशा सत्य के अन्वेषी रहे । साहित्य के क्षेत्र में भी कोई वाद उनको स्वीकार्य नहीं था -

सच है, कला निसर्ग-मुक्त है नियति रचित नियमों से
न तो नीति-सेविका, न तो चेटिका किसी दर्शन की ।
xx xx xx
सत्य का मैं अन्वेषी हूँ ।
सोशलिस्ट ही हूँ, लेकिन कुछ अधिक जरा देशी हूँ ।[1]

फिर भी उन्होंने "अच्छे लगते हैं मार्क्स, प्रेम है अधिक, किन्तु गांधी से" कहकर गाँधीवाद के प्रति अपना झुकाव प्रकट किया है ।

स्वतंत्रता का स्वागत

दिनकर ने स्वतंत्रता को एक अमूल्य वरदान माना है । उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता उमंगों की तरंग है, नर में गौरव की ज्वाला है । स्वातंत्र्य रुह की ग्रीवा में अनमोल विजय की माला है । वह बाहरी वस्तु नहीं, भीतरी गुण है ।

---

1. कोयला और कवित्व, पृ.83-83

दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातंत्र्य निरंतर समर, सनातन रण है ।
स्वातंत्र्य समस्या नहीं आज या कल की,
जागर्ति तीव्र वह घडी-घडी, पल पल की[1] ।

परतंत्रता और स्वतंत्रता का अंतर और स्वतंत्रता का महत्व जाननेवाले कवि ने हमारी स्वतंत्रता को सहर्ष स्वागत किया -

परवशता-सिन्धु तरण करके तट पर स्वदेश पग धरता है,
दासत्व छूटता है, सिर से पर्वत का भार उतरता है[2] ।

आज़ादी का यह ताज बडे तप से भारत ने पाया है । अहिंसा और सत्य के बल पर हमने स्वतंत्रता पाई । हमारे त्याग और बलिदान का स्मरण करते हुए दिनकर ने लिखा है -

जब तोप सामने खडी हुई, वक्षस्थल हमने खोल दिया
आयी जो नियति तुला लेकर, हमने निज मस्तक तोल दिया[3] ।

स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानियों को कवि ने श्रद्धा से याद किया है । भारत के अनेक वीर सपूतों के प्राणों की बलि देकर पाई स्वतंत्रता का संरक्षण करने केलिए कवि ने देवताओं से आशिष भी माँगी -

आशीष दो वन देवियों ! बनी गंगा के मुख की लाज रहे,
माता के सिर पर सदा बना आजादी का यह ताज रहे[4] ।

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.21
2. नीम के पत्ते, पृ.13-14
3. वही

देश-विभाजन पर दुख

भारत के विभाजन पर कवि ने दुख प्रकट किया है । भारत माता के फटे हुए अंचल को फिर सीने केलिए बलि और श्रम का आह्वान भी उन्होंने किया है ।

> माँ का अंचल है फटा हुआ, इन दो टुकडों को सीना है,
> देखें, देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है[1] ।

बापू की मृत्यु

"हे राम", "भाइयो और बहनो" जैसी कविताओं में दिनकर ने गाँधीजी की मृत्यु पर, उनकी हत्या पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । शांति के दूत की हत्या पर -

> यह अवधपुरी के राम चले
> वृन्दावन के घनश्याम चले,
> शूली पर चढ़कर चले कृष्ट,
> गौतम प्रबुद्ध निष्काम चले[2] ।"

कहकर उन्होंने अपना दुख प्रकट किया है । प्रस्तुत कविता में दिनकर ने गाँधीजी को राम, कृष्ण और बुद्ध के समकक्ष स्थान दियाहै । बापू के हत्यारे को कवि ने कायर, नृशंस कुत्सित, दनुजों में भी अति घृणित दनुज कहकर अपना रोष और अपनी घृणा प्रकट की है ।

---

1. नीम के पत्ते, पृ.15
2. बापू, पृ.38

उन्होंने साम्प्रदायिकता को बापू की हत्या केलिये उत्तरदायी कहा ।

> प्यासे को शोणित पिला, तोड
> कोई अपनी जंजीर चला,
> दानव के दंशों पर हँसता
> यह स्वर्ग देश का वीर चला ।"[1]

चीनी आक्रमण पर प्रतिक्रिया

चीनी आक्रमण के समय कवि ने अहिंसा का परित्याग कर "गिराओ बम, गोली दागो" का सन्देश दिया । अहिंसा हमें सदा युद्ध से दूर रहने की प्रेरणा देती है । हम युद्ध को पाप समझते हैं । लेकिन पशुता के सामने हमारा स्नेह और हमारी सहिष्णुता का मूल्य नहीं ठहरेगा । आत्मा कीतलवार सर्वथा वहाँ व्यर्थ है जहाँ देह का अखाडा खुला हुआ हो । उच्च गुण के कारण जो रण में हारे गये हैं, उन पराजितों की किस्मत पर इतिहास रोता है । अपाहिजों के कलंक का वह क्षमा नहीं करता है । इसलिये, कवि के मतानुसार, पाप-पुण्य की द्विधा को तोडकर युद्ध करना आवश्यक है ।

गाँधी के शांति सदन में आग लगानेवाले कपट, कुटिल, कृतघ्न, आसुरी महिमा के मतवाले चीन को कवि ने चेतावनी दी है कि हम केवल अहिंसा के ही पूजारी नहीं हैं, वरन् आततायीयों का रक्त पीने को भी सन्नद्ध है ।

---

1. बापू, पृ.38

मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार,
सावधान ! ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार ।[1]

हमारी सीमा पर ही नहीं, स्वतंत्रता पर आज संकट आया है । माँ के किरीट पर आज यह वार हुआ है । अब हम प्रतिशोध लिये बिना नहीं छोडेंगे । प्रतिशोध केलिये आज चाणक्य, चन्द्रगुप्त, राणा प्रताप शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, टिपु, भगतसिंह जैसे वीरों की आवश्यकता है जिन्होंने देश की आनबान केलिये प्राणों की बाजी लगा दी । हमारा इतिहास तप्त और जगमगाता है । इसे पददलित नहीं कर सकता । हम उन वीरों की सन्तानें है, हमको कौन बन्दी करेगा ? रण में समग्र भारत को भाग लेना है । चिंतकों, ऋषियों और योगियों को भी छुटकारा नहीं । इनको तप, जप आदि का त्याग करके बन्दूकों पर अपना आलोक मढना है । क्योंकि -

यह नहीं शांति की गुफा, युद्ध है, रण है
तप नहीं, आज केवल तलवार शरण है ।[2]

'परशुराम की प्रतीक्षा', 'जनता जगी हुई है', 'लोहे के मर्द', 'आज कसौटी पर गाँधी की आग है', 'आपद्धर्म', 'पाद टिप्पणी', 'अहिंसावादी का युद्ध गीत' आदि कवितायें चीनी आक्रमण पर कवि की प्रतिक्रिया स्पष्ट करनेवाली हैं । परशुराम की प्रतीक्षा चीन की निन्दा करनेकेलिये नहीं, भारत वासियों को यह सिखाने केलिये लिखी गयी थी कि हिंसा के सभी रूप निन्द्य नहीं है । विशेषत: आत्मरक्षा में उठाया गया शस्त्र कभी भी पाप का यंत्र नहीं होता ।[3]

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.42
2. वही, पृ.12
3. रश्मिलोक - भूमिका

युग पुरुषों को श्रद्धांजलि

भारत के युगपुरुषों का आदर करने में दिनकर और बच्चन आलोच्य युग के कवियों में सबसे आगे थे । "राजर्षि अभिनन्दन" कविता में दिनकर ने कामना जयी, व्रताचारी, गत की तिमिराच्छन्न गुफा में शिखा सजानेवाले उज्ज्वल अतीत की ध्वजा उठानेवाले राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का अभिनन्दन किया है । सम्राट अशोक औरबुद्ध को कवि ने श्रद्धा से याद की है । भगतसिंह और राणा प्रताप जैसे वीर पुरुषों के प्रति उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा आदर प्रकट किया है । देश में उठाये गये तूफान के पिता गांधीजी की पुण्य स्मृति के सामने वे नतशीश रहे । इन कविताओं में दिनकर की देशभक्ति झलकती है ।

समसामयिक घटनाओं का चित्रण

समसामयिक समस्त छोटी और मोटी घटनाओं ने दिनकर को अवश्य प्रभावित किया है । संसार में नेताओं की वध भीषणी नयी नहीं । एक बार नेहरूजी पर एक व्यक्ति ने छुरा चलाने की कोशिश की थी । इस घटना पर दिनकर ने लिखा -

समर शेष है, अभी मनुज-भक्षि हुंकार रहे हैं
गांधी का पी रुधिर, जवाहर पर फुंकार रहे हैं
समर शेष है, अहंकार इनका हरना बाकी है ।
वृक को दंतहीन, अहि को निर्विष करना बाकी है ।[1]

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ॰78

सन् 1955 में रूसी नेताओं के दिल्ली आगमन पर उन्होंने "भारत व्रत" लिखी। उत्तर बिहार में फैली हुई महामारी के समय पूज्य राजेन्द्र बाबू, जो चालीस कोटि मनुजों का प्यारा और भारत रानी की आँखों का ध्रुवतारा है, कीरिहाई के लिये जो आन्दोलन उठाई गई वह विफल हुआ। "पटनाजेल के दीवार से" कविता इस घटना पर आधारित है। विनोबा के भूदान आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने "जमीन दो ज़मीन दो" लिखी। कश्मीर और हैदराबाद की समस्याओं पर विचार करते हुए दिनकर ने लिखा -

महँगी आज़ादी के जीवन का एक साल,
कश्मीर-हैदराबाद धधकते-जलते हैं[1]।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी कवि को प्रभावित किया। अणु परीक्षणों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा -

वही स्वतंत्र, जो समर्थ है,
परमाणु-बम जो नहीं तो सब व्यर्थ है[2]।

राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम

दिनकर की कवितायें राष्ट्रीयता और देश प्रेम से ओत-प्रोत हैं। कविताओं द्वारा ही नहीं, अपने जीवन मे भी उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता का परिचय दिया है। सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने कई सभाओं में "वन्दे मातरम्" का गीत गाया था। सन् 1930 के नमक

---

1. नीम के पत्ते, पृ. 19
2. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ. 67

सत्याग्रह में तीन चार महीने उन्होंने काम किया था । उनकी राष्ट्रीय भावना का मूल स्रोत यहाँ है । राष्ट्रीय कविता की जो परंपरा भारतेन्दु से प्रारंभ हुई, उसकी परिणति दिनकर में हुई है[1] ।"

रसवन्ती को छोड़कर दिनकर की प्राय: सभी कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना भरी हुई है । अतीत के प्रति प्रेम, नये आदर्श समाज की कल्पना, तिरंगा झण्डा, हिमालय, गंगा आदि का गौरव गान, युग पुरुषों को श्रद्धांजलि, आदि दिनकर की देश भक्ति का स्पष्ट प्रमाण है । उनकी "भारत व्रत", "वीर वन्दना", "भारत का आगमन" "इस्तीफा", "मृत्ति-तिलक" आदि देश प्रेम से भरी हुई कवितायें हैं ।

देश प्रेमी कवि ने विदेशियों के मुँह से भी भारतवर्ष का गुणगान कराया है -

जय हो, दिन-दिन बढ़े मगध का बल, वैभव, उत्कर्ष,
हुआ आज से सैल्यूकस का भी गुरु भारत वर्ष[2] ।"

लेकिन, संकुचित राष्ट्रीयता, जो मानवतावाद का विरोधी है, दिनकर ने अच्छा नहीं माना है । संकुचित राष्ट्रीयता पर उनका व्यंग्य तीखा है -

टिकने देती भैंस नहीं बाहरवाली भैंसों को,
अपने खूँटे से ढकेल कर बाहर कर देती हैं,

---

1. रामवृक्ष बेनीपुरी - 'हुंकार' की भूमिका में
2. इतिहास के आँसू, पृ.21

यही भाव विकसित, प्रशस्त होकर नर की भाषा में
राष्ट्र, राष्ट्र का प्रेम, राष्ट्र का गौरव कहलाता है[1]।

तिरंगे झंडे की वन्दना

सत्य न्याय के हेतु, तिरंगे झंडे की वन्दना करते हुए दिनकर ने अपनी अगाध देश भक्ति का परिचय दिया है। 'मंगलमूर्ति, बल, बलिदान विजय का साका, धरती की हरियाली और सत्पथ की उजियाली, हमारा पौरुष और मान है' तिरंगा झंडा।

हिमालय और गंगा का महत्त्व

दिनकर ने अपनी कविताओं में हिमालय को भारत के सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए उन्होंने लिखा -

भगवान साथ हों, आज हिमालय अपनी ध्वजा उठाता है
दुनिया की महफिल में भारत स्वाधीन बैठने जाता है[2]।

जनमन के दाह को हरनेवाली पियूष नदी गंगा को भी कवि ने भारतीय संस्कृति का गौरव बताया है।

---

1. कोयला और कवित्व, पृ.77
2. नीम के पत्ते, पृ.17

वर्तमान राजनीति पर विचार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की राजनीति को निखारने पर ऐसा लगता है मानो 'बकना ही असली स्वराज है, बाकी तो जहाँ भी देखो, डाकुओं का राज है।[1]' कदम कदम पर यहाँ पातक खड़ा है। हर तरफ घात लगाए घातक खड़ा है। ये घातक देवता सदृश्य दिखता है। लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है। ये सत्य जानकर भी सत्य नहीं कहता है या किसी लोभ के विवश मूक रहता है। कवि की राय में यह मूक सत्य हन्ता वधिक से कम नहीं है। यदि शासन में पुण्य नहीं बढा रहे या यदि प्रजा के मन में आग सुलगती है, यदि तमस बढ़कर प्रभा को ढकेल देता, प्रतिभा को निर्बन्ध गति नहीं मिलते, तो रिपु नहीं, यही अन्याय हमें मारेगा। अपने घर में ही फिर स्वदेश हारेगा। इसलिये दिनकर ने उन कुटिल राजतंत्रियों का धिक्कार किया है जो -

चोरों के हैं जो हित, ठगों के बल है,
जिनके प्रताप से पलते पाप सकल हैं,
जो छल-प्रपंच, सबको प्रश्रय देते हैं,
या चाटुकार जन से सेवा लेते हैं[2]।

'पहली वर्षगाँठ', "पंचतिक्त" जैसी कविताओं में दिनकर ने वर्तमान युग के स्वार्थी राजनेताओं पर व्यंग्य किया है। रिश्वतखोरी और चोरबाजारी बढी, शासक नोटों के पीछे दौड रहे हैं। कवि ने कितना तीखा व्यंग्य किया है, देखिये -

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.65
2. वही, पृ.2-3

अथवा मुट्ठी भर उन नोटों के बंडल में
हो रहे देखकर जिन्हें चाँद-सूरज अधीर
टोपी कहती है, मैं थैली बन सकती हूँ
कुरता कहता है, मुझे बोरिया ही कर लो ।
ईमान बचाकर कहता है, आँखें सबकी,
बिकने को हूँ तैयार, खुशी हो जो दे दो[1] ।"

हमारी आज़ादी आज चारों ओर से लपटों से घिरी हुई है । स्वतंत्रता के साथ भारतीय जनता जो सपने देखते आये वे सब धुआँ हो गये । हरी दूब' और 'बकरी' के प्रतीकों द्वारा दिनकर ने इस बात को स्पष्ट किया है ।

जीते हैं मेरे स्वप्न ? आपने देखा था ?
हाँ, छोड गये थे यहाँ आप ही दूब हरी ?
अफसोस ! मगर, कल शाम आपके जाते ही
चर गई उसे जड-मूल-सहित मेरी बकरी[2] ।

मंत्रियों के गुड अनोखे हैं । वे खबरों के सिवा कुछ भी नहीं पढते हैं । हर घडी उन्हें, इस बात की चिंता रहती है कि कैसे लोगों से ज़रा ऊँचा दिखें हम । नेताओं की भाषण-प्रियता और उनके झूठे आश्वासनों पर कवि ने व्यंग्य बाण छेडा है -

ऊपर-ऊपर सब स्वाँग, कहत कुछ नहीं सार,
केवल भाषण की लडी, तिरंगे का तोरण[3] ।

---

1. नीम के पत्ते, पृ.18
2. वही, पृ.19
3. वही, पृ.19

हाँ, बोले तो शायद समझो, स्यात कहे तो "ना" जानो ।
और कहे यदि "ना" तो उसको कूटनीतिविद मत मानो ।

दिनकरजी के विचार में "वर्तमान नेताओं के मुख पूर्णिमा में रहते हैं, आत्मा अमा में रहते हैं"।-

हमारे समाज में बडे-बडे नेताओं और महापुरुषों की मूर्ति स्थापित करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । दिनकर कांस्य मूर्ति की प्रथा निर्दोष नहीं मानते । प्रतिमाओं के कन्धों पर कौए बीट करते हैं । और जो नेता जीवन भर जलते थे, शायद उनके प्रेत मरने पर भी चैन नहीं पाते हैं । "कांस्य प्रतिमा" कविता में उन्होंने इस विचार को स्पष्ट किया है । "और अगर मरकर प्रतिमा बन खड़े हुए तो, जल उठता है मरे मित्र का प्रेत, भूलता वैर नहीं है" कहकर कवि ने नेताओं पर व्यंग्य भी किया है ।

देश की वर्तमान दशा से कवि पूर्ण रूप से परिचित थे । आज देश का अंग अंग जल रहा है । भारतमाता कंगाल हुई है । शासक जनता को दिये हुए वचनों को भूलकर भोग विलास में निमग्न होकर प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं । "दिल्ली" संग्रह की चार कवितायें वर्तमान राजनीति पर प्रकाश डालनेवाली है । "है कपिलवस्तु पर फूलों का श्रृंगार पडा, रथ-समारूढ सिद्धार्थ घूमने जाते हैं" जैसा तीखा व्यंग्य दिनकर की कविता की विशेषता है ।

---

1. नये सुभाषित, पृ.20

क्रांति भावना

स्वतंत्र भारत से सम्बन्धित हमारे सपनों को साकार कराने केलिये दिनकर ने क्रांति आवश्यक मानी । बडी से बडी सिद्धी का कारण केवल एक अंश तलवार है । उसका तीन अंश संकल्प शुद्धि है, आशा, साहस और शुद्ध विचार है । दिनकर की क्रांति-भावना हमेशा रक्त रूषित या सशस्त्र क्रांति नहीं रहती - अहिंसात्मक क्रांति है । जनता की शक्ति में कवि ने विश्वास रखा था ।

अत्याचारियों को दिनकर ने चेतावनी भी दी है कि 'सब दिन तो यह मोहिनी न चलनेवाली है । मिट्टी फिर आग उगलनेवाली है । एक दिन ज़रूर क्रांति होगी ।

पूँजीवाद का विरोध

बचपन से ही धनाभाव से पीडित कवि सदा शोषित और पीडित जन के साथ रहे । पूँजीवाद ने गरीबी और शोषण को जन्म दिया । इसलिये दिनकर ने इसका विरोध किया । उनकी 'काँटों का गीत', "नींव का हाहाकार", 'भूदान', 'स्वर्ग के दीपक", 'पंचतिक्त' आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । इनमें उन्होंने पूँजीवाद का विरोध किया है, धनवानों पर व्यंग्य किया है और उच्च वर्ग को उनके अंतिम दिन के आने की चेतावनी भी दी है । जैसे -

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.50

मिट्टीवाले बँधकर कतार में चला करें,
हम को क्या ? हम तो अमरलोक के वासी है;
अम्बर पर कब मरनेवालों की रीति चली ?
सुरपति होकर भी इन्द्र प्रसिद्ध विलासी है[1] ।

वर्ग वैषम्य

उच्च और निम्न वर्ग के बीच बडी खाई होती है । एक ओर गरीबी और शोषण कुत्र चलते हैं तो दूसरी ओर विलासिता का नंगा नृत्य होता है -

कहीं दूध के बिना तरसती मानव की संतान,
कहीं क्षीर के मटके खाली करते जाते श्वान ।
कहीं वसन रेशम के सस्ते, महँगी कहीं लंगोटी,
कोई घी में नहा रहा, मिलती न किसी को रोटी[2] ।

कवि ने धनवालों का ध्यान भूमिहीन कृषकों की बडी सेना की ओर आकृष्ट किया है । उन्होंने विनोबा के भूदान का समर्थन किया है ।

यह सुविदित बात है कि उच्च वर्ग स्वेच्छा से शोषित को मुक्ति नहीं देंगे । इसलिये संघर्ष आवश्यक बन जायेगा । इसकेलिये कवि ने शोषित वर्ग को अपने अधिकारों को पाने केलिये सचेत कराया है ।

1· नीलकुसुम, पृ·60

2· वही, पृ·93

उनकी राय में चुपके चुपके आहें भरकर जीना सही नहीं। अब गाँवों में मिक्षु और दिल्ली में कोई दानी नहीं है। हम किसी के दास नहीं, स्वाधीन देश के प्राणी हैं। आज़ादी केवल अपनी सरकार बनना मात्र नहीं, उसके विरुद्ध खुलकर विद्रोह मचाना भी है[1]। जो शीतल प्रमाद से ऊँध रहे हैं, उन सुविधाभोगियों की मखमली मेज पर चिनगारी की वृष्टि करने के लिये[2] कवि ने जनता को प्रेरणा देने का प्रयत्न किया है। क्रांति पर उनका विश्वास निम्नलिखित कविता में देखा जा सकता है -

मैं देख रहा हूँ शैल उलट कर गिरते हैं,
सागर का जल ऊपर को भागा जाता है,
x x x x x x
जादू-टोने से हवा न बाँधी जायगी,
लाकर कतार के भीतर तुम्हें खड़ा करने
रुई के पुतलो ! निश्चय, आँधी आयेगी[3]।

समाजवाद की स्थापना

वर्ग वैषम्य को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना कवि का लक्ष्य था। आर्थिक वैषम्य और वर्ग संघर्ष को दूर करने के लिये दिनकर ने कर्म की सक्रियता पर ज़ोर दिया। रूस या अमरीका के अन्धानुकरण करने के वे विरोधी थे। उन्होंने भारतीय समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाया है।

---

1. नीम के पत्ते, पृ॰5
2. नील कुसुम, पृ॰79
3. वही, पृ॰61

मानवतावाद

दिनकर ने समाज की सारी समस्याओं के समाधान स्वरूप मानवता को प्रतिष्ठित करना चाहा । वर्तमान युग में अर्थ की प्रमुखता और विज्ञान के चमत्कार के कारण मानवता की गति अवरुद्ध हो रही है । भौतिकता के आकर्षण ने व्यक्ति को स्वार्थी बना दिया है । दिनकर ने अति भौतिकता का विरोध प्रकट किया है । जब जब पशुता उभर आती है तब मानवता दब जाती है । मनुष्य की स्थिति आज उपयोगिता और अनुपयोगिता के बीच है ।

दिनकर ने भारत को 'मनुष्य जाति की बहुत बडी कविता' कही । भारतीय, प्रेम, सत्य, शांति और न्याय के दूत है । जहाँ शांति की घोषणा होती है, वह स्वर भारत का है । जिसके भी कर में धर्म का दीप है, वह नर भारत पुत्र है । सत्य पर अडनेवाला वीर और न्याय केलिये प्राण अर्पित करनेवाला सपूत भारत का है । "मानवता के इस ललाट चन्दन को नमन करूँ मैं[1]" कहकर भारत के मानवतावाद पर कवि ने अपना आदर प्रकट किया है । लेकिन दुख की बात है कि आज भी पशुता के कई रूप ज्यों का त्यों मानव मन में भरे हुए हैं । इसलिये दिनकर ने लिखा -

> बिक रही आग के मोल आज हर जिन्स मगर,
> अफसोस, आदमीयत की ही कीमत न रही[2] ।

कवि का विश्वास था कि, भौतिकता से आक्रांत, युद्ध जर्जरित विश्व को शांति और मानवता की दिव्य ज्योति भारतवर्ष ही दे सकेगी ।

---

1. नीलकुसुम, पृ. 83
2. नीम के पत्ते, पृ. 18

जीवन की यांत्रिकता का विरोध

विज्ञान हमारी भौतिक उन्नति कर रहा है । लेकिन कोरी भौतिकता या कोरे विज्ञान के ऊपर सब कुछ सौंप देना उचित नहीं । आज मनुष्य अधिक लोभी बन गया है । यह लोभ उसे मारेगा । कवि की दृष्टि में मनुष्य और किसी से नहीं अपने ही आविष्कार से हारेगा । मनुष्य केवल शरीर नहीं, आत्मा भी है । मशीनों को लाख समझाने पर भी वे आत्मा को नहीं पहचानती है ।

आज विज्ञान शिशु के हाथ में तलवार के समान है । विज्ञान को हमारा मालिक नहीं बनाना चाहिए ।

भोगेंगे सुख, पर, भोगासुर के न ग्रास हम होंगे
यंत्र चलायेंगे, पर, यंत्रों का न दास हम होंगे ।
अति-लोभी जो भृत्य, वही होता गुलाम स्वामी का,
यही हाल है लोभ-ग्रस्त मानव विलास कामी का ।
जब तक नित्य नवीन सुखों की प्यासी बनी रहेगी,
मानवता तब तक मशीन की दासी बनी रहेगी ।

परम्परा के प्रति मोह तथा रूढ़ि-विरोध

स्वतंत्र भारत की स्थिति को देखकर क्षोभ और निराशा से कवि ने अतीत की सुवर्ण स्मृतियों में खो जाना चाहा । भगवान बुद्ध, सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त आदि इतिहास पुरुषों का स्मरण करते हुए कवि ने भारत के गत गौरव को वापस लाना चाहा । लेकिन दुख की बात है कि उधार लिये गये आदर्शों पर चलकर हम अपना सारा इतिहास भूल गये हैं ।

हमारी सामाजिक स्थिति कुछ इस प्रकार की बन गयी है कि बिना पशु हुए आज कौन जीने देता है ? युवा पीढी परम्परा की होलिका जला रही है । दिनकर की राय में परम्परा को अन्धी लाठी से पीटना गलत है । क्योंकि उसमें जीवित और जीवन दायक बहुत कुछ है ।

परम्परा के प्रति प्रेम लगानेवाले कवि ने उसके मृत अंशों का तिरस्कार भी किया है ।

आग लगी है, तो सूखी टहनियों को जलने दो ।
मगर जो टहनियाँ आज भी कच्ची और हरी है
उन पर तो तरस खाओ[1] ।

यहाँ सूखी टहनी रूढि का और हरी और कच्ची टहनी परम्परा का प्रतीक है । परम्परा के प्राणवान अंशों की रक्षा करना आवश्यक है, क्योंकि परंपरा जब लुप्त होती है, तो लोगों की आस्था का आधार टूट जाता है और उखडे हुए पेडों के समान वे अपनी जडों से छूट जाते हैं ।

दिनकर की "सूख चुकी जो स्वयं, शीर्ण उस शाखा को जलने दो,"[2] "विशीर्ण डालियाँ महीरुहों की टूटने लगी"[3] जैसी पंक्तियाँ रूढियों के विरोध व्यक्त करनेवाली है ।

1·2·कोयला और कवित्व, पृ·44
3· परशुराम की प्रतीक्षा, पृ·35

युद्ध एवं शांति

द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषणता देख कर युद्ध के प्रति कवि की आस्था छिन गयी। "नहीं चाहता युद्ध, लडाई" कहकर उन्होंने युद्ध का विरोध प्रकट किया। युद्ध यह नहीं सोचता है कि कौन किसका द्रोही है। मानवता का ध्वंस उसका ध्येय है। शस्त्र जहाँ रहते हैं, हिंसा वहीं होती है। इसलिये दिनकर ने अहिंसा और शांति का उपदेश दिया।

सकुच गये यदि हम अहिंस्र
हिंसा के हाहाकार मे,
कौन बचा पायेगा
गाँधी को पशुओं की मार से ?[1]

युद्ध के दुष्परिणामों की ओर कवि ने मानवता का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। युद्ध और हिंसा सदा माताओं को शोक देती है, युवतियों को विषाद में डुबा जाती है, बच्चों को अनाथ बनाते हैं। अणु की विनाशकारी प्रवृत्ति को जाननेवाले कवि ने अणु परीक्षण करनेवाले देशों पर व्यंग्य किया है -

वही स्वतंत्र है, जो समर्थ है,
परमाणु-बम जो नहीं तो सब व्यर्थ है[2]।

दिनकर की राय में युद्ध में शांति केलिये समझौता करना उस प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार ज्वर में सिर पर बर्फ रखा करते हैं।

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.46
2. वही, पृ.67

बर्फ से ज्वर की शांति नहीं होगी । हिम को ज्वर की दवा समझना भ्रान्ति है । युद्ध इस पृथ्वी को मरघट बनाता है । वह मनुष्य के मन को विद्वेष, घृणा और तृष्णा से भरता है, लूट, चोरी आदि की प्रेरणा देता है । इस पृथ्वी पर शांति तब उतरेगी जब मनुज का मन कोमल होगा और जहाँ आज गरल है वहाँ शीतल गंगाजल होगा[1] ।

युद्ध से सम्बन्धित दिनकर का दृष्टिकोण उल्लेखनीय है । युद्ध का विरोध करनेवाले, अहिंसावादी कवि को कुछ खास संदर्भों में युद्ध का समर्थन करते देखा जा सकता है । 'देंगे जान, नहीं ईमान' यही हमारी संस्कृति है । भारत शांति का दूत है । लेकिन यदि शत्रु आये तो हम उसके वक्ष का लहू पीनेवाले भी हैं ।

हम हैं शिवा-प्रताप रोटियाँ भले घास की खायेंगे,
मगर, किसी जुल्मी के आगे, मस्तक नहीं झुकायेंगे[2] ।

अहिंसा को अगर परम धर्म मानता है, तो हिंसा को आपद्धर्म मानना ही पड़ेगा । आपद्धर्म के रूप में युद्ध करना कोई दोष नहीं ।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी शिक्षा प्रणाली में कई प्रकार के परिवर्तन आये । आज विद्यार्थियों का लक्ष्य पढ़ने के अतिरिक्त और कुछ हो गया है । विद्या यहाँ धन की दासी बन गई है । स्कूलों में अनुशासन लंगड़ा हुआ बिलखाता है । भावी नेताओं के समूह कर्णभेदी प्रचंड कोलाहल में हड़ताल करता है । जैसे -

---

1. नीलकुसुम, पृ.106
2. नीम के पत्ते, पृ.39

और छात्र बडे पुरज़ोर है,
कालिजों में सीखने को आये तोड फोड है ।
कहते हैं, पाप है समाज में,
धिक्क् हम पे ! जो कभी पढें इस राज में ।
अभी पढने का क्या सवाल है ?
अभी तो हमारा धर्म एक हड्ताल है[1] ।

धार्मिक चेतना

आध्यात्मिक चैतन्य भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है । लेकिन विज्ञान के चमत्कार में आज धर्म का महत्व कम होता जा रहा है । "जो कुछ था नापने योग्य, नप चुका गणित से, किंतु गणित के फार्मूलों से ईश्वर सिद्ध न होगा ।" दिनकर ने इस दृश्य जगत को ईश्वर का प्रतिबिम्ब माना है ।" विज्ञान" कविता में उन्होंने लिखा -

जितनी खुशी मुझे मानव की अंतरिक्ष की जय मे,
उससे बढकर हर्ष भौतिकी की नम्रता, विनय मे[2] ।

विज्ञान उपयोगी है । लेकिन सबका मालिक ईश्वर है । दिनकर की दृष्टि में धर्म और विज्ञान परस्पर शत्रु नहीं । इसमें एक सत्य और अपर मृषा - ऐसी कोई बात नहीं है । वर्षों के कठिन परिश्रम से मनुष्य ने जिस ज्ञान का अर्जन किया था वह बहुत श्रेष्ठ है । और उतना ही श्रेष्ठ वह धारा भी है जो अनंत सदियों से जन मन में भावना-रूप बहती आयी है ।

---

1. परशुराम की प्रतीक्षा, पृ.63
2. कोयला और कवित्व, पृ.38

निरा ज्ञान हिमशिला के समान है । निरी भावना बाष्प के समान है । नर का जीवनस्रोत शुभ्र पानीय तरल है । इसलिये हिम को गलना चाहिए और बाष्प को सलिल के रूप में ढलना चाहिए।[1] धर्म और विज्ञान के समन्वय से मानव कल्याण होगा । यही कवि का विश्वास था -

एक हाथ में कमल, एक में धर्म दीप्त विज्ञान,
लेकर उठनेवाला है धरती पर हिन्दुस्तान।[2]

धर्म और विज्ञान के समन्वय की यह प्रवृत्ति विवेच्य युग में दिनकर के अतिरिक्त पंत और बच्चन की कविताओं में देखी जा सकती है ।

निष्कर्ष

राष्ट्रकवि दिनकर समाज और जीवन का यथार्थ चित्रण करनेवाले कवि थे । 'मन की उमंग पर जंजीरें और तन के ऊपर एक लंगोटी पहनकर, हाथों में सूखी रोटी लेकर पतझड के बरगद के समान सूखी हड्डी पर तना हुआ[3], स्वतंत्र भारत की आम जनता के प्रतिनिधि के रूप में विवेच्य युगीन कवियों में दिनकर का श्रेष्ठ स्थान होता है । उन्होंने राजनीति और संस्कृति पर ज्यादा विचार किया है । "परशुराम की प्रतीक्षा", "जनता जगी हुई है", "लोहे के मर्द", "आज कसौटी पर गांधी की आग है", "आपद्धर्म" आदि कवितायें चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया व्यक्त करने केलिये लिखी गयी हैं जिनमें दिनकर ने जनता को युद्ध केलिये प्रेरणा दी है । भूख, गरीबी, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी आदि से ऊबकर कवि ने वर्तमान भारत को ज्वर ग्रसित मरीज

---

1. कोयला और कवित्व, पृ.59
2. मृत्ति तिलक, पृ.2
3. दिल्ली, पृ.14-18

कहा । शासन से जुड़े रहने पर भी उन्होंने सरकार और नेताओं की खूब आलोचना की है । "एनार्की," "सपनों का धुआँ," "नेता," "जनतंत्र का जन्म," "हक की पुकार," "भारत का यह रेशमी नगर," "दिल्ली" आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है ।

दो विश्वयुद्धों में भीषण नरसंहार देखनेवाले कवि ने शांति की स्थापना पर ज़ोर दिया है । युद्ध के विरोधी होने पर भी दिनकर आपद्धर्म के रूप में युद्ध को स्वीकार करने के पक्षपाती थे । समाज की सारी समस्याओं के समाधान स्वरूप उन्होंने मानवता को प्रतिष्ठित करना आवश्यक बताया है । दिनकर की धार्मिक चेतना उल्लेखनीय है । उन्होंने पंत और बच्चन के समान धर्म और विज्ञान के समन्वय पर ज़ोर दिया ।

शमशेर

शमशेर का जन्म देहरादून के एक मध्यवर्गी य जाट परिवार में सन् 1911 में हुआ था । देश की समस्त गतिविधियों को अपनी आँखों से देखने का अवसर उनको मिला । उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा व्यक्ति सीमा में ही सामाजिक चेतना और विश्व-कल्याण की भावना को आत्मसात करने का प्रयत्न किया । कला जीवन का सच्चा दर्पण है । कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज़ नहीं हो सकती और इतिहास आज इन संघर्षों का साथ दे रहा है[1] । शमशेर की कवितायें सामाजिक संघर्ष से एकदम अछूत नहीं रहीं । उनकी कवितायें युगानुभूति से कटकर नहीं चलती है। उनके "कुछ कवितायें", "कुछ और कवितायें", "चुका भी हूँ नहीं मैं" आदि तीन काव्य संग्रहों और "दूसरा सप्तक" में प्रकाशित उनकी कविताओं का अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है ।

सामाजिक चेतना

शमशेर कविता को जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध माननेवाले कवि हैं । दैनंदिन जीवन के अनुभवों को उन्होंने सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है । उनकी कविताओं का प्रेरणा स्रोत समष्टि है । उनकेलिये कविता एक प्रकार से धरती का पद्य है । धरती का पद्य, यादों की पुस्तक, आँसू जो आकाश के फूल बन गए हों और इन सबका शाब्दिक रूपांतरण ही उनकी कविता है -

---

1. शमशेर - दूसरा सप्तक - वक्तव्य, पृ.77

तुमने धरती का पद्य पढ़ा है ?
उसकी सहजता प्राण है ।
तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है ?
जब यादें मिटती हुई एकाएक स्पष्ट हो गयी हों ?
जब आँसू छलक न जाकर
आकाश का फूल बन गया हो ?
वह मेरी कविताओं सा मुझे लगेगा[1] ।

शमशेर ने अपनी कविताओं में नये शिल्प के द्वारा समकालीन गतिविधियों और सामयिक भावनाओं को अभिव्यक्त किया है । अजनबीपन, कुंठा, अलगाव, ऐकान्तिकता आदि व्यक्तिगत समस्यायें ही हैं लेकिन इन व्यक्तिगत समस्याओं के पीछे सामाजिक मूल्यहीनता पायी जाती है जो राजनीतिक दिवालियापन और अस्थिरता की उपज है । शमशेर काव्य-कला समेत जीवन के सारे व्यापार को एक लीला समझते हैं जो मनुष्य के सामाजिक जीवन के उत्कर्ष केलिये निरंतर संघर्ष की ही लीला है[2]। वे कविता में सामाजिक अनुभूति को काव्य पक्ष के अंतर्गत ही महत्वपूर्ण समझते हैं । अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा - "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आंतरिक संस्कारों में समाज सत्य के मर्म को ढालना उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो। कला कैलेंडर की चीज़ नहीं है । वह कलाकार की अपनी बहुत निजी चीज है । जितनी ही अधिक वह उसकी अपनी निजी है, उतनी ही कालान्तर में वह औरों की भी हो सकती है - अगर वह सच्ची है, कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों ओर से[3]।

---

1. {सम्पादक} सर्वेश्वर - शमशेर, पृ०100
2. शमशेर - कुछ भी हूँ नहीं मैं - भूमिका
3. शमशेर - कुछ और कवितायें - भूमिका

शमशेर की कविता में व्यक्ति समाज का पूरक है । उन्होंने युगीन संवेदना को वाणी दी है । जैसे -

दैन्य दानव काल / भीषण क्रूर
स्थिति, कंगाल / बुद्धि: घर मज़दूर ।
सत्य का क्या रंग / पूछो एक संग
एक: जनता का / दु:ख एक
हवा में उड़ती पताकायें / अनेक
दैन्य दानव ! क्रूर स्थिति ।
कंगाल बुद्धि ! मजूर घर भर ।
एक जनता का अमर वर
एकता का स्वर
अन्यथा स्वातंत्र्य इति[1] ।

जीवन का यथार्थ चित्रण

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य पर विचार करते समय डॉ॰बेचन ने लिखा है कि "आधुनिक कवियों में यह सबसे बड़ा गुण है कि वे सच्चाई को स्वीकारने की चेष्टा कर रहे हैं । आधुनिक कविता का श्रेष्ठ कवि वही हो सकता है जो सच्चाई को स्वीकारे[2] ।" शमशेर ने अपने चारों ओर की जिन्दगी का, मानवीय सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है । उनका यथार्थ बोध सत्य तक पहुँचाने का सोपान है क्योंकि यथार्थ से ही हम क्रमश: सत्य के गहरे रूप से साक्षात्कार करते हैं । प्रेम की अनुभूतियों को भी उन्होंने मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है ।

---

1. शमशेर - कुछ और कवितायें पृ॰84
2. डॉ॰बेचन स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ॰16-17

शोषित जनता के प्रति सहानुभूति

सींग और नाखून वाले सत्ताधारियों के सामने दुविधाग्रस्त शोषित और पीड़ित मजदूरों और किसानों के प्रति शमशेर ने सहानुभूति व्यक्त की है । सन् 1935-42 तक शमशेर को विकट आर्थिक अस्थिरता, गहन निराशा और एकाकीपन का सामना करना पड़ा । पत्नी की मृत्यु, विद्यार्थी जीवन की असंतोषजनक समाप्ति आदि संकटों को उनको झेलना पड़ा । इसलिये वे अंतर्मुखी हो गये । शोषित जनता के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति का कारण शायद यह होगा ।

शमशेर ने अपने को मध्यवर्ग का व्यक्ति कहकर मध्यवर्ग के दयनीय जीवन को इस प्रकार चित्रित किया है -

ओ मध्यवर्ग
तू क्यों क्यों कैसे लुट गया
दसों दिशाओं की भी दसों दिशाओं की भी
दसों दि... शा ओं / में /
तू कहां है कहीं भी तो नहीं
इति दास में भी तू
असहनीय रूप से दयनीय / असहनीय
न-कुछ न-कुछ न-कुछ .... ।[1]

'जिन्दगी है मेरी सरकार का दफ्तर अब तो'[2] ! कह कर कवि ने मध्यवर्गीय नौकरीपेशा आदमी की सारी व्यथाओं को वाणी दी है ।

---

1. चुका भी हूं नहीं मैं, पृ.70
2. कुछ और कवितायें, पृ.111

समाजवाद

शमशेर भारत केलिये साम्यवादी व्यवस्था को योग्य मानते हैं। ऊँच नीच के भेद भाव को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना उनकी दृष्टि में आज आवश्यक है -

साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे
ऊँच नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती[1]।

राजनीतिक चेतना

शमशेर ने हमारी वर्तमान राजनीति को यांत्रिक राजनीति कहा। नयी नयी आनेवाली सरकारें और जनता को भूल जानेवाले नेताओं का चित्रण करके कवि ने वर्तमान राजनीति का सच्चा परिचय दिया है। जैसे -

सरकारें पलटती हैं जहाँ हम दर्द से करवट बदलते हैं,
हमारे अपने नेता भूल जाते हैं हमें जब,
भूल जाता है जमाना भी उन्हें, हम भूल जाते हैं उन्हें खुद।
और तब / इन्किलाब आता है उनके दौर को गुम करने[2]।

---

1. दूसरा सप्तक, पृ.98
2. कुछ और कवितायें, पृ.90

देश-प्रेम

अमित प्रेम से भारत की आरती उतारनेवाले कवि ने स्वतंत्रता प्राप्ति के अपूर्व शुभ क्षण में जन गण मन का मंगल गीत गाकर अपनी देश भक्ति का परिचय दिया है । भारत की पुण्य भूमि पर कवि को गर्व करते दिखाई पड़ता है -

यह किसान कमकर की भूमि है ।
पावन बलिदानों की भूमि है
भव के अरमानों की भूमि है[1] ।

भारत-चीन युद्ध के सन्दर्भ में लिखी गयी कविताओं में उनकी देश-भक्ति स्पष्ट दिखायी पड़ती है ।

सांस्कृतिक चेतना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे समाज में जिन मूल्यों का विघटन हुआ उनको लेकर गहरी व्यथा शमशेर की कविताओं में पायी जाती है । उन मूल्यों की पुन: स्थापना करने का आग्रह भी उन्होंने व्यक्त किया है । सत्य, अहिंसा, न्याय आदि मूल्यों पर उनको विश्वास है । इसलिये उन्होंने लिखा "यह धरती अपनी जिस कीली पर घूम रही है, वह सत्य है[2] । और -

---

1. दूसरा सप्तक, पृ॰98
2. चुका भी हूँ नहीं मैं, पृ॰40

झूठ के पाँव नहीं होते !
सत्य की जबान बन्द हो,
फिर भी वह गरजता है !
सत्य की कसी हुई मुट्ठियाँ सहसा खुलती है
तो आँधियाँ आती है :
जो एटामिक मोर्चों को भी आखिरकार
उड़ा ले जाती है[1] ।

उनकी 'अमन का राग' कविता शमशेर की सांस्कृतिक चेतना का उत्तम उदाहरण है । आर्ष संस्कृति के प्रति प्रेम, विश्व की अन्य संस्कृतियों से समन्वय की भावना, विश्व के महान रचनाकारों के प्रति संवेदनशीलता आदि शमशेर की कविता की विशेषतायें हैं -

ये पूरब-पश्छिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैं ने एशिया की सतरंगी किरणों को अपनी
दिशाओं के गिर्द लपेट लिया
और मैं योरप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव पर
बहुत होले-होले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं[2] ।

परम्परा को स्वीकार करते हुए भी वे आधुनिकता का विरोधी नहीं है । उनकी कविताओं में परम्परा और आधुनिकता का सहज मेल देखा जा सकता है । साथ ही उन्होंने रूढ़ियों का विरोध भी किया है ।

---

1. चुका भी हूँ नहीं मैं, पृ.40
2. कुछ और कवितायें, पृ.98

युद्ध एवं शांति

द्वितीय विश्वयुद्ध के व्यापक नर संहार ने शमशेर के संवेदनशील मन को मानव सभ्यता और उनके मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाने केलिए विवश कराया । आज एक तीसरे विश्वयुद्ध की भीषणता हमारे ऊपर छायी हुई है । इसके बीच भी शमशेर शांति की पवित्रतम आत्मा की पूजा करते हैं । विश्व-मैत्री और मानवतावादी चेतना उनकी कविताओं में देखी जा सकती है । "विश्व मैत्री की संवेदनाओं को लेकर शमशेर केमानचित्र अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर जिस भंगिमा के साथ अंकित का आत्मसात करते हैं वह स्पृहणीय है[1] ।" शमशेर की निम्नलिखित कविता इस तथ्य से खूब साक्षात्कार कराती है -

हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बडा हर नया-पुराना हर आज-कल परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है[2] ।

निष्कर्ष

यद्यपि शमशेर ने वैयक्तिक लालसा और अतृप्ति पर अंकित कई कवितायें लिखी हैं, और उनकी "एक मुद्रा में", "मैं सुहाग हूँ" जैसी कई कविताओं में मांसल प्रणय तथा उपभोग के जीवन्त चित्र उभरे हैं, फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बादलिखी गयी अधिकांश कवितायें सामाजिक चेतना से

---

1. संतोष कुमार तिवारी - नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, पृ.28
2. कुछ और कवितायें, पृ.99-100

भरी हुई है । वैयक्तिक पीडायें, सामाजिक विसंगतियां, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्यायें, शोषित-पीड़ित जनता की आहें सभी ने उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति पायी है । उनकी "अमन का राग", "हमारे दिल सुलगाते हैं," "न पलटना उधर," "टूटी हुई, बिखरी हुई," "भुवनेश्वर" जैसी कवितायें सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली रचनायें कही जा सकती हैं । शमशेर ने अभिव्यक्ति केलिये शिल्प के नये नये प्रयोग किये हैं जो उनकी मौलिक उपलब्धि है ।

देश और विदेश के अनेक साहित्यकारों और चित्रकारों का प्रभाव शमशेर पर पडा है । एजरा पाउण्ड, टैनिसन, इकबाल, निराला, मयकोवस्की आदि कलाकारों का प्रभाव इनकी कविताओं में देखा जा सकता है । उनकी कविताओं में नारेबाजी या एकांगिता नहीं है । वे समाजवादी समाज में विश्वास रखते हैं । लेकिन हिंसक संघर्ष का मार्ग उन्हें स्वीकार नहीं है । विवेच्य युगीन कवियों में शमशेर अपना अलग स्थान रखता है ।

अज्ञेय

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार अज्ञेय कवि उपन्यासकार, आलोचक एवं सम्पादक के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में प्रख्यात है । वे अच्छे अनुवादक भी रहे । आपकी कविताओं में पूर्व और पश्चिम का प्रभाव देखा जा सकता है । इसके बारे में कवि की स्वीकारोक्ति इस प्रकार है - "बन्द घर में प्रकाश पूर्व या पश्चिम या किसी भी निश्चित दिशा से आता है । पर खुले आकाश में वह सभी ओर से समाया रहता है, इसी में उसका आकाशत्व है । उसी खुले आकाश को अपनी बाँहों में भर सके, यह लेखक का स्वप्न रहा है ।[1]"

प्रयोगवाद के समर्थक एवं नयी कविता के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय हिन्दी साहित्य में जाने जाते हैं । लेकिन 'तारसप्तक' के प्रकाशन के बाद, 'हरी घास पर क्षण भर' तक आते आते उनकी मान्यतायें बदली और उनकी परवर्ती यानी स्वातंत्र्योत्तर कवितायें सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत दिखायी पड़ती हैं ।

अज्ञेय की कविताओं की विषय सीमा बहुत विस्तृत है । "इस धारा के कवियों में अज्ञेय का स्वर सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण है । उनका स्वर अहं से लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर दर्शन तक, आदिम गन्ध से लेकर विज्ञान की चेतना तक, यंत्र सभ्यता से लेकर लोक परिवेशों तक यातना बोध से लेकर विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति सौन्दर्य से लेकर मानव-सौन्दर्य तक फैला हुआ है[2] ।"

सामाजिक चेतना

अज्ञेय की कवितायें 'युग-तरि का अप्रतिहत स्वर' कही जा सकती है । कोरी कल्पना के आसमान पर उडना उन्होंने पसन्द नहीं किया । 'मैं धरती से बंधा हुआ हूं' - उनका विचार यह था ।

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो[1] ।

जैसी पंक्तियां उनकी समष्टि चेतना को व्यक्त करने वाली हैं । उनकी 'बावरा अहेरी' कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कविता है । भोर का बावरा अहेरी उदय सूर्य है । वह आलोक की लाल लाल कनियां बिछाता है । जब वह अपने जाल को खींचता है तो सभी को साथ बांध लेता है - गोधूली की धूल, मोटरों के धुएँ, धुआं उगलनेवाली चिमनियां सभी । इसी प्रकार आपकी कवितायें समाज के सारे पहलुओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास ही है । कवि केलिए कुछ भी वर्ज्य नहीं -

बावरा अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे[2] ।

सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों से धरती की सारी वस्तुओं को प्रकाशमान कराता है उसी प्रकार कवि को भी अपनी कविताओं से समाज को आलोकित कराना चाहिए । यही कवि का मत था ।

---

1. बावरा अहेरी, पृ॰62-63
2. वही, पृ॰16-17

कृतियाँ दूसरों की याद करने केलिये है । इसलिये उसको हमेशा समाज सापेक्ष बनना चाहिए । अज्ञेय ने कवि को सेतु कहा है जो वर्तमान और भविष्य को मिलाता है -

मैं सेतु हूँ
जो है और जो होगा दोनों को मिलाता हूँ[1] ।

अज्ञेय ने अपने को समाज का प्रतिनिधि माना है - "मैं प्रतिभू हूँ, मैं प्रतिनिधि हूँ, मैं सन्देश वाहक हूँ[2] ।"

आज़ादी के बीस बरस निकल गये, लेकिन हमें कुछ नहीं मिला । यह दुख उनकी "आजादी के बीस बरस" कविता में मुखरित होता है । व्यंग्य का सहारा लेकर कवि ने इस कविता में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की सही आलोचना की है -

सोलह कलाएँ - हाँ, कह लो, कलायें
ऊपर चोरी, चापलूसी,
सेंध मारना, जुआखोरी,
लल्लोपत्तो और लबारियत
ये सब पारम्परिक कलायें थीं
आज़ादी के बीस बरस क्यों, बीस पीढ़ी पहले की[3] !

भूख लगते ही सबको दान और श्रद्धा का उपदेश देनेवाला ब्राह्मन, खुदा को ले जानेवाले चोर, हर मामला फँसाने के काम में बेतरह

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.19
2. वही, पृ.36-37
3. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, पृ.12-13

फँसे हुए कायस्थ, खुलकर दूध में पानी मिलानेवाला, खून पीनेवाला शोषक, प्रजातंत्र की खाट सिर पर लेकर बेचने जानेवाले जाट, सभी अज्ञेय की कविता में जीवित रहते हैं ।

प्राणहीन, सारहीन रचना से उन्होंने सार्थक मौन अच्छा माना है । उनकी कवितायें अनुभव की भट्टि में तपे हुए कण हैं । उनकी दृष्टि में शब्द के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति करना कवि का कर्तव्य है ।

देश की गरीबी का चित्रण

देश की गरीबी ने सदा कवि को सताया था । देश समृद्ध है, लेकिन देश वासी गरीब है। "क्योंकि मैं", "हरा-भरा है देश" जैसी कविताओं में कवि ने देश की गरीबी का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है । जैसे -

हरे-भरे हैं खेत
मगर खलिहान नहीं
बहुत महतों का मान -
मगर दो मुट्ठी धान नहीं ।
xx xx xx
भरी हैं आँखें
पर पेट नहीं
भरे हैं बनिये के कागज
टेंट नहीं ।[1]

---

1. अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ.41-42

शोषित जन के प्रति सहानुभूति

अज्ञेय की कवितायें किसानों की साधना है, कुटिया में रहकर महलों को बनानेवाले श्रमिक वर्ग की आस्था, चाकरी करके सरकार को चलानेवालों की व्यथा है । जो कचरा ढोता है, जो झल्ली लिये फिरता है और बेघरा घूरे पर सोता है, जो गदहे की तरह अपना जीवन बिताते हैं, जो कीचड उलीचती है, जो कन्धे पर चूडियों की पोटली लिये गली - गली झाँकती है, जो दूसरों का उतारन फींचती है, जो रद्दी बटोरता है उन सभी के मन में जो सुप्त व्यथा है, उसको वाणी देने का प्रयास अज्ञेय ने किया है । पापड बेलनेवाला, बीडी लपेटनेवाला, बासन माँजनेवाली, रुई धुननेवाले, रिक्शा वाले आदि समाज की निम्न श्रेणी के लोगों के जीवन को भी अज्ञेय ने अपनी कविता का विषय बनाया ।

विवेच्य युग के अन्य कवियों ने मोटेतौर पर श्रमिक और मजदूर वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति और अपना प्रेम प्रकट किया है । वहाँ अज्ञेय की दृष्टि समाज के निम्न श्रेणी के सभी व्यक्तियों पर पडी है । उनके ही शब्दों में -

पीडित, श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा -
उसकी मैं कथा हूँ ।[1]

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.20

अज्ञेय यायावरी मनोवृत्ति का आदमी था । उन्होंने देखा कि देश-विदेश में श्रमिक वर्ग की कमर झुकी हुई है । जो शासक है उसकी दृष्टि मन्द है, उनकी आँखों पर जो मोटा चश्मा चढा हुआ है वह प्राय: धूमिल भी होता है । अज्ञेय ने "औद्योगिक बस्ती" कविता में धुआँ उगलती चिमनियों के चित्र के साथ ही श्रमिक वर्ग की विषमताओं को भी वाणी दी है -

भीतर जलते लाल धातु के साथ
कमकरों की दुसाध्य विषमतायें भी
तप्त उबलती जाती है ।

उनकी "केले का पेड" कविता में केले का पेड शोषित वर्ग का प्रतीक है । उसके फूल, फल, डण्ठल, जड सभी खाने के काम आते हैं । उसका पूर्ण उपयोग किया जाता है । इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति उसमें अब तक नहीं आयी । इस बात पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि -

ओ केले के पेड, क्यों नहीं भगवान ने तुझे रीढ दी
कि कभी तू अपने ही काम आता -
चाहे तुझेबाँधकर तुझ पर न भी झुलाता
हर समय मृत आशा शिशु ?
तू एक बार तन कर खडा तो होता
मेरे लुजलुज भारतवासी ।[1]

---

1. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, पृ.34

वर्ग वैषम्य

अज्ञेय के विचारानुसार शोषक इसलिये गरीबों का शोषण करते हैं कि उन्हें यह निश्चित है कि अपनी ओर कोई उंगली नहीं उठायेगा । दूसरी ओर शोषित अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी नहीं है ।

सागर और गिरगिट के प्रतीकों के माध्यम से कवि ने समाज के वर्ग वैषम्य को चित्रित किया है । दोनों का काम एक ही है-रंग बदलना । फिर भी सागर को पूजा मिलती है । गिरगिट उपेक्षित और कुत्सित हो जाता है ।

'अन्तःसलिला' कविता में कवि ने 'रेत और नदी' के प्रतीक द्वारा आर्थिक वैषम्य को चित्रित किया है । रेत शोषक का और नदी शोषित का प्रतीक है -

सूखी रेत का विस्तार -
नदी जिसमें खो गयी
कृश धार ।[1]

भू, 'बाँगर और खादर' आदि कविताओं में भी कवि ने प्रतीकों के माध्यम से वर्ग वैषम्य को चित्रित किया है । जैसे -

बाँगर का कुआँ / गाजाजी का अपना है,
लोक-जन केलिए एक / कहानी है, सपना है ।

---

1. आँगन के पार द्वार, पृ.34

मादर की नदी नहीं / किसी की बपौती की,
पुरवे के हर खेवे को / गंगा है अपनी कठौती की[1]।

अज्ञेय ने अपनी इन कविताओं में पूँजीपतियों पर तीखा व्यंग्य भी किया है। उनकी "शोषक भैया" शीर्षक कविता शोषण का भयानक चित्र उपस्थित करती है, साथ ही शोषकों पर व्यंग्य भी करती है -

डरो मत शोषक भैया
मेरा रक्त ताजा है
मेरी लहर भी ताजा और शक्तिशाली है[2]।

शोषितों के मुख से शोषकों पर व्यंग्य करने की यह प्रवृत्ति अज्ञेय कविता की विशेषता है।

क्रान्ति भावना

'भविष्य में क्रांति होगी' - इस आस्था से प्रेरित होकर अज्ञेय अपनी कविताओं द्वारा उसकेलिये पृष्ठभूमि तैयार करने में व्यस्त दिखायी पड़ता है। जैसे -

ग्रीष्म तो न जाने कब आयेगा
तब तक मैं उसका एक अकिंचन अग्रदूत
अपनी अखण्ड आस्था के साक्ष्य रूप
मशाल जला दूँ -

---

1. अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ.44
2. बावरा अहेरी, पृ.42

न सही क्षय ग्रस्त नगर में -
इस वन-खंडी में आग लगा दूं ।[1]

ग्रीष्म क्रांति का प्रतीक है । प्रकृति में देखा जा सकता है कि बादलों के घुमडने के पहले आँधी होगी । प्रतीकों के माध्यम से कवि ने कहा कि अपनी कविता संघर्ष के पहले की आँधी है ।

जन समुद्र से आनेवाली क्रांति रूपी लहर का स्वागत करते हुए उन्होंने लिखा -

हरहराती आ, लहर, मेरी लहर,
फेन के अनगिन किरीटों को झुका कर
तू मुखर / आह्वान कर / मेरा, मुझे तर ![2]

संघर्ष की आग आज लुप्त पडी है, लेकिन दबी हुई चिनगारियाँ एक दिन ज्वाला बनकर लहकेगी - यही उनका विश्वास था । उनकी "टेसु", "वैशाख की आँधी", "ओ लहर", "गूंजेगी आवाज", जैसी कवितायें अपनी संघर्ष चेतना को व्यक्त करने वाली हैं ।

नागरिक जीवन का चित्रण

नगर सभ्यता के प्रति अज्ञेय की कविताओं में कोई आकर्षण नहीं दिखाई पडता है । नगर के प्रति उनकी कवितायें एक प्रकार की विरक्ति का भाव रखती हैं । युवा पीढी के बीच जो कुंठा और अकेलेपन का बोध है, अज्ञेय ने उसे नगर सभ्यता की देन मानी है ।

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.25
2. वही, पृ.65

"साँप" के प्रतीक द्वारा अज्ञेय ने वर्तमान नागरिक सभ्यता की कटु आलोचना की है। विवेच्य युग में भारतभूषण की कविता में भी ऐसा एक साँप है। अज्ञेय की 'महानगर रात' कविता शहरी जीवन को प्रस्तुत करनेवाली है। जिस प्रकार सारे शोरगुल धीरे धीरे समाप्त होते हैं और 'एक तनाव भरी सन्नाटा शहर को घेरती है' उसका आभास प्रस्तुत कविता देती है। रात में नगर का रूप अज्ञेय ने इस प्रकार चित्रित किया है -

ओट खड़ी खम्भे के अँधियारे में चेहरे की मुर्दनी छिपाये
थकी उँगलियों से मुजी आँखों से रूखे बाल हटाती
लट की मैली झालर के पीछे से
बोलेगी:
दया कीजिए, जेंटिलमेन ....![1]

उसका स्वर झूठा लगेगा क्योंकि अभी उसे सच के अभिनय का अभ्यास नहीं है।

धुआँ भरी आँखों से अपनी परछाई तक पहचाने बिना, सस्ती शराब में तन्मय होकर धीरे धीरे चलनेवाले नगर के व्यक्ति को चित्रित करने में अज्ञेय की काव्य-प्रतिभा सफल हुई है। खेल तमाशे, सिनेमाघर, थियेटर, रंग बिरंगी बिजली, गलि, पक्के पेशाबघरों की सुविधा, कचरा-पेटियाँ आदि नगर की सभी वस्तुओं पर कवि की सूक्ष्म दृष्टि पहुँची है। और उन्होंने यह भी देखा कि यहाँ नगर में सब कुछ है - जो नहीं है वह केवल मनुष्य है - मनुष्यत्व है।

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.58

अज्ञेय ने नगरवासियों को 'साँप' से उपमित किया है । क्योंकि ये स्वार्थी लोग अवसर मिलते ही साँप के समान काट लेते हैं । कवि का कहना है कि शायद साँप ने इन लोगों से डँसना सीखा होगा । उनका तीखा व्यंग्य देखिये -

साँप / तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना / भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ - (उत्तर दोगे)
तब कैसे सीखा डँसना -
विष कहाँ पाया ।[1]

नगर का चित्र उपस्थित करते समय कवि की दृष्टि नगर जीवन की विषमताओं की ओर भी गयी है । सड़क के किनारे के पेशाबघर और कूड़ेदान का स्थान देखकर कवि ने व्यंग्य किया -

यह गलियों की नुक्कड़-नुक्कड़ पर पक्के
पेशाबघरों की सुविधा,
ये कचरा-पेटियाँ सुघड़, रंगीन
(आह, कचरे के लिये यहाँ इतना आकर्षण ?)[2]

आधुनिक युग में मनुष्य भीड़ में भी अकेलापन का अनुभव करता है । यह नगर सभ्यता की देन है । अज्ञेय ने बड़े मार्मिक ढंग से इसका चित्रण किया है -

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.29
2. वही, पृ.59

भीड़ों में
जब-जब जिस-जिस से आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानव / अंगारे-से-भगवान-सा / अकेला[1] ।

जीवन की यान्त्रिकता पर व्यंग्य

यंत्र का उद्देश्य मनुष्य को अवकाश देना है । लेकिन यहाँ मशीन कुछ संपन्न लोगों को ही अवकाश प्रदान करती है । मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के जीवन में अवकाश नहीं है । मध्यवर्गीय क्लर्क का जीवन और यान्त्रिक जीवन की छटपटाहट अज्ञेय की 'दफ्तर: शाम' कविता में देखी जा सकती है । उन निसहाय आदमियों की ओर से कवि कहते हैं ।

यंत्र हमें दलते हैं
और हम अपने को छलते हैं
थोडा और खट लो, थोडा और पिस लो[2] ।

उनका जीवन 'कल हमें अवकाश मिलेगा' इस प्रतीक्षा में गुज़र रहा है । इस कविता में 'शुक्र तारा' आस्था का प्रतीक है । दफ्तर में काम करने वाले क्लर्क और अन्य लोग, जिसकी देह में खून और रसना में रस नहीं, इस शुक्र तारे की प्रतीक्षा में रहते हैं ।

कवि ने यंत्रीकरण को वरदान नहीं अभिशाप माना है -

1· अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ·161

2· बावरा अहेरी, पृ·48

रासायनिक धुन्ध के इस चीकट कम्बल की नयी घुटन को
मानव का समूह-जीवन इस झिल्ली में पनप रहा है[1]।

"लौटते हैं जो वे प्रजापति हैं" कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है। यंत्र मनुष्य को अपना दास बना रहा है। कारखानों से उभरते हुए विषैले धुएँ वातावरण को दूषित कर रहे हैं। अंत में एक दिन रासायनिक साँपिनें पछाड खाकर धरती पर गिरेंगी। प्रस्तुत कविता में अज्ञेय ने इस बात की ओर संकेत किया है।

क्षण का महत्व

क्षण के प्रति जो आग्रह अज्ञेय की कविताओं में प्राप्त होता है वह जिजीविषा है - जीने का आग्रह है।

आज के विविक्त अद्वितीय इस क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें आत्मसात् कर लें[2]।

कहकर अज्ञेय ने क्षण के महत्व पर प्रकाश डाला है। "चाँदनी चुपचाप", "चाँदनी जी लो" "सागर पर भोर" जैसी कविताओं में उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से क्षण का महत्व बता दिया है। उनकी "रश्मि वाण", "धनी धुन्ध से छाया", "सागर-चित्र" जैसी कवितायें भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। निम्नलिखित पंक्तियों में अज्ञेय ने क्षण को महत्व देते दिखायी पडता है -

---

1. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, पृ.39
2. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.42

चौंक गया हूँ मैं क्षण-भर को
क्योंकि अभी इस क्षण में ने
कुछ देख लिया है[1]।

xx xx

यह क्षण यह चित्र
दरिद्र ?
अ-मूल ? अमोल ?
क्लीयमान ? चिर ?[2]

राजनीतिक चेतना

"जनवरी छब्बीस", "दिया हुआ, न पाया हुआ" जैसी कवितायें अज्ञेय की राजनीतिक चेतना को स्पष्ट करनेवाली हैं। "जनवरी छब्बीस" में समाज का प्रवक्ता बनकर कवि ने हमारे जनतंत्र का जयगान किया है। जनतंत्र को उन्होंने आलोक मंजूषा के रूप में चित्रित किया है। उनकी राय में राष्ट्र के सच्चे विधायक प्रजा है। गणतंत्र दिवस पर अविराम गति से बढ़े चलने का कठिन व्रत लेकर उन्होंने अपनी देश भक्ति का परिचय दिया है।

प्रजातंत्र की वर्तमान अवस्था पर कवि ने व्यंग्य भी किया है -

"कि मानव-पुत्र हूँ, पर प्रजातंत्र में इस दावे पर
हर दूसरा मानव-पुत्र हँसेगा कि क्या बकता हूँ।"[3]

---

1. अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ.94
2. वही, पृ.134
3. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, पृ.17

परम्परा-प्रेम और रूढ़ि-विरोध

अज्ञेय का विश्वास था कि नकारात्मक प्रवृत्तियों से जीवन सार्थक नहीं बनेगा । परम्परा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखना उचित नहीं । अतीत, वर्तमान और कल में सम्बन्ध होता है । अतीत का पूर्ण रूप से तिरस्कार नहीं किया जा सकता -

कहा तो सहज, पीछे लौट देखो नहीं -
पर नकारों के सहारे कब चला जीवन ?
स्मरण को पाथेय बनने दो
कभी तो अनुभूति उमड़ेगी
प्लवन का सान्द्र घन भी बन[1] ।

परम्परा-प्रेमी कवि ने रूढ़ियों का विरोध भी किया है -

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो,
जीवन का रस लो, देह-मन-आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो[2] ।

फूल परम्परा का प्रतीक है । फूल का झरना परम्परा के गलित अंश-रूढ़ि का प्रतीक है । इसी प्रकार जीवन परम्परा का और

---

1. बावरा अहेरी, पृ.54
2. वही, पृ.51

मरना रूढ़ि का प्रतीक है । परम्परा से प्रेम करना अच्छा है, लेकिन रूढ़ियों को तोड़ना आवश्यक है ।

जीवन-दर्शन

मानव जीवन से सम्बन्धित कवि का विचार यह है कि जीवन नश्वर है, समस्त संसार नश्वर है । फिर भी जीवन के प्रति आस्था रखना आवश्यक है । "झरने के लिये" कविता में अज्ञेय ने इस विचार को प्रकट किया है -

मरणधर्मा है सभी कुछ
किन्तु फिर भी बहो
मीठी हवा
जीवन की क्रियाओं को
तुम्हीं तो तीव्र करती हो[1]!

कवि की दृष्टि में मृत्यु सत्य है, उसे हम छोड़ नहीं सकते । जीवन एक अन्तहीन तपस्या है जिससे हम मुँह नहीं मोड़ सकते हैं । समय की काल की - गति अप्रतिरोध है । अज्ञेय की कविताओं में 'सागर' जीवन का और 'उछली हुई मछली' जीवन की अनंत जिजीविषा का प्रतीक है । 'जन्म-दिवस' कविता में अज्ञेय ने एक तीखे यथार्थ की ओर संकेत किया है -

एक दिन
और दिनों-सा
आयु का एक बरस ले चला गया[2] ।

---

1. बावरा अहेरी, पृ. 58
2. अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ. 132

अज्ञेय ने जीवन की सारी जिज्ञासाओं का उतर इस प्रकार दिया है -

लो मुट्ठी भर रेत उठाओ:
ठीक कह रहा हूँ मैं हँसी नहीं है,
उसे ऊँगलियों में से बह जाने दो बस।
यों।
इस यों मेंही है सब जिज्ञासाओं के उत्तर[1]।

धार्मिक चेतना
----- ------

अज्ञेय ने कहा इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी सत्य अविकल रूप में अधिक दिनों तक जी न सका। उदाहरण स्वरूप कवि ने बुद्ध और ईसा को लिया है। बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के थोडे ही दिन बाद यह खोजने का प्रयत्न किया गया है कि किन किन सम्प्रदायों में बुद्धदेव का सत्य लुप्त होता चला गया। ईसा के मरने के कुछ क्षण पूर्व उनके एक पट्टशिष्य ने उनके सत्य का प्रत्याख्यान दिया था। आधुनिक युग में गांधीजी के तत्वों का भी खण्डन किया गया है। जैसे -

आपका जो 'गान्धियन' सत्य है
उसको क्या यही सात-आठ वर्ष पहले
गांधी पहचानते थे[2]?

---

1. बावरा अहेरी, पृ.27
2. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ.42

"आँगन के पार द्वार" संग्रह की कई कविताओं में आध्यात्म की ओर कवि का झुकाव देखा जा सकता है। उनकी कविताओं में जो आध्यात्मिक बोध मिलता है उसके केन्द्र में मानव ही है। "मानवीय अस्तित्व को केन्द्र में रखते हुए भी अज्ञेय जिस आध्यात्मिक स्वर को मुखर कर सके हैं - वह कम समर्थ कलाकार का काम नहीं है। यहाँ आध्यात्मिक संवेदना मानवीय अस्तित्व को ही गरिमा प्रदान करती है। ऐसी मौलिक एवं सक्षम आध्यात्मिक अनुभूति की कवितायें अज्ञेय को संपूर्ण काव्य जगत में एक विशिष्ट स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है।[1]" नन्दकिशोर आचार्य का उपर्युक्त कथन अक्षरश: सत्य प्रतीत होता है।

सांस्कृतिक चेतना

आधुनिक मनुष्य को जीवन की व्यस्तता के बीच प्यार जैसे मानवीय मूल्यों के बारे में सोचने तक की फुर्सत नहीं मिलती है। निम्नलिखित कविता में यह सत्य मुखरित होता है -

कहाँ से उठे प्यार की बात
जब कदम कदम पर कोई
असमंजस में डाल दे ?
जैसे शहर की त्रस्त क्षिति-रेखा पर रात
धुंधलके के सागर से
एक तारा उछाल दे[2] ?

---

1. नन्दकिशोर आचार्य - अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ.59
2. क्योंकि मैं उसे जानता हूं, पृ.44

इसलिये कवि ने धरती को स्नेह की बौछार देने का संदेश मानव वंश को दिया है । उन्होंने प्यार को श्रेष्ठ मानव मूल्य की तरह उच्च-स्थान पर प्रतिष्ठित किया है । मानव जीवन में प्यार की गरिमा को कवि ने कलात्मक ढंग से अंकित किया है । 'उधार', 'निरस्त्र', 'अन्धड' आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कवितायें हैं ।

युद्ध के बारे में भी अज्ञेय ने काफी सोच विचार किया है । उनकी "हिरोशिमा" कविता अणु-बम गिराने की कांड का अनुस्मरण करके लिखी गयी है । विज्ञान की विनाशकारी शक्ति की ओर मानवता का ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने लिखा -

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है[1] ।

युद्ध-त्रस्त संसार को कवि ने मानवता का सन्देश दिया है । जैसे -

बन्धु है नदियाँ
प्रकृति भी बन्धु है
और क्या जानें कदाचित्
बन्धु मानव भी[2] ।

---

1. अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ. 155
2. हरी घास पर क्षणभर, पृ.

विश्व मंगल की कामना उनकी कविताओंमें मिलेगी । यहाँ उनकी कविताओं में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मानवतावादी दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है । विदेश-यात्राओं ने भी उनकी काव्य दृष्टि को विकसित किया है ।

निष्कर्ष

विवेच्य कालावधि में प्रकाशित अज्ञेय के काव्य संग्रहों में 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' आदि संग्रहों की कवितायें सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इन कविताओं में कवि ने युग बोध को अभिव्यक्ति दी है । नयी पीढ़ी के रचनाकारों में जो आक्रोश का स्वर है वह अज्ञेय की कविताओं में नहीं मिलेगा । उन्होंने नागरिक जीवन की कुंठा और ग्रामीण जनता का अभावग्रस्त जीवन दोनों का चित्रण किया है ।

"शोषक भैया", "दफ्तर: शाम", "साँप", "महानगर रात", "तो क्या", "देश की कहानी दादी की जबानी", "केले का पेड़", "जनपथ राजपथ", "दिया हुआ, न पाया हुआ", "विपर्यय", "सागर और गिरगिट" आदि विविध विषयों पर लिखी गयी उनकी व्यंग्य कवितायें हैं । "शोषक भैया" में शोषितों के माध्यम से शोषकों की क्रूरताओं पर व्यंग्य किया गया है जो अज्ञेय की निजी उपलब्धि कही जा सकती है । "आज़ादी के बीस बरस", "हिरोशिमा", "इतिहास की हवा", "मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ", "मन और मैं", "भूल", "हमने पौधे से कहा" आदि सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कवितायें हैं । "टेसू", "वैशाख की आँधी", "उमडन के बाद", "ओ लहर", "गूँजेगी आवाज" जैसी कविताओं में अज्ञेय की

संघर्ष चेतना देखी जा सकती है । "लौटते हैं जो वे प्रजापति हैं" वर्तमान यांत्रिक सभ्यता पर व्यंग्य करनेवाली कविता है । जीवन विरोधी और जीवनोपयोगी मूल्यों का संघर्ष "मरु और खेत" कविता व्यक्त करती है जो विवेच्य युगीन कवियों में अज्ञेय की कविता में ही मिलता है । राजनीति पर उन्होंने कम विचार किया है । अज्ञेय की कविताओं में सामाजिक चेतना प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्य रूप में प्रस्फुटित हुई है । "साम्राज्ञी का नैवेद्य-दान", "यात्री" जैसी कविताओं में बौद्ध दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है ।

नागार्जुन

नागार्जुन ने सन् 1930 के आसपास कविता लिखना शुरू किया । उनका जन्म दीन-हीन अपठित कृषक कुल में हुआ । उन्हों ने ठेठ बचपन से अभाव का आसव पीकर, प्रतिपल संघर्षों में जीवन बिताया । उनका लगाव साधारण जनता से है । उनकी कवितायें देश की तीन चौथाई आये श्रमिक वर्ग के जीवन से सम्बन्धित है, जो राष्ट्रीय उत्पादन और विकास की रीढ है । उनकी प्राय: सभी कवितायें सामाजिक धरातल की सृष्टि है । स्वतंत्र भारत की सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया और अपनी कविताओं में उनको अभिव्यक्त भी किया है ।

उनके "युगधारा", "तुमने कहा था", "सतरंगे पंखोंवाली", "प्यासी पथराई आँखें", "पुरानी जूतियों का कोरस" आदि काव्य संग्रहों का अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है ।

सामाजिक चेतना

समाज से ही कवि अनुभूति ग्रहण कर सकता है । इसलिये नागार्जुन के मन में समाज के प्रति गहरी आत्मीयता है । "रहूँ साथ सबके, भोगूँ साथ सुख दुख" जैसी पंक्तियाँ समाज से आपका गहरा सम्बन्ध स्पष्ट करनेवाली है । नागार्जुन अपने को पहले मनुष्य और बाद में कवि मानते हैं - जैसे -

कवि हूं पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूं

xx xx xx

सुख-सुविधा में हुलस-हुलस कर

दुख दुविधा में झुलस-झुलस कर

सब जैसे अपने जीवन को बिता रहे हैं

वैसे मैं भी अपना जीवन बिता रहा हूं[1]।

इसलिये समाज की समस्यायें कवि की भी समस्या बन गयी है। उन्होंने अपनी कविताओं में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

भूख और गरीबी का चित्रण

स्वतंत्र भारत क्षुधा, अशिक्षा, रोग, रूढ़ि आदि से ग्रस्त है। आज भी भारत अविकसित देश है। देश की करोड़ों की संख्या में जनता भूख और गरीबी से तड़प रही है। मंत्रियों ने बतायी अन्न की इफरात है, लेकिन यहाँ भात अभी तो सपना हो गया है और भारतमाता की आँखों से नीर बह रहा है। क्योंकि

गिनती के चावल रोते हैं महंगाई की भार में

जीरा हंसा भभाकर, भड़का नकली तेल बाजार में

आलू डोल रहे हैं, भिंडी सहमी खड़ी कातर में

देशी गेहूं पड़े दिखाई सपनों के कोठार में[2]।

1· युगधारा, पृ· 78-79

2· पुरानी जूतियों का कोरस, पृ· 61-

कवि ने देखा कि हमारे हाथ, पेट, थाली और प्लेट खाली है । "अन्न ब्रह्म ही ब्रह्म है, बाकी ब्रह्म पिशाच" कहकर नागार्जुन ने अन्न का महत्व, और हमारी गरीबी का चित्र दिखाया है । "प्रेत का बयान" कविता में कवि ने व्यंग्य रूप में स्वाधीन भारत के प्राईमरी स्कूल के भूखमरे स्वाभिमानी सुशिक्षक की दहाड की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है । हमारे देश में भुखमरी एक साधारण बात बन गयी है । भूख, रोग और अकाल से पीड़ित एक भारतीय परिवार का चित्र उन्होंने खींचा है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की परिस्थितियाँ इतनी बिगड गयी कि जनता यमदूत का भी जयगान करने लगी । लोग जीने की अपेक्षा मरना ज्यादा पसंद करते हैं -

हमें, हमारे घरवालों को, पडोसियों को दो छुटकारा
शीघ्र मुक्ति दो इस रौरव से
जहाँ न भरता पेट, देश वह कैसा भी हो महानरक है[1] ।

"तुम किशोर, तुम तरुण" "अकाल और उसके बाद" जैसी कवितायें अभावग्रस्त जीवन को चित्रित करनेवाली है । "आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी" में व्यंग्य रूप से देश की गरीबी को चित्रित किया है । "देखना ओ गंगा मैया", "खुरदरे पैर" आदि कविताओं में कवि ने आर्थिक वैषम्य का परिचय दिया है । पानी में पैसे खोजने वाले मल्लाह के लडकों को दिखाकर कवि ने देश की आर्थिक दुर्दशा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है -

---

1. युगधारा, पृ.93

नीचे प्रवहमान उथली-छिछली धार में
फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों के नंग-धड़ंग छोकरे
दो-दो पैर / हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि ![1]

वर्ग वैषम्य

जनयुग का सिद्धहस्त कवि नागार्जुन ने समाज के वर्गभेद को स्पष्ट करके स्वयं शोषित वर्ग का प्रतिनिधि घोषित किया है । शोषित और पीड़ित वर्गों के प्रति कवि की सहानुभूति कृत्रिम नहीं है ।

गरीबी का भार सदा निम्न वर्ग पर सीधे पड़ता है । सुविधा प्राप्त लोग इन्हें भू-भार समझते हैं । सम्पन्न वर्ग और दरिद्र वर्ग के बीच की खाई प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । "वे और तुम", "यह उन्मत्त प्रदर्शन", "काली माई" जैसी कविताओं में उन्होंने वर्ग वैषम्य को अपने ढंग से चित्रित किया है । जैसे -

वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्थर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है

---

1. सतरंगी पंखोंवाली, पृ.21

और तुम्हारी घुटन ?
उनींदी घड़ियों में चुरती है[1]।

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच मध्यवर्ग की स्थिति और भी दयनीय है । "कैसा असहाय, कितना जर्जर / यह मध्यम वर्ग का निचला स्तर"[2] कहकर कवि ने मध्यवर्ग की दयनीय स्थिति पर दुख प्रकट किया है । निम्न वर्ग की आंत कचक कर, मिडिल क्लास की नसें दूहकर उच्च वर्ग के लोग बैंक बैलेंस बढाते हैं । सम्पन्न वर्ग के वैभव के दबाव में जीवन बितानेवाले अभिशाप्त दलित वर्ग का चित्र नागार्जुन की कविताओं में सर्वत्र देखा जा सकता है ।

श्रम का महत्व

नागार्जुन ने यह पहचान लिया कि "सर्वसहनशीला अन्नपूर्णा वसुन्धरा स्तुति नहीं, कठोर श्रम मांगती है[3]।" इसलिये उन्होंने अकर्मण्यता और आलस्य का तिरस्कार करने का उपदेश दिया है । उनकी निम्नलिखित कविता आपकी इस मान्यता को स्पष्ट करती है -

नयी-नयी सृष्टि रचने को तत्पर
कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहें अहरह स्निग्ध इंगित

---

1. प्यासी पथराई आँखें, पृ.54
2. युगधारा, पृ.109
3. वही, पृ.84

और मैं अलस-अकर्मी
पड़ा रहूँ चुपचाप ।
यह कैसे होगा ?
यह क्योंकर होगा ?[1]

समाजवाद

बचपन से ही ऊँच-नीच का ख्याल छोड़कर सब तरह के, सब जातियों के बच्चों के साथ उठते-बोलते रहनेवाले कवि का लक्ष्य वर्ग-वैषम्य को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना है । अपनी विवेच्य युगीनकविताओं में उन्होंने यह विश्वास प्रकटकिया है कि किसी न किसी दिन समाजवाद स्थापित होगा :-

किंतु मुझको हो रहा विश्वास
यहाँ भी बादल बरसने जा रहा है आज
अब न सिर में उठेगा फिर दर्द
लग रहा था आज प्रात: काल पानी सर्द
गंगा नहाते वक्त / आया ख्याल
हिमालय में गल रही है बर्फ
आज होगा ग्रीष्म ऋतु का अंत ।[2]

1· सतरंगे पंखोंवाली, पृ·14
2· युगधारा, पृ·54

अपनी कुछ कविताओं में नागार्जुन को रक्त क्रांति का समर्थन करते दिखाई पड़ता है । "लाल कमल" में उन्होंने इसी विचार को प्रकट किया है कि -

जन जीवन से जायेगी जलन जरूर निकल
रजताभ भूमि पर उगी स्वर्ण शोणाभ फसल
खिल गये चीन की धरती-तल पर लाल कमल
आ रहा हिमालय-पार यहाँ उनका परिमल[1] ।

राजनीतिक चेतना

स्वतंत्र भारत की राजनीतिक गति विधियों से कवि कभी अछूता नहीं रहे । सन् 1947 अक्तूबर में पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला किया । काश्मीर समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा -

सिरीनगर जम्मू ऊधमपुर गिलगित वो लद्दाख
दूर-दूर तक फैले हैं जी, काश्मीर की शाख !
गिलगित के अड्डे पर जब अमरीकी कुत्ता भूँकेगा
काश्मीर का बच्चा-बच्चा अब इन पर थूकेगा
काश्मीरी ही काश्मीर का कर सकते उद्धार ।
हिन्दुस्तानी-पाकिस्तानी दोनों जग से न्यारा
नई तरह का काश्मीर हो, यही हमारा नारा
दो पाटों के बीच घुट रहे काश्मीर के प्राण
कौन दूसरा दे सकता उसको जीवनदान[2] ।

---

1. युगधारा, पृ.72
2. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.39-40

विवेच्य युगीन कवियों में केवल नागार्जुन ने काश्मीर का स्वतंत्र अस्तित्व रखने की बात उठायी ।

हमारी वर्तमान राजनीति अत्यंत भ्रष्ट हो चुकी है । स्वतंत्रता का वरदान केवल उन लोगों को ही मिला है जिन्होंने नेताओं की पाद पूजा की । उनकी 'अमलेन्दु एम.एल.ए.', 'चीलों की चली बारात' आदि राजनीतिक व्यंग्य कवितायें है जिनमें कवि ने वर्तमान राजनीति पर विचार किया है । कवि की दृष्टि में आज प्रजातंत्र का बुरा हाल है । "रामराज्य" का जनाजा रोज निकल रहा है । राजनीति विष्ठा है, मल है । नेताओं की कथनी और करनी में बडा अन्तर है । शासन से जनता असंतुष्ट है । बात बनाना, गप्पे मारना, बहाना करना, जंभाइयाँ लेना, राजघट पर बापू की समाधि पर अश्रु बहाना - ये आज के नेताओं का काम है । वे गाँधीजी का नाम बेच बेचकर वोट बटोरते हैं । बैंक बैलेन्स बढाते हैं । इनको देखकर ऐसा लगता है मानो -

व्यर्थ हुई साधना, त्याग कुछ काम न आया
कुछ ही लोगों ने स्वतंत्रता का फल पाया ।[1]

अवसरवादी नेताओं को नागार्जुन ने बाघ, मायावी, घाघ आदि कहकर उनपर अपना अविश्वास और रोष प्रकट किया है । इन झूठे नेताओं पर उनका व्यंग्य देखने लायक है -

हमारी तो अमावास है, तुम्हारा यह प्रात
छीलो बात पर तुम तात

---

1. युगधारा, पृ.93

जले पर छिड़को नमक दिन रात
सजा दूल्हा बाज, चीलों की चली बारात
खद्दरी है भेस, पर पहचान में आई नहीं यह जात[1]।

जब भारतवर्ष में लोग भूख से मरे, तब गोलमेज पर गये नेहरू की प्रवृत्ति पर कवि ने रोष प्रकट किया है । उनकी राय में "खादी" की पवित्रता आज नष्ट हो चुकी है । इस पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा

मुझे पहननेवाला आज
किसी सूबे का बना मिनिस्टर
उन कदमों को चूम रहे हैं
कितने जज्ज, कलक्टर[2] ।

आज जीवन के सभी क्षेत्रों में राजनीति का हस्तक्षेप हुआ है । वही सबका नियंत्रण करती है । "जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन" यही आज की स्थिति बन गयी है । साहित्य को भी इसने नहीं छोड़ा है । कवि साहित्य के भीतर राजनीतिक कालुष्य के आने के पक्ष में नहीं है ।

"भूख का पुतला", "वे तुमको गोली मारेंगे", "ओ जन-मन के सजग चितेरे" जैसी कविताओं में भी नागार्जुन ने वर्तमान राजनीति पर विचार किया है ।

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.49
2. वही, पृ.85

साम्राज्यवाद का विरोध

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कवि घृणा करते हैं । उन्होंने देखा कि अफ्रीका, मलया, अरब, ईरान, मिस्र, बर्मा आदि राज्यों में ब्रिटिश साम्राज्य का श्राद्ध हो रहा है । कवि ने "दुनिया भर की जनता तुम पर लाख बार थूकेगी, छत्र-मुकुट-सिंहासन सारे रौंद दिये जायेंगे[1] ।" कहकर साम्राज्यवाद पर अपना रोष और अपनी घृणा प्रकट की है । साथ ही उन्होंने चेतावनी भी दी है कि -

> खबरदार ओ राजा, तुम कर हाथ हटा ले अपने
> कभी नहीं पूरे होंगे तानाशाही के सपने[2] ।

बापू की मृत्यु

युगपुरुष गाँधी के प्रति कवि के मन में श्रद्धा होती है । उन्होंने गाँधीजी की हत्या पर दुख और हत्यारे पर रोष प्रकट किया है । गोडसे-जिसने गाँधीजी की हत्या की - को कवि ने बर्बर, स्थिर स्वार्थों का प्रहरी, मानवता का महाशत्रु, हिरण्यकशिपु, अहिरावण, दशकन्धर, सहस्रबाहु, मनुष्यत्व के पूर्णानन्द का सर्वग्रामी महाराहु आदि कहकर उसपर अपना क्रोध प्रकट किया है । उनका दुख इस प्रकार फूट पड़ा -

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.29
2. वही, पृ.34

हे परमपिता हे महामौन ।
हे महाप्राण, किसने तेरी अन्तिम साँसें
बरबस छीनी भारत माँ से[1] ।

कवि केवल दुख प्रकट करके नहीं रहा । उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी ली कि "साम्प्रदायिकवादी दैत्यों के विकट खोह जब तक खंडहर न बनेंगे तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा । इसके अतिरिक्त, पथ के रोड़ों को हटा कर, बापू के अगणित स्वप्नों को रूप और आकृति देने केलिये उन्होंने जनता को आह्वान भी दिया ।

सांस्कृतिक चेतना

हमारी संस्कृति के दो प्रधान अंग है सत्य और अहिंसा । गाँधीजी ने भारत की स्वतंत्रता संग्राम में इन दो अस्त्रों का ही प्रयोग किया था । लेकिन स्वतंत्र भारत में इनका मूल्य कम होता जा रहा है । नागार्जुन ने इस अवस्था का चित्रण इस प्रकारकिया है -

चबाती है सत्य का शव
अहिंसा की गाय
धुन रहे हैं बैल सिर
उनसे न क्यों ली राय[2] ।

समाज में भौतिक भोगविलास सुलभ है । लेकिन विवेक कुंठित है ।

---

1. युगधारा, पृ.44-45
2. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.69

भौतिक भोगमात्र सुलभ हों भूरि-भूरि,
विवेक हो कुंठित ।
तन हो कनकाभ, मन हो तिमिरावृत !
कमलपत्री नेत्र हों बाहर-बाहर,
भीतर की आँखें निपट-निमीलित !
यह कैसे होगा ?
यह क्योंकर होगा ?[1]

सवर्ण और अवर्ण में, नर और नारी में आज भेद-भाव होता है । वर्तमान समाज में किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता का मापदण्ड उच्चकुल में जन्म लेना है ।

भारत की अपनी परम्परा वेदों और उपनिषदों की है। यहाँ जीवन चतुर्फलदायिनी है । फिर भी यहाँ अर्थ या काम पर ज़ोर दिया जाता है । कवि ने समाज का ध्यान उस महान संस्कृति की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

नागार्जुन विश्व-मानवता को स्थापित करने के पक्ष में हैं । सब राष्ट्र स्वतंत्र रहे, सभी सुखी हों, सबका कल्याण हो, यही उनकी प्रतीक्षा है -

विश्व-शान्ति है टेक हमारी, जनहित लक्ष्य हमारा
व्यक्ति-व्यक्ति में संचारित हो, नव जीवन नव प्राण
गाँव गाँव यह, नगर-नगर यह, गढ़ हो मानवता का
नील गगन में फहराये तब रह-रह नील पताका ।[2]

1· सतरंगी पंखोंवाली, पृ·15

कामनवेलथ को असफल होते देखकर उन्होंने "कामनवेल्थी दुनिया क्या है, बूचड़ का बाज़ार है" कहकर जो व्यंग्य किया, वह उनकी अंतर्राष्ट्रीय चेतना का परिचय देता है ।

युद्ध का विरोध

युद्ध की विभीषिकाओं से परिचित कवि ने, अपनी कविताओं में, मानवता का ध्यान युद्ध के दुष्परिणामों की ओर आकर्षित कराने का प्रयत्न किया है । युद्धाकांक्षी मानव को कवि ने पागल पिशाच कहा है । उनकी "एटम बम" कविता इस उद्देश्य से लिखी गयी है -

बम बरसेंगे जनाकीर्ण आबादी पर ही
निरपराध निर्दोष निष्कलुष -
बाल -वृद्ध-वनिताओं की ही जान जायगी
ताजा ताजा खून बहेगा
xx x xx
युद्धाकांक्षी मानवाभास पागल पिशाच दस बीस-पचीस-पचास
जिनके गलित कुष्ठ के मारे घुटा जा रहा मानवता का श्वास ।[1]

विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया बहुत आगे बढ़ी है । ग्रह-उपग्रह हाथ में आ पहुँचा है । दुनिया ने अमोघ अणु आयुध संचित किया है । लेकिन अंतर्मन परम पूर्णक्त है । युद्ध का आतंक हमेशा हमारे ऊपर छाया हुआ है । नागार्जुन की राय में यह धरती मृत्यु का नहीं जीवन का संदेश देती है । वह नाश का नहीं निर्माण का प्रतीक है । इसलिये युद्ध व्यसनी वज्रपाणी दानवों का अपावन स्पर्श धरती नहीं चाहती है ।

---

1. युगधारा, पृ.70

शिक्षा पर विचार

कवि की दृष्टि में शिक्षा का मूल्य आज कम हो गया है । ज्ञान-दान आज कोरी सौदा बन गया है । विश्वविद्यालयों के सेनेट और सिंडिकेट भी आज वांछित मूल्य नहीं रखते हैं । इस पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने लिखा -

अंडा देती है सिनेट की छात पर चींटी
ढूह ईट-पत्थर की, कह लो यूनिवर्सीटी
तिमिर तोम से जूझ रहा मानव का पौधा
ज्ञान दान भी आज बन गया है "कोरी सौदा[1] ।"

सिंडिकेट को कवि ने "धूर्तों का प्रछन्न गिरोह"
"अमानवी तिकड़मियों की खोह" आदि की संज्ञा दी है ।

मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे लोग जीविकोपार्जन केलिये किसी न किसी दफ्तर में काम करते हैं । इनकी स्थिति अत्यंत दयनीय है । पढ़ुआ बाबू दफ्तर में बेमौत मर रहा है । महँगाई के कारण उनका जीना भी हराम है । इन को देखकर कवि को तरस आयी है । बीबी बच्चे और नौकरी इनका छोटा सा संसार है । उनको सपने में ही आराम मिलता है । बेचारे, तीन आदमियों का काम करता है । द्रौपदी की साड़ी-सी फाईल देखके उनकी आँख निकल आती है । फिर भी सधी-बँधी तनख्वाह मिलती है । "छोटे बाबू" कविता में नागार्जुन ने इनकी मूक व्यथा को वाणी देने का प्रयास किया है -

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.15

बिना मौत के मरे बेचारे
नींद नहीं आती है, गिनते छत की कड़ियाँ,
आसमान के तारे ।
कभी न देखी जेल
इसलिये क्या बेचारे की यह दुर्गत है ?[1]

निष्कर्ष

नागार्जुन की कविताओं में स्वतंत्र भारत का पूरा समाज उभरकर सामने आता है । उन्होंने जिन्दगी की खुली पुस्तक से, कबीर की तरह, आँख की देखी सीखी[2] । आपने स्वतंत्र भारत की कुरीतियाँ, आर्थिक पराधीनता, भ्रष्टाचार, वर्ग वैषम्य, सांस्कृतिक ह्रास आदि का अच्छी तरह अनुभव किया और यथार्थ रूप से अपनी कविताओं में अंकित भी किया ।

संपन्न वर्ग का सुखी जीवन और शोषित पीड़ित वर्ग की आह देखनेवाले कवि ने अपनी विवेच्य युगीन कविताओं में समाजवाद की स्थापना पर ज़ोर दिया । उनकी 'रेत, मनिशं', 'भारतमाता' 'अरुणोदय', 'लाल कमल', 'पुरानी जूतियों का कोरस' आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है ।

"अमलेन्द एम.एल.ए." 'चीलों की चली बारात', 'पंडितजी जानेवाले हैं रानी के दरबार में', 'भारतेन्दु', 'क्या अजीब नेचर पाया है', 'ओ जन मन के सजग चितेरे' आदि राजनीतिक व्यंग्य कवितायें है जिनमें कवि ने वर्तमान राजनीति पर विचार किया है । 'प्रेत का बयान' सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली रचना है ।

---

1. युगधारा, पृ.98
2. [illegible]

मार्क्स, बुद्ध, गांधी और रवीन्द्र का प्रभाव उनकी विवेच्य युगीन कविताओं में देखा जा सकता है । शोषित जनता के प्रति विशेष सहानुभूति उनकी कविताओं में मिलेगी । राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय चेतना एवं विश्व-मंगल की कामना उनकी कविताओं में स्थान स्थान पर देखी जा सकती है ।

केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल का काव्य-संसार समृद्ध है । उनकी कविताओं में जीवन का यथार्थ चित्रण होता है । उनकी कवितायें एक समाज सजग दायित्व-प्रेरित कवि की अभिव्यक्तियाँ कही जा सकती हैं । उनके ही स्वीकारोक्ति है "कविताई न मैं ने पाई, न चुराई । इसे मैं ने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है[1] ।"

केदार ने प्रेम, प्रकृति एवं सामाजिक चेतना की कवितायें लिखीं । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में हुई सभी प्रमुख घटनाओं पर केदार ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है ।

उनके "कहें केदार खरी खरी" "जो शिलायें तोड़ते हैं, "फूल नहीं रंग बोलते हैं" "आग का आईना" आदि संग्रहों का अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है ।

सामाजिक चेतना

अपने गाँव के दीन-हीन लोगों की सामाजिक और आर्थिक अवस्था ने केदार को विचलित कर दिया । इसलिये निम्न वर्ग के प्रति

---

1. केदार - लोक और आलोक - भूमिका

उनके मन में सहानुभूति उत्पन्न हुई । अशोक त्रिपाठी की निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश रखना उपयुक्त होगा - "केदार धरती के कवि है । खेत, खलिहान, कारखाने और कचहरी के कवि है । इन सबके दुख-दर्द, संघर्ष और हर्ष के कवि है । वे पीडित और शोषित मनुष्य के पक्षधर हैं । वे मनुष्य के कवि हैं । मनुष्य बनना और बनाना ही उनके जीवन की तथा कवि कर्म की सबसे बडी साध तथा साधना भी[1] ।" कवि के ही शब्दों में -

मुझे प्राप्त है जनता का बल
वह बल मेरी कविता का बल
xx xx xx
मुझे प्राप्त है जनता का स्वर
वह मेरी कविता का स्वर
मैं उस स्वर से
काव्य-प्रखर से
युग जीवन के सत्य लिखूँगा[2] ।"

केदार की कविताओं में किसानों का गीत है, उनकी वेदना है, उनकी चेतना है । किसानों के संकटों को वे भली-भाँति जानते थे । और हमेशा उनका साथ देते थे । उन्होंने कहा -

मैं तुम्हारी जिन्दगी हूँ
शेर-सा ढाला गया हूँ ।
मैं तुम्हारे खून में ही
क्रांति से पाला गया हूँ ।।

1· अशोक त्रिपाठी - कहे केदार खरी खरी - भूमिका
2· कहे केदार खरी खरी, पृ·128

मैं तुम्हारा कर्म सूरज,
खेत में डाला गया हूं
सेठ साहूकार जैसे
शत्रु से घाला गया हूं[1] ।

भूख और गरीबी

भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन वांछित प्रगति देश में नहीं हुई है । गरीबी न हटी । शोषण खूब चल रहा है । महंगाई और चोरबाज़ारी बढी । केदार ने देश की गरीबी का चित्रण इस प्रकार किया है -

किन्तु, झोंपडी वही खडी है,
नई ईंट तक नहीं लगी है ।
बडी गरीबी भरी पडी है,
वही भूखा है
वही क्षुधा है
वही कर्ज है
वही सूद है,
वही जमीन्दारों का छल है,
मानव से मानव शोषित है[2] ।

1• कहे केदार खरी खरी, पृ•87

2• वही, पृ•47

महँगाई के इस काल में कम वेतन से जीने पडनेवाले अध्यापक वर्ग का दयनीय चित्र कवि ने खींचा है । "भूखे रहना, शिक्षा देना, सदा मौत से लडना - बेचारे अध्यापकों की स्थिति कुछ इस प्रकार की है"।

हमारा अतीत सुवर्ण था । लेकिन आज स्थिति भिन्न है । कल रोटी थी, आज रोटी नहीं । कल रोजी थी, आज नहीं । रोटी और रोज़ी जनजीवन केलिये कठिन बन गयी है । कल से अधिक आज कट् दिन है । जैसे -

टैक्सों की भरमार / हमारी करती है सरकार
जीवन का अधिकार / हमारी हरती है सरकार[1]।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी कुछ कल्याण नहीं हुआ, कोई वरदान नहीं मिला । सब आँसू के गीत गाते हैं । युग के प्राण तडप रहे हैं । जैसे "जनगीत" में उन्होंने लिखा -

दुख न गयो,
दरिद ना छूटे,
चोर-बाजारी दिन-दिन लूटे
धीरज-स्नेही फुस-फुस टूटे,
ऐसी राज का भंडा फूटे[2] ।

1· कहे केदार खरी खरी, पृ·114
2· वही, पृ·95

पूँजीवाद का विरोध

केदार ने स्वतंत्र भारत को शोषक का साम्राज्य कहा । शोषकों की संस्कृति मानवता को खानेवाली है । पैसे आज सब कुछ बन गया है । कवि की दृष्टि में पैसे दिमाग में वैसे हैं जैसे हरे खेत में सुअर है ।

मजदूर दिन भर मेहनत करते हैं; पत्थर लोहे से लड़ते हैं और अपनी रोटी कमाते हैं और शोषक पूँजीपति उनकी मेहनत की पूँजी अपने बैंकों में धरते है । पूँजीपतियों पर कवि का रोष इस प्रकार फूट पड़ा -

आग लगे इस रामराज्य में
ढोलक मढ़ती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की
खून बहा है राम-राज में
xx xx xx
रोटी रूठी, कौर छिना है
थाली सूनी, अन्न बिना है
पेट धँसा है राम राज में[1] ।

'महकती जिन्दगी', 'हे मेरी तुम' जैसी कविताओं में पूँजीपतियों के प्रति केदार की चीख सुनाई पड़ती है । अपहरण की यातना से व्यथित, विह्वल शोषित सर्वहारा क्रूर हिंस्र-पशुओं से अपनी स्वत्व की लड़ाई लड़ रहा है ।

---

1. कहें केदार खरी खरी, पृ.8।

अपने रुधिर से भूमि में लाल टेसू के अंगारे बो रहा है । वह क्रांतिकारी और लडाकू सभ्यता के नव क्षितिज पर लाल झंडा उठाये चल रहा है । गिद्ध उसकी देह जिन्दा चींथते हैं और उसकी हड्डियों का फोसफरस खींचने को चोंच के आघात पैने मारते हैं । सर्वहारा राज्य की स्थापना केलिये केदार ने क्रांति को आवश्यक बताया है । "हे मेरी तुम" कविता में उन्होंने "पत्रावली" और "पतझर" के प्रतीकों के द्वारा पूंजीपतियों के अंत होने की प्रतीक्षा प्रकट की है । आज तरुओं में लहरानेवाली, फल-फूलों के आलिंगन में सुख पानेवाली पत्रावली {पूंजीपति वर्ग} पतझर {क्रांति} के आने पर झर जायेगी और मूलों का बलवर्धक भोजन बन जायेगी - यही कवि की प्रतीक्षा है ।

यह समीर जो महामेरु से
टकराता है
बादल बिजली और प्रलय से,
लड जाता है
बडवाग्नि से जल-थल-अम्बर
दहकाता है
जन सेना के विजय-केतु को
फहराता है[1] ।

पूंजीवाद के विरुद्ध इतना तीखा विरोध विवेच्य युगीन कवियों में केदार की कविताओं में मिलता है ।

---

1. जो शिलायें तोडते हैं, पृ.184

राजनीतिक चेतना

स्वतंत्रता पर हर्ष प्रकट करते हुए केदार ने लिखा- ढाई सौ वर्षों के बाद हमारे हाथ पाँव की कड़ियाँ तड़कीं, छाती के सब कीलें उखड़ी, सूखा लहू नस-नस में दौड़ा । देश भर में उल्लास और सन्तोष का वातावरण फैला । ढाई सौ वर्षों के बाद भाई ने भाई को भेंटा, माँओं ने पुत्रों को चूमा ।

भारत की स्वतंत्रता ने कई राज्यों के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रेरणा दी । राख की मुरदा तहों के बहुत नीचे, नींद की काली गुफाओं के अँधेरे में तिरोहित और मृत्यु के भुज बन्धनों में चेतनाहत जो अंगारे खो गये थे, पूर्वी जनक्रांति के भूकम्प ने उनको उभारा ।

हमारी वर्तमान राजनीति पर भी केदार ने काफी विचार किया है । पेट-पूजा की कमाई में जुटे हुए, सत्य के जारज सुत लंदनी गौरांग प्रभु की लीक पर चलते हैं और डालरी साम्राज्यवादी भौत-घर में आँखें मूँदकर डांस करते हैं । आज राजनीति जुएँ का खेल बन गयी है । बूचडों के न्यायघर में लोकशाही के करोडों राम सीता का मूक पशुओं की तरह, बलिदान होते हैं । केदार का व्यंग्य कितना पैना है, कितना तीखा है, देखिए -

नाश के वैतालिकों को
संविधानी शासनालय की सभा में
दंड की डौंडी बजाते देखता हूं ।

कंस की प्रतिमूर्तियों को
मुण्ड मालायें बनाते देखता हूँ ।
काल भैरव के सहोदर भाईयों को
रक्त की धारा बहाते देखता हूँ ।[1]

वर्तमान भ्रष्ट राजनीति पर प्रहार करने केलिए केदार ने व्यंग्य का सहारा लिया है । उनकी पैनी दृष्टि ने नेताओं को भी नहीं छोडा है । शासन-शयनागार में सोई सोई शाहंशाही रौनक की झनकार में हमारे नेता गण सुन्दर सुन्दर सपने देखते रहते हैं । कवि की दृष्टि में आज के नेता सामन्ती वर्ग के साथी है । वे काले बाज़ारों की रक्षा केलिये कानून बनाते हैं । इस पर केदार का व्यंग्य देखिये -

जन जीवन के वह मालिक है, वह है भाग्यविधाता
देख देख कर उसकी लीला, सिर नीचे झुक जाता ।[2]

बडे काम में छोटे काम भुलाना उनका धर्म बन गया है । आज के नेता बडे काम के कारण छोटी जनता को ठुकराना और रोटी-रोजी के सवाल को कोसों दूर भगाना अपना कर्तव्य समझते हैं । मंत्री बनना उनकेलिये, अपनी इच्छाओं को पूरा करने का अवसर जैसा है । शोषकों के गले लगाकर नेता भी जनता का शोषण कर रहा है । राज्य लक्ष्मी दिल्ली के भगवान की चेरी बनकर बैठी है । 'फगुआ का व्यंग्य' कविता में केदार ने इन्हीं बातों को तीखी वाणी में व्यक्त किया है ।

---

1. कहें केदार खरी खरी, पृ.65
2. वही, पृ.53

शासन के अधिकारी नेता डायर की वर्दी पहने हैं। सत्य और अहिंसा के अवतारी हिंसा का रूप धरे हैं। वे अंग्रेज़ी पिस्तौल चलाकर, कफ़न लपेटी आज़ादी को जन सेवक का खून चटाकर रामराज्य की कथा सुनाते सौ प्रयत्न से जिला रहे हैं। इस वक्त आवश्यक यह कि -

सारी जनवादी ताकत को आगे बढ़ लोहा लेना है,
डायर की वर्दी नेता से हर लेनी है,
अंग्रेज़ी पिस्तौल छीनकर,
उसके हाथों में टेसू की फूली लाल छड़ी देना है।
चन्दन की शीतल खुशबू से मन हरना है।[1]"

केदार ने उपर्युक्त पंक्तियों में क्रान्ति का आह्वान किया है। क्योंकि "मुस्कान से या शान से शासन न बदलेगा। काग्रेसी शासन में कवि ने अतृप्ति प्रकट की है। काग्रेस के राज में जनता हताश हो गयी है - यही कवि का विचार है। उनकी दृष्टि में काग्रेस का शासन उस खेत के समान है जो बीज को खाता है। सरकार पूंजीपति की गोद में खेल रही है। उनकी 'काका-काकी संवाद', 'यह देखो कुदरत का खेल' आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है।

गिरगिट बैठे सिंहासन पर,
गदहे लगाते तेल।
बीन बजाते बाज महोदय
मगर चलाते रेल!
यह देखो कुदरत का खेल[2]।

---

1. कहें केदार खरी खरी, पृ.101
2. वही, पृ.125

जैसी पंक्तियाँ उनकी व्यंग्य और पैनी दृष्टि का परिचय देती हैं ।

वर्तमान नेता यात्रा करना और भाषण छेडना अपना कर्तव्य समझते हैं । इस पर कवि का व्यंग्य इस प्रकार है -

रेल सफर में मैं चलता हूं, तो होती है बाधा
एक बार की यात्रा में ही, हो जाता हूं आधा
इसलिये तो वायुयान की, प्रिय है मुझे सवारी
धरती में चलने फिरने से, होती है बीमारी[1] ।

अंत में कवि युवा पीढी को नये भारत के निर्माण की प्रेरणा देते हैं । 'शोषक का साम्राज्य हरेंगे । जनवादी सरकार करेंगे' यह 'शपथ' भी वे लेते हैं ।

"काश्मीर", "जोनी" जैसी कविताओं में केदार ने काश्मीर आक्रमण की प्रतिक्रिया व्यक्त की है ।

सांस्कृतिक चेतना

वर्तमान युग के सांस्कृतिक ह्रास को चित्रित करते वक्त भी केदार ने व्यंग्य का सहारा लिया है । सत्य के हरिश्चन्द्र आज अन्याय के घर में झूठ की गवाही देते हैं । द्रौपदी, शैव्या और शचि रूप की दूकान खोल कर दो दो टके में लाज को बेचती है । सत्य को आज कारागृह की दीवारों में कैद कर दिया गया है । भ्रष्टाचार बढा है-

---

1. कहें केदार खरी खरी, पृ.55

चौतरफा भ्रष्टाचार
लम्बे चौडे खोले द्वार
देसी और विदेसी यार
काट रहे मुफ्ती कलदार[1] ।

कचहरी की कार्य प्रणाली में आदमी के रूप में स्वार्थियों की जमात है । कानून इन्सान के खिलाफ एक हथियार हो रहा है । न्याय के नाम पर सरासर अन्याय होते हैं । नैतिक पतन और रिश्वतखोरी पर कवि का व्यंग्य देखिये -

स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना
ऊपर की आमदनी का पैसा खाना
ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना
तरह और तरकीब से पकड में न आना
क्या खूब है जमाना[2] ।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर भी उनकी दृष्टि गयी है । शिक्षा की पवित्रता आज नष्ट हो गयी है ।

विद्या के महँगे हैं दाम
पढना नहीं सहज है काम
टीचर करते हैं कुहराम
बालक होते हैं बदनाम[3] ।

---

1. कहें केदार खरी खरी, पृ.115
2. आग का आईना, पृ.81
3. कहें केदार खरी खरी, पृ.115

निष्कर्ष

विवेच्य युगीन कविताओं के विश्लेषण के आधार पर इस निष्कर्ष पर हम पहुँच सकते हैं कि केदार की कवितायें युग का दस्तावेज है । किसानों और मजदूरों के प्रति उनका विशेष लगाव है । श्रमिक वर्ग को क्रांति केलिये उन्होंने आह्वान किया है । उनकी कविताओं की विशेषता तीखा व्यंग्य है । 'आग लगे इस रामराज में', 'शपथ', 'यदि आयेगा डालर', 'हमारे अफसर आदमखोर', 'यह देखो कुदरत का खेल', 'मन्त्री मास्टर संवाद' आदि सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण व्यंग्य कवितायें हैं । यद्यपि केदार ने समाज के प्रायः सभी पहलुओं पर विचार किया है, फिर भी आपकी कविताओं में पूंजीपतियों पर आक्रोश और राजनीतिक व्यंग्य ज्यादा मुखरित होता है ।

नरेन्द्र शर्मा

व्यक्तिगत और सामाजिक सारी स्थितियों में आपने जो देखा और सहा, श्री नरेन्द्र शर्मा ने अपनी कविताओं द्वारा उन्हें प्रकट किया है। उन्होंने अपने को सामाजिक प्राणी मानकर अपनी क्षुद्र परिधि के बाहर आकर चहुँ दिशि बाहु फैलाना चाहा। इसलिये उन्होंने स्वतंत्र भारत में जी खोलकर शत बाहु फैलाकर जीने केलिये अगोचर ईश्वर से प्रार्थना की है।

नरेन्द्र शर्मा कवि को किसान मानने के पक्ष में थे। उनकी दृष्टि में कवि जनता की मनोभूमि में ज्योति के बीज बोनेवाला किसान है। अहल्या के समान रिक्त जन हृदयों से तिमिर दूर करके ज्योति के बीज बोना, उनके मतानुसार कवि का धर्म है। कवि देश काल जन्य परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। स्वातंत्र्योत्तर युग के कवि व्यष्टि समष्टिगत स्वानुभव को ही अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति का स्रोत और आधार बनाया है। नरेन्द्र शर्मा ने अपनी कविताओं को समाज सापेक्ष माना है। उनके ही शब्दों में "मनोभूमि के कृषक के नाते, कवि कर्म को मैं अपना लोकोपयोगी कर्तव्य कार्य समझता हूँ और मानता हूँ कि मैं इस प्रकार समाज के मनोमय वैश्वानर की पूजा में नैवेद्य समर्पित करता हूँ।[1]" नरेन्द्र की कवितायें एक व्यक्ति की वाणी नहीं, समाज की वाणी कही जा सकती है।

---

1. प्यासा निर्झर - भूमिका

सामाजिक चेतना

वर्तमान समाज में जीवन-प्रवाह दुर्वह है । आदमी एकांत नीडों में अकेले रहना पसन्द करता है । सब स्वार्थी बन गये हैं । सर्वत्र भ्रष्टाचार का शासन है । बडे नगरों में मनुजता क्षुद्र बन गयी है । क्षुद्र मनुजता अचिरता (क्षणिकता) की चेरी बनी है । मानव अर्थ का दास बनकर जीवन व्यर्थ गँवाता है । मानव की आँखें प्यासी है और मन सूना है । कल को आज निगलनेवाला कर्ज शहर का राजा है । पूँजी के हत्यारों से मानव शासित और शोषित है । मनुष्य अपने जन्मसिद्ध अधिकारों से भी वंचित रहते हैं । इन्हीं विचारों को कवि ने "चातक मनुज" कविता में व्यक्त किया है -

मनु का पुत्र युगों से
खोई मानवता का प्यासा,
धर्म अर्थ की रीति नीति से
पूरी हुई न आशा ।
हाथ पसारे रही सभ्यता
न्यायालय के द्वारे ।
पक्ष-विपक्षों की छाया में
कहाँ न्याय के दर्शन ?
देव और दानव बन मानव
खो देते मानवपन ।[1]

---

1. अग्नि शस्य, पृ.80

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रामराज्य का सपना देखनेवाले निराश हुए । रामराज्य को असाध्य देख कर कवि क्षुब्ध हो गये हैं - "रामजन्म क्यों हुआ / न लक्ष्य रामराज्य यदि ? ज्योति के वस्त्र पहनकर तिमिर-पुत्र नाच रहे हैं ।[1]

आलोच्य युग के अन्य कवियों के समान नरेन्द्र शर्मा ने भी तत्कालीन समाज की सही आलोचना की है । उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर समाज का यथार्थ चित्रण किया है ।

शोषण का विरोध

नरेन्द्र शर्मा की कविता दीन हीन श्रीविहीन, निरक्षर श्रमिकों की वाणी कही जा सकती है । उन्होंने शोषण का कुल्कर विरोध किया है । नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में क्रांति का स्वर मुखरित होता है । "घट भर चुका है । चरम विस्फोट की बेला निकट आई है। मृत्तिका का ज्वलित ढेला लपट बनकर नाचता है । बहुत दिन तक शोषकों ने शोषितों से मेल खेला । कोटि कंठ आज क्रांति का गीत गा रहा है[2] । नरेन्द्र के विचार में वर्ग संघर्ष को मिटाने केलिटे क्रांति आवश्यक है । कवि का विश्वास था कि प्रार्थनाओं से अब धरा नहीं पसीजेगी । रक्त से सिंचे बिना धरा अब उर्वरा नहीं होगी । लाखों के लहू से ही धरा का बाग फिर हरा होगा[3] ।

---

1. अग्नि शस्य, पृ.85
2. वही, पृ.115
3. बहुत रात गए, पृ.30

नरेन्द्र शर्मा ने अपनी कविताओं में शोषित जनता को क्रांति केलिये आह्वान किया है।[1]

नारी के प्रति दृष्टिकोण

नारी के प्रति नरेन्द्र शर्मा का दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण है। उनकी राय में भारत की नारी आज भस्मसात् चिनगारी के समान है। उनको पुन: चैतन्य लपट बनना चाहिए। स्त्री के ऊपर होनेवाले अत्याचारों के प्रति समाज को सजग रहना चाहिए।

कवि के विचारानुसार सदियों से नारी शोषित है। देवेन्द्र इन्द्र भी नारी को धोखा देने से नहीं चूका। लोकरंजन में रघुनायक ने सीता को निर्वासित कर दिया। लक्ष्मण और बुद्ध ने स्त्री का तिरस्कार किया। आर्थिक पराधीनता स्त्री को उर्वशी और रंभा बनकर अमीरों के स्वर्ग में नृत्य करने को बाध्य कराती है। युग युग से इस पुण्य देश पर छाये इस जडत्व को दूर करने केलिये कवि ने भारतीय नारी का आह्वान किया है, उसे फिर दक्ष-प्रजापति, प्रलयंकर शंकर की सहचरि सती बनने केलिये, महिषासुर मर्दिनी बनने केलिये, अंधियारी जगत को उजारी बनाने केलिये प्रेरणा दी है।[1]

1· अग्नि शस्य, पृ·65

पाँच महातत्वों को संश्लिष्ट और तेजोमय कर देनेवाली जीवनी शक्ति द्रौपदी को कवि ने भारतीय नारी का प्रतीक माना है ।

नारी काम-दासी नहीं, गृहिणी है । 'गृहिणी प्रिया प्रेयसी है / वह श्रिया श्रेयसी भी है ।' नारी नर की आदि शक्ति है, वीर पुरुष की माता है । उसको मात्र भोगवस्तु नहीं मानना चाहिए -

क्यों नर की सहचरी न नारी,
भोग्या एक पहर की ?
xx xx xx
क्यों नर नंदी रहे और क्यों
घर की बछिया नारी ?[1]

नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण निश्चय ही नारी समाज को उन्नति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देनेवाला है ।

राजनीतिक चेतना

नरेन्द्र शर्मा ने स्वतंत्रता को शापमुक्ति कहा । भारत आज शापमुक्त हुए । हमारे ऊपर से अब तिमिरमयी निशा चली गई । स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए कवि ने लिखा -

---

1. बहुत रात गये, पृ.43

अब तिमिरमयी निशा चली गई,
शापमुक्त, पापमुक्त, हो रही मही !
तिमिर-क्रोड फोड भानु भासमान रे -
नव विहान, नव निशान, भारती नई[1]।

इस मंगल मुहूर्त पर कवि की प्रार्थना यह है कि भारत की जनता अब विपन्न न रहें, अश्रु हास के ओस पुष्प नृत्य करें। भारत को फिर कभी दास न बनें। "दास दस्यु का जीवन ऋण है।" इसलिये परतंत्रता और दासत्व घृणित है।

वर्तमान राजनीति की समस्याओं पर भी नरेन्द्र शर्मा ने विचार किया है। उनकी दृष्टि में राष्ट्र की नींव हिल रही है। राष्ट्र की शक्ति और संपदा गौण और व्यक्ति व्यक्ति का श्रम आज मुख्य कार्य बन गया है। इसलिये राष्ट्र की नस-नस दुखती है -

राष्ट्र के रोम-रोम में आग
बीन नीरो की बजती है ?
बुद्धिजीवि बन गया विदेह,
राष्ट्र की मिथिला जलती है[2]।

---

1. अग्नि शस्य, पृ.48
2. बहुत रात गए पृ.22

कवि पूछते हैं कि क्या यही सामन्तवाद का अंत ? यही लोकतंत्र का अर्थ ? सच्चा आदर्श आज सपना हुआ है । जनमन का सच्चा मित्र आज अव्यवहारी कहलाता है । नेता आज जन नेता नहीं, अभिनेता बन गये हैं । नेताओं की चरित्रहीनता पर व्यंग्य करते हुए कवि ने इस प्रकार लिखा है कि -

सब बहकाते बहकाते हैं, जो मैं कहता हूँ वही नीति !
मैं भारतीयता का प्रतीक, भारत जन मुझसे करो प्रीति !
रह राजनीति से दूर, सदा मतदान मुझे करते रहना ।[1]

देश की वर्तमान राजनीति से असंतुष्ट कवि को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है । उनकी "राष्ट्र और व्यक्ति", "नेता", नेता-अभिनेता आदि कवितायें इस कोटि में आनेवाली है ।

गाँधीजी के प्रति आदर

कवि के अनुसार गाँधीजी रक्त-चन्दन था जिसमें उन्होंने हमारे स्वातंत्र्य प्रभात को सींचा था । उन्होंने जनहित केलिये सब कुछ सहा, सब कुछ किया । उन्होंने अपने सारे अरमानों को, प्राणों को भी दान दिया । दुनिया में अब तक कई क्रान्ति हुई । लेकिन अहिंसा क्रान्ति नई थी । गाँधीजी का जयगान करते हुए उन्होंने लिखा -

---

1. प्यासा निर्झर, पृ.155

सबका सुख ही स्वान्त: सुख है, हुआ सत्य का दर्शन
व्यष्टि-समष्टि, स्व-पर, करता मन सीमा का उल्लंघन ।
सीमोल्लंघन किया, स्वयं को यम-नियमों में बाँधा ।
जागा अद्वय-भाव हृदय में, सेवा धर्म सनातन ।[1]

"सार्थवाह बापू", "महात्मा गाँधी", "जन-धन बापू" आदि कविताओं में भी नरेन्द्र शर्मा ने गाँधीजी का यशोगान किया है । "गये महात्मन्", "सावधान हत्यारा" आदि कविताओं में उन्होंने बापू की हत्या पर दुख और हत्यारे पर रोष प्रकट किया है ।

"क्रांति स्वर", "उत्तर-प्रश्न" जैसी कविताओं में रक्तक्रांति का समर्थन करनेवाले कवि को इन कविताओं में अहिंसात्मक क्रान्ति का समर्थक बनते देखा जा सकता है । नरेन्द्र शर्मा के अतिरिक्त आलोच्य काल में नागार्जुन की कविताओं में यह वैरूप्य देखा जा सकता है ।

सांस्कृतिक चेतना

आर्ष संस्कृति का प्रेमी नरेन्द्र शर्मा ने वर्तमान सांस्कृतिक गिरावट पर दुख प्रकट किया है । उनके विचारानुसार हमारा सुवर्ण भूत काल गायब हो गये । इन्द्रध्वजधारी भारत का यश गान हम भूल गये । रघु भीमार्जुन का भारतवर्ष आज एक सपना बन गया । इसलिये कवि ने कहा -

---

1. बहुत रात गए, पृ.110

आत्मविस्मृत वीर बालक,
करो गर्जन, सिंह-शावक[1]।

अब भारतवासी पर-श्रम और परान्न ग्रहण कर जीते हैं। अब भी नवभारत की मनोभूमि विदेश की दासी है। देश-प्रेम से ओत-प्रोत कवि ने लिखा -

भारत संतान,
भारत को पूजो तुम अपना देव पितृ ऋषि जान[2]।

वर्तमान समाज में मानवता खोयी हुई है। न्याय का दर्शन तक नहीं। इस सांस्कृतिक ह्रास की अवस्था को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है -

मनु का पुत्र युगों से
खोई मानवता का प्यासा,
धर्म अर्थ की रीति-नीति से
पूरी हुई न आशा।
हाथ पसारे रही सभ्यता
न्यायालय के द्वारे।
पक्ष-विपक्षों की छाया में
कहाँ न्याय का दर्शन ?
देव और दानव बन मानव
खो देते मानवपन[3]।"

---

1. बहुत रात गए, पृ.88
2. वही, पृ.127
3. अग्निशस्य, पृ.80

शर्माजी ने अपनी कविताओं में भारत के सुवर्ण भूतकाल को लौटाने का प्रयत्न किया है । खोयी हुई मानवता के उद्धार केलिये उन्होंने जनता को उद्‌बोधित भी किया है ।

मानसिक दासता का विरोध

भारतीयों की मानसिक दासता पर कवि ने रोष प्रकट किया है । हमारी काया स्वतंत्र हो गयी, किंतु हमारा मन अभी परतंत्र है । हमें अपनी मिट्टी, अपनी मिट्टी के जन और अपनी भाषा से प्रेम है । सब अँग्रेज़ीपन में रंगे हुए हैं । कवि का कहना है कि हम सब में अँग्रेज़ी विषाणु है ।

अँग्रेज़ देश से गए, देश से गया नहीं अँग्रेज़ीपन
xx xx xx
शक हूण तुर्क अफ़गान मुगल अँग्रेज़ों के वारिश बन कर
अँग्रेज़ी भाषा के बल पर, हम बैठे तख़्तों पर तन कर ![1]

एक देश-प्रेमी ही विदेशीपन का विरोध कर सकता है । कवि का देश प्रेम इन पंक्तियों में सुवर्ण रेखा बनकर झलकता है ।

चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया

कवि ने, भारत को भाई कह कर, छल बल का जाल बिछानेवाले, भारत पर आक्रमण करनेवाले चीन की कटु आलोचना की है -

---

1. प्यासा निर्झर, पृ.153

गाँधीजी का यह देश -
भीत होगा न तुम्हारे भय से ।
वैसे, हम भव की शांति
चाहते हैं मन प्राण हृदय से[1] ।

यांत्रिक संस्कृति का विरोध

नरेन्द्र शर्मा ने वर्तमान यंत्र संस्कृति का विरोध किया है । मनुष्य यंत्र का दास बन गया है। कवि के मतानुसार मानव का क्रन्दन मानव ही सुन सकता है, यंत्र नहीं ।

वस्तु बनी थी मानव के हित,
यहाँ वस्तु के हित मानव !
वस्तु-यूप पर मानव की बलि
देता लिप्सा का दानव !
मन पसीजता नहीं पत्थरों का
मानव-चीत्कारों में[2] ।

युद्ध एवं शांति

लोभी और नफाखोर युद्ध के दिन की प्रतीक्षा करते हैं । वे लाखों की जानें लेकर अपने को संपन्न बनाने केलिये लाखों के घर उजाड़कर अपने घर भरने केलिए उत्सुक है । कवि ने, विश्वशांति के नारे लगानेवाले तथाकथित लोगों पर व्यंग्य किया है -

1. प्यासा निर्झर, पृ.217
2. वही, पृ.74

राष्ट्र धर्म के बिल्ले लेकर घर घर बटवाएगा
विश्व-शांति केलिये गरजती तोपें ढलवायेगा
बारूदी विषभरी सुरंगें पथ में बिछवाएगा।[1]

कवि की युद्ध विरोधी दृष्टि और मानवतावादी चेतना यहाँ देखी जा सकती है।

धार्मिक चेतना

भारत हर युग में धर्म को प्रधानता देता आया है। राम भक्ति से, शक्ति-ओज से संयुक्त भारतवर्ष रामराज की प्रतीक्षा कर रही है। प्रेत-योनि से प्राणमुत्र का उद्धार करने केलिये रामजन्म को कवि आवश्यक मानते हैं। हर युग में रामजन्म होता है। लेकिन यह देश राम को न पहचानते हैं। कवि के मतानुसार भस्माकृत अंगारे के समान भारतवर्ष अधिक दिन तक नहीं रह सकता। वे धर्म को कर्म से जुड़ाने के पक्षपाती है -

ब्रह्म-ज्ञान सेवा के व्रत बिन,
दम्भ दीप्त अज्ञान !
महतकर्म के बिना धर्म को
कहाँ मिला सम्मान ?[2]"

---

1. अग्नि शस्य, पृ:125
2. बहुत रात गए, पृ.28

धर्म को कर्म से जुड़ने की यह प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर कवियों में केवल नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में देखी जा सकती है ।

भविष्य के प्रति आस्था

वर्तमान समाज विद्रूपताओं से भरा हुआ है । लेकिन भविष्य के प्रति कवि आशावादी है । आज के दुख, दैन्य में कल के स्वास्थ्य का सन्देश है ।

आज के दुख में निहित है कल सुखों का साज,
क्यों न आशा हो मुझे इस देश के प्रति आज ?[1]
xx xx xx
वसुधा एक कुटुम्ब होगी,
सब सदस्य होंगे सहयोगी ।[2]

नरेन्द्र शर्मा की ये कवितायें निश्चय ही समाज को आगे बढ़ने केलिये प्रेरणा देनेवाली है । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश भी इनमें निहित है ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में सामाजिक चेतना प्रखर है । देश की दुरवस्था ने कवि को सताया है । 'युग की सन्ध्या', 'सृष्टि', 'घातक मनुज', 'गृद्ध लगे मंडराने', 'राष्ट्र और व्यक्ति', 'आधा सोया, आधा जागा', 'वर्तमान', 'पत्थर की

---

1. अग्नि शस्य, पृ.114
2. प्यासा निर्झर, पृ.149

दीवारों से," जैसी कविताओं में उन्होंने युग सत्य को अभिव्यक्ति दी है । शोषित जन के प्रति उन्होंने विशेष सहानुभूति दिखायी है । "महल और कुटिया", "उत्तर प्रश्न", "क्रांति स्वर" जैसी कविताओं में उन्होंने क्रांति का आह्वान किया है । लेकिन कुछ कविताओं में उनको गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत का पक्षपाती देखा जा सकता है । उनकी धार्मिक चेतना उल्लेखनीय है जहाँ उन्होंने धर्म को कर्म से जुड़ने की बात कही है । वे मानवता के प्रबल समर्थक है । वर्तमान युग में नारी की अवस्था के प्रति उन्होंने ज्यादा विचार किया है ।

भवानी प्रसाद मिश्र

अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा पाठकों को नवीन संवेदना देनेवाले भवानी प्रसाद मिश्र विवेच्य युग के प्रमुख कवियों में एक हैं। सन् 1930 से लेकर लगभग पचास वर्ष की काव्य साधना में, युग का सारा राजनीतिक सामाजिक विडम्बनाओं और विसंगतियों को उन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया है। बचपन से ही गाँधीवादी आन्दोलनों से परिचित रहने के कारण उनकी सम्पूर्ण कविताओं पर उनकी छाप पड़ी है।

मिश्रजी के सोलह काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से 'गीत फरोश,' 'गाँधी पंचशती', 'अन्धेरी कवितायें' और 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित कवितायें विवेच्य काल की हैं। मिश्रजी ने दलबन्दी से दूर रहकर परिवेश को समझने और अभिव्यक्त करने में ध्यान दिया है। उनकी कविताओं की पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर समाज अपनी सारी हलचलों के साथ मौजूद रहता है।

सामाजिक चेतना

भवानी प्रसाद मिश्र के कवि हमेशा सामाजिक चेतना के पक्ष में थे। निरानंद सुख दुख से अछूता जीवन वे नहीं चाहते थे। कविता और जिन्दगी को निकट लाने का जितना प्रयास उनकी कविताओं में है उतना शायद इस युग के किसी भी कवि की कविताओं में नहीं है। उनकी कविता और जिन्दगी एक दूसरे को 'कन्डीशन्ड' करते हैं।[1]

1. विजयबहादुर सिंह - भवानी भाई, पृ. 257-258

कवि की बेचैनी निजी सुख दुख को लेकर नहीं बल्कि सबके सुख को और ज्यादातर लोगों के दुख को लेकर है । आनेवाले कल को उज्ज्वल बनाने केलिये वे व्याकुल थे ।

मैं कोई विरही कवि नहीं हूं
मैं निरर्थक कोई छवि नहीं हूं
मैं जमाना हूं सब मेरे साथ है ।
xx x xx
मैं गाता हूं गाने ज्यादातर जिन्दगी के
उसी के सुखों के उसी के दुखों के [1]।

मिश्रजी की कविताओं की सामाजिक चेतना को स्पष्ट करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि उनकी समस्त कविताई लोक जीवन की भावभूमि पर फैलती-पनपती रही है । उनके कवि मन में यह धारणा गहराई से पैठ गई है कि अपने को व्यक्त करने की जरूरत ही सबसे बड़ी ज़रूरत है । इस अपने को व्यक्त करने में समाज, धर्म, दर्शन आदि सभी साहित्य रहते हैं[2] । मिश्रजी ने अपनी कविता की सभी सामग्री जीवन के सीधे संपर्क से प्राप्त करना चाहा । जीवन की कठोरताओं और अभावों को चित्रित करने से वे कभी नहीं चूकते -

सड़े पत्ते, गले पत्ते
हरे पत्ते, जले पत्ते
वन्य पथ को ढंक रहे - से
पंक-दल में पले पत्ते[3] ।

---

1. गांधी पंचशती, पृ.227,233
2. डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल - भवानीप्रसाद का काव्य संसार,पृ.38
3. दूसरा सप्तक, पृ.7

सामाजिक असंतोष, जो मध्यवर्गीय जीवन का मुख्य स्वर है, मिश्रजी की कविताओं में भरा हुआ है । मध्यवर्ग के सहज जीवन को, उनके जीवन की तनावों, द्वन्द्वों कुंठाओं, ऊब और घुटन को भोगे हुए यथार्थ से सम्बन्ध कर उन्होंने अभिव्यक्त किया है । यह मध्यवर्गीय चेतना उनको अपने परिवेश से मिला था । इस बात को स्पष्ट करते हुए "दूसरा सप्तक" के अपने वक्तव्य में उन्होंने लिखा है -"साधारण मध्यवित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम जो किए वे सभी असाधारण से अछूते । मेरे आसपास के तमाम लोगों की भी सुविधायें - असुविधायें मेरी थी ।[1] साधारण से साधारण लोगों की दीनता को, मलिनता को, भूख को वाणी देने में वे सतर्क रहे ।

साहित्यकार की वाणी और कला, वर्तमान पूँजीवादी समाज में किस प्रकार बिक जाती है, गीतफरोश की कवितायें इसका स्पष्ट प्रमाण है । ह्रासशील अर्थ व्यवस्था के इस युग में मध्यवर्गीय कवि की यही स्थिति है -

जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान -
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ ।
या भीतर जाकर पूछ आइए आप
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार
हारकर गीत बेचता हूँ ।"

---

1. दूसरा सप्तक, पृ॰20

"सन्नाटा", "स्नेह-पथ" जैसी कविताओं में उन्होंने मध्यवर्ग के अभिशप्त जीवन को चित्रित किया है ।

मिश्रजी कभी सत्ता के कवि नहीं रहे । सत्ता पक्ष की बात हो या विरोध पक्ष की, उसे निर्भयता से कह देना उनका कवि-स्वभाव था । उनकी कविताओं में समकालीन व्यवस्था के विरोध का स्वर भी है । जैसे -

मैं सोच रहा हूँ सख्त व्यवस्था के पाटों को
किस घन की चोटों से तोड़ूँ चूर करूँ[1] ।

मनुष्य के सामाजिक जीवन की मूल इकाई है परिवार । यद्यपि हमारी परम्परागत संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली आज टूट गयी है फिर भी परिवार का महत्व कम नहीं हो गया है । इसलिये उन्होंने लिखा "कोई भी देश, कोई भी समाज अपने घरों के बल पर टिकता है, कलों और कारखानों के बल पर नहीं[2] ।"

मिश्रजी कभी वैयक्तिकता के पक्ष में नहीं रहे, समष्टि चेतना के पक्ष में रहे ।

---

1. गांधी पंचशती, पृ. 152
2. वही, पृ. 284

जीवन का यथार्थ चित्रण

मिश्रजी ने स्वतंत्र भारत के जन जीवन का चित्रण ईमानदारी के साथ अपनी कविताओं में किया है । जीवन की कटुता एवं विषमता ने कवि को सताया था । इसलिये उन विषमताओं को नष्ट करने में उन्होंने अपनी कविताओं की सार्थकता मानी है । उनकी "भारतीय समाज" कविता इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कही जा सकती है ।

मनुष्य की स्वार्थपरता, जन सेवा की विडम्बना, कोरी बहसों की निरर्थकता, आधुनिक सांस्कृतिक मोर्चे की निरर्थकता, वोट पानेकेलिये जनता के सामने नये नये नाटक रचनेवाले राजनैतिक पार्टियों और नेताओं की ढोंग, आधुनिकीकरण के नाम पर होनेवाली मूल्य च्युति, युवा पीढी की निराशा, भ्रष्टाचार, विदेशीपन का भ्रम, सांप्रदायिकता का विरोध, देश की गरीबी, प्रगति-विरोधी रूढियों का विरोध, वर्ग वैषम्य, चीन और पाकिस्तान की लडाई आदि प्राय: सभी समस्याओं एवं परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में मिलेगा ।

पूंजीवाद का विरोध

जब गरीब किसान को घी का दर्शन तक मुश्किल है तो अपने घर में घी का दीपक जलानेवाले पूँजीपति वर्ग का विरोध करते हुए मिश्रजी ने लिखा है -

"धोखे से भी साथ नहीं पूंजी को देना है"[1] । क्योंकि -

"दूजे कंधों पर चढ़कर बढ़ चलना गलत"[2] है । पूंजीवाद तथा सामन्तवाद के गठबन्धन ने किसान और मजदूर आन्दोलन को पीस डाला । 'गीतफरोश' कविता में पूंजीवाद और सामन्तवाद के अस्वीकार का स्वर प्रखर है । हमारा वर्तमान जीवन कुछ इस प्रकार का है कि जीवन-यापन केलिये कलाकार को अपनी रचनाओं को भी बेचना पड़ता है ।

शोषित जनता के प्रति सहानुभूति

दलित, पीड़ित वर्ग के प्रति अपनापन का भाव मिश्रजी की कविताओं में सर्वत्र देखा जा सकता है । जो भूखा रहकर, धरती चीरकर, जग को खिलाता है, जो पानी वक्त पर नहीं आने पर तिलमिलाता है, उस हलधर-किसान के प्रति कवि ने सहानुभूति प्रकट की है । समाज के कमज़ोर वर्ग के उत्थान की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए उन्होंने कहा कि -

जो गिरे हुए को उठा सके
इससे प्यारा कुछ जतन नहीं[3] ।

वर्ग-वैषम्य

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच की खाई को मिश्रजी ने निम्नलिखित कविता में व्यक्त किया है -

---

1· गांधी पंचशती, पृ·224

2· वही, पृ·269

2· दूसरा सप्तक, पृ·21

वे गति के मारे मर रहे हैं हम अगति के मारे
न वे प्रगति कर रहे हैं न हम, हम अकेले हैं
वे दलों में हैं
वे अति बलवानों में हैं हम निपट निर्बलों में।[1]

बन्द सुरक्षित कमरे में बैठकर बीच बीच में चाय और परोटा खाते हुए, सिर्फ आकाश की, सूरज, चन्दा, तारे और प्रकाश की बातें करनेवाले उच्च वर्ग को यह मालूम नहीं होगा कि हमने क्या कहा और हमने क्या सहा। कवि का रोष और उच्च वर्ग के प्रति आक्रोश यहाँ स्पष्ट है।

समानता की स्थापना

विवेच्य युग के अन्य कवियों की भाँति मिश्रजी ने भी वर्ण, वर्ग और वादों के भेद को मिटाकर समानता को स्थापित करना चाहा था। इस लक्ष्य से उन्होंने लिखा -

ये वर्गभेद ये वर्ण-भेद ये वाद-भेद
प्रभु की प्यारी दुनिया भर से खो जायें।[2]

1. गाँधी पंचशती, पृ.345
2. वही, पृ.149

मिश्र जी के जीवन पर गांधीजी के विचारों का गहरा प्रभाव पडा है। उनकी कविताओं में गांधी विचारधारा की प्रतिष्ठा देखी जा सकती है। वर्ग वैषम्य को मिटाने केलिये उन्होंने रक्त क्रांति का मार्ग स्वीकार नहीं किया। उनका विश्वास अहिंसा में था। उनके विचार में रक्त क्रांति हमारी रक्षा न कर सकेगी, वह हमें सही मार्ग नहीं बता दे सकेगी। उनकी दृष्टि में शांतिपूर्ण क्रांति ही सही मार्ग है।

ये कि भाई रे, न ज्यादे, खून की नदियाँ बहाओ
हठ करो मत, रुक रहो
मत खून में नाहक नहाओ
मैल जिसमें कर सके रे
वह सने ही सिन्धु होना
गोलियों की व्यर्थ है बौछार[1]।

कवि का विश्वास था कि चाहे खून रुषित हो, चाहे शांति पूर्ण हो एक दिन क्रांति होगी -

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेंगी झोंपडी
मिट जायेंगे नीलम-निलय भी[2]।

उस प्रलय का दिन पास आ रहा है। क्योंकि कोई प्राणी बडा नहीं, कोई प्राणी छोटा नहीं। सब इस धरती पर समान है।

---

1. गीतफरोश, पृ.122
2. दूसरा सप्तक, पृ.16

हरिजन परिजन के भेद, वर्ग के भेद, धर्म के भेद को मिटाना चाहिए । शोषण की दुनिया में हमें प्यार बसाना है । रूसी भालू के इंगित पर नाचनेवाले साम्यवादी देशों को उन्होंने सम्मान नहीं दिया है । अपने देश केलिए उसी तरह का साम्यवाद उनको स्वीकार भी नहीं । चीन और रूस के साम्यवाद को हमारे ऊपर लादने वालों का उन्होंने विरोध भी किया है ।

श्रम का महत्व

मिश्रजी ने यह पहचान लिया कि यह जमाना सोच-विचार का नहीं, काम का है । जीवन में उदासी का अवकाश नहीं है । उनकी राय में पसीने की धारा बलवती है जिससे धरा फलवती बनती है । इसलिये उन्होंने लिखा -

सब अपनी अपनी शक्ति समेटें, श्रम में रत हो जायें

xx xx xx

सब श्रम में रत हो जायें यही अमृत पथ है
सब अपने पाँवों बढ़ें यही बढ़िया रथ है ।

xx xx xx

इच्छायें श्रम के साँचे में ढल जायें
हम हर बंजर में पुष्ट बीज बो जायें
श्रम की महिमा पत्थर पर फूट पड़े
आलस विलास की सज्जा लज्जित हो
जब अपनी गति से धरती सज्जित हो ।[1]

---

1. गाँधी पंचशती, पृ. 166

जैसी पंक्तियाँ युवा पीढी को प्रेरणा देनेवाली है ।

शहरी सभ्यता पर व्यंग्य

नागरिक जीवन की विसंगतियों से परे ग्राम जीवन की भलाई और भोलेपन मिश्र जी को प्रिय थे । शहरों में जो फाईलों की धूल, बसों का धुआँ; दोस्तों का उछला हुआ कीचड आदि है, उन से परे गाँव की धूल, कीचड और धुआँ कवि को प्रिय था । उनकी "चकित है दुख" संग्रह की कवितायें महानगर दिल्ली के वातावरण में लिखी गयी है ।

बडे से बडे शहर में रहकर भी शहरी जीवन की विडम्बनाओं से वे असम्पृक्त रहे । काफी हाऊस या बडे बडे होटल जो प्राय: साहित्यकारों के जीवन में बडा स्थान रखते हैं, मिश्रजी के जीवन में इनका स्थान शून्य था । वे ग्रामीण चेतना के कवि थे । रहन सहन और वेश-भूषा में वे पक्के गाँधीवादी थे । खादी को उन्होंने राष्ट्रीयता का प्रतीक नहीं मानवीयता का प्रतीक माना था । खादी उनकेलिये वस्त्र नहीं, विचार है[1] ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में नगरों का आकर्षण बढ गया है । शहरी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए मिश्रजी ने लिखा -

शहर हमारे घर हो गये हैं और ये हमारे घर
असंस्कृत है, भोंडे हैं, भद्दे हैं, और इनमें न शील है
न संयम न सादगी

---

1. कृष्णदत्त पालीवाल - भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य संसार, पृ.36

न देश की भाषा न पहरावा है देश का
तू जा रही है आज विदेशी तत्वों मे[1]।

साम्प्रदायिकता का विरोध

हिन्दु-मुस्लिम, कम्यूनिस्ट-सोशलिस्ट जैसे भेद भावों को मिश्रजी ने स्वीकार नहीं किया है। उनके मतानुसार भारतमाता को सब की जरूरत है। इसलिये सारा भेद झूठ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद हुए सांप्रदायिक दंगों को चित्रित करते हुए मिश्रजी ने कहा कि देश का विभाजन साम्प्रदायिक दंगों का परिणाम था।

मिश्रजी ने साम्प्रदायिकता का विरोध मात्र नहीं किया, साम्प्रदायिक एकता का संदेश भी दिया। दोनों सम्प्रदायवालों को एक साथ जीने और मरने की आवश्यकता पर कवि ने ज़ोर दिया है -

अब के साल दोनों को एक हो जाना है
वरना यह समझिये हम सबको खो जाना है
xx xx xx
हम ये जो हिन्दु है, हम जो मुसलमान है
पहले ये सोचें हम कमकर हैं, किसान हैं[2]।

---

1. गांधी पचशती, पृ.284
2. वही, पृ.155

राजनीतिक चेतना

मिश्रजी ने अपनी विविध कविताओं द्वारा सन् 1930 से लेकर वर्तमान समय तक की समस्त राजनीतिक गतिविधियों, घटनाओं को सहज और सरल भाषा में चित्रित किया है । वर्तमान युग के नेताओं के गिरगिटी स्वभाव और जनसेवा के नाम पर किये जानेवाले धोखेबाजियों को भी उन्होंने चित्रित किया है । जनतंत्र के प्रदर्शन, दल-परिवर्तन, कुर्सीवाद, भ्रष्टाचार, चरित्रहनन, राजनीतिक अव्यवस्था आदि पर उन्होंने बड़ा पैना लिखा है ।

आज लोकतंत्र के नाम पर मनमानी करना राजनीतिज्ञों का धर्म बन गया है । कोरा भाषण देना और शपथ लेना आज के नेताओं का कर्म है लेकिन उनकी प्रवृत्ति उसके ठीक विपरीत है । इस पर कवि का व्यंग्य कितना तीखा है देखिये -

तुम को शपथों से बड़ा प्यार,
तुमको शपथों की आदत है,
xx xx xx
है शपथ गलत, है शपथ कठिन
हर शपथ कि लगभग आफत है,
ली शपथ किसी ने और किसी के
आफत पास सरक आयी,
तुमको शपथों से प्यार मगर
तुम पर शपथें छायीं-छायीं[1] ।

---

1. दूसरा सप्तक, पृ.22

आडम्बरप्रिय नेताओं में 'आलस्य, झूठ और रिश्वतखोरी की गति' छोड़कर 'सादा जीवन बिताने का अनुरोध' भी उन्होंने किया है ।

"गणतंत्र दिवस", "संसद भवन", "राजनयिक", "प्रजातंत्र" आदि कवितायें राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । इनमें कवि ने व्यंग्य का सहारा लेकर वर्तमान राजनीति का यथार्थ चित्रण करने का प्रयत्न किया है ।

"एकदम दरबारी", "बहसों का मज़ा", "जनसेवा", "अनुत्तरदायी" आदि भी इस कोटि में आनेवाली है । इनमें मिश्रजी ने सफेदपोश नौकरशाहों पर प्रहार किया है, कोरी बहसों की निरर्थकता पर व्यंग्य किया है, नेताओं की जनसेवा की विडम्बना पर व्यंग्य किया है, नेताओं की उत्तरदायित्व हीनता का उद्घाटन किया है ।

वोट पाने केलिये जनता के सामने नये नये नाटक रचनेवाले पार्टियों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है । ऊपर से धर्म निरपेक्षता और भीतर से जाति-वाद, भाई भतीजावाद, ऊँच नीच का भेदभाव आदि से लोकतंत्र का गला घोंटने केलिये उद्यत नेताओं और पार्टियों को कवि ने अपने व्यंग्य बाण का शिकार बनाया । जैसे -

देखना न पड़ता गाँधी के देश में
उसके ही अनुयायियों के द्वारा
उसकी एक-एक इच्छा का खून
देश की गरीबी को भूलकर पालना
खोखले प्रजातंत्र का सफेद हाथी

संसद और विधान सभाओं में बैठकर
किसानों की तरफ से
वक्त पर जाया करना
खाया करना दावतें देश में और देश के बाहर
खोल देना तीन सौ साठ देशों में दूतावास
बिठा देना दूतों के नाम पर अनुचानमानी स्तब्ध।[1]

देश के नवनिर्माण की चेतना

स्वतंत्र भारत को हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने केलिये मिश्रजी जागरूक थे। बूंद बूंद से गागर भरती है, कई नदियों के जल से सागर भरता है; अनेक किरणों की आभा से सारा जगत उजागर होता है। इसी प्रकार भारत के हर व्यक्ति को अपने छोटे छोटे कर्मों द्वारा देश का नवनिर्माण करना चाहिए -

बडी बडी बातों को छोडो छोटे काम संवारो
दोष दूसरों के न देखकर अपनी ओर निहारो
और एक दिन पूरा कर दो बापू का यह सपना
सचमुच यदि आज़ाद हुआ है हिन्द देश अपना।[2]

---

1. गाँधी पंचशती, पृ.336
2. वही, पृ.136

जनता की शक्ति पर कवि को गहरी आस्था थी । भारत की जनशक्ति के आगे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को झुकना पडा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश फिर नये पूँजीवाद में रूपान्तरित होने लगा । भारत में आधुनिकीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण बन गया । इस परिस्थिति में "सच से बेखबर, सपनों में खोया पडा' आदमी को जगाने का स्तुत्य प्रयत्न मिश्रजी की कविताओं ने किया है ।

गाँधीजी की मृत्यु

'क्रान्तदर्शी, तत्वविद्, युग निर्माता, आदर्शनिष्ठ मनीषी', गाँधिजी की मृत्यु पर -

इस परमदुख की घडी में हे पिता
जल रही है जब चरम संतापमय
हर हृदय में एक सी दारूण चिता ।[1]

कहकर कवि ने अपना दुख प्रकट किया है । किंतु व्यर्थ आँसू बहाने के बजाय उन्होंने अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा जनता को हिम्मत देने का प्रयास किया । जैसे -

किंतु रोना गलत है,
उठ आज तो वक्ष-गत संकल्प साबित चाहिए
आज आँसू नहीं हिम्मत चाहिए ।[2]

---

1. गाँधी पंचशती, पृ.120

2. वही, पृ.121

मिश्रजी के विचारानुसार, अस्त रवि की किरण को भीतर बसा कर हमको शशि-जैसा प्रकाशित करना चाहिए । प्रस्तुत कविता में मिश्रजी ने गांधीजी को सूरज और उनके आदर्शों को सूरज की किरण कहा है । यह मिश्रजी की मौलिक कल्पना है ।

"अनभ्रवज्र", "वे अशोच्य" "विवश शब्द", "यह अन्धेरा", "विराट निषेध", "आश्वास", "कर्तव्य बिन्दु", "पितृऋण" जैसी कविताओं में मिश्रजी ने गांधीजी की मृत्यु पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । गांधीजी के समाधी क्षेत्र राजघट को सत्य, अहिंसा, शांति और स्नेह का स्मारक कहकर मिश्रजी ने गांधीजी के प्रति अपनी अपार श्रद्धा प्रकट की है ।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों में बापू की मृत्यु पर इतनी व्यापक प्रतिक्रिया मिश्रजी ने ही व्यक्त की है ।

चीन और पाकिस्तान का आक्रमण

स्वतंत्र भारत की किसी भी घटना को मिश्रजी ने अनदेखा नहीं छोडा है । भारत पर आक्रमण करनेवाले चीन की मनुष्यत्वहीनता पर मिश्रजी ने क्रोध प्रकट किया है । चीनी आक्रमण के अवसर पर कवि का मन इसलिए दुःखित है -

> कि एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों को कितना कम जानते हैं
> मगर एक तो यह लोगों का मामला कभी नहीं होता, यह युद्ध,
> लोगों के सिर पर बैठे हुए
> किसी ख्याल में पागल नेता या राज्य सत्ता की मूर्छा या
> मद है यह[1]।

---

1. गांधी पंचशती, पृ.306

इस अवसर पर कवि ने इस प्रकार कहा था कि "आज यदि हम शान्ति सेना संगठित कर मोर्चे पर जा नहीं सकते तो चीनी क्रूरता से शस्त्र लेकर युद्ध करना ठीक है । कर्तव्य है ।" 'तिब्बत में चीन', 'वे लड रहे हैं' आदि कवितायें चीन और पाकिस्तान के आक्रमण पर कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाली है ।

दिनकर तथा विवेच्य युग के अन्य कवियों के समान मिश्रजी भी युद्ध विरोधी थे लेकिन युद्ध जब अनिवार्य बन जाता है तो दाँत भींचकर लडने के पक्ष में थे ।

अंतर्राष्ट्रीय चेतना

आज सारी दुनिया एक विस्फोटक स्थिति से गुजर रही है । संसार के सभी देश यह समझ चुका है कि यदि सह-अस्तित्व का सिद्धांत नहीं स्वीकार करें तो हम सब की मृत्यु अनिवार्य है । इसे पहचानकर ही गाँधीजी ने प्रेम, अहिंसा और लोकतंत्र के सिद्धांतों पर ज़ोर दिया था । भारत ने इन आदर्शों को स्वीकार भी किया था । लेकिन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इन्हें लगभग पूर्ण रूप से छोड दिया है । मिश्रजी को ऐसा लगा कि हमारा देश आज 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत को भूलता जा रहा है, और धर्म, जाति, भाषा, मत, वाद आदि से खंडित, संकट की दिशा में बढता चला जा रहा है ।

भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी कविताओं में मात्र देश की नहीं, सारे संसार की समस्याओं को भी रेखांकित किया है ।

देश ही नहीं समूचा जगत त्रस्त है
रोटी कपड़ा शान्ति व्यवस्था के अभाव में अस्त व्यस्त है
तरह तरह के स्वार्थ घोंटते हैं देशों के गले रात दिन[1]।

दुनियाँ भर के देशों को साहित्य, विचार और भावों की लेन-देन की आवश्यकता पर भी मिश्रजी ने ज़ोर दिया है। इज़राईल और वियत्नाम के युद्धों के बारे में भी कवि ने विचार प्रकट किया है।

मिश्रजी ने केवल अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण ही नहीं किया बल्कि 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सिद्धांत पर ज़ोर भी दिया।

सांस्कृतिक चेतना

भारत के पास अपने पाँच हज़ार वर्षों की महान संस्कृति है। आज हम पश्चिम के रंग में रंगे हुए रहने के कारण अपनी महान संस्कृति को भूले जा रहे हैं।

हमने अपने पाँच हज़ार बरसों से
अब तक के मानसिक विकास को गया बीता मान लिया
और माँगने लगे अपनी हर समस्या के हल
रेंग रेंग कर घुटनों और पेट के बल[2]।

---

1. गाँधी पंचशती, पृ.17।
2. वही, पृ.3

"संस्कृति का मोर्चा" कविता में मिश्र जी ने संवाद के माध्यम से आधुनिक सांस्कृतिक ह्रास का चित्रण किया है ।

भारतीय संस्कृति ने जीवन की लौकिकता को ही अंतिम नहीं माना है । उसने जीव के ब्रह्म तक विकसित होने की कल्पना को महत्व दिया है । नवीनता के पक्षपाती होने पर भी मिश्र जी भारतीय संस्कृति के गतिशील मूल्यों को आत्मसात करने के पक्ष में थे ।

आज सारा जगत् विज्ञान के प्रभाव में डूबता जा रहा है । सारी दुनिया शस्त्रों की झन झन के स्वर में निमग्न होती जा रही है । प्रजातंत्र, गणतंत्र और आदमियत् के हामी देश, आज विक्षपात्र और अणुबम को साध रहे हैं, हिंसा की आराधना कर रहे हैं । अपनी संस्कृति की मूल्यवत्ता हम भूल गये हैं । मिश्रजी ने इस अवस्था को इस प्रकार चित्रित किया है -

मैं असभ्य हूँ क्योंकि खुले नंगे पाँवों चलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि धूल की गोदी में पलता हूँ
आप सभ्य हैं क्योंकि आपके कपडे स्वयं बने हैं
आप सभ्य हैं क्योंकि आपके जबडे खून सने हैं
आप बडे चिंतित हैं मेरे पिछडेपन के मारे
आप सोचते हैं कि सीखता यह भी ढंग हमारे ।[1]

जो कुछ विदेशों से नहीं आता, वह हमें भाता भी नहीं है - यही आज की अवस्था है

---

1. गांधी पंचशती, पृ.176

मिश्रजी ने अपनी कविताओं द्वारा मानवता को प्रेम का सन्देश दिया । वैज्ञानिक प्रगति के कारण समाज में आंतरिक मूल्य शोषण हो रहा है । आधुनिक मनुष्य प्रकृति की अवहेलना और उपेक्षा करता है । मिश्रजी के विचारानुसार यह प्रवृत्ति सचमुच मानव सभ्यता के विध्वंस की तैयारी है ।

"गीता" ने जिस प्रकार अर्जुन को द्विविधाहीन कर्म की शक्ति दी वैसी शक्ति आज देश की ज़रूरत बन गई है । (गीता प्रेम और कर्म का सन्देश देती है ।) यहाँ मिश्रजी पर गीता का प्रभाव देखा जा सकता है ।

सत्य और अहिंसा आधुनिक युग के अत्यंत आवश्यक दो चीज़ें हैं । आज सत्य का चेहरा क्षत-विक्षत हो गया है । ऐसा लगता है कि हर दिशा में उसके दुश्मन है । उसकी आँखों में भय का नया नया भाव उभरता है । इसलिये मिश्रजी ने कहा -

सत की संसार में
मरने तक साथ दे
बोलो तो हमेशा सच
सच से हटे नहीं ।[1]

मिश्रजी ने हिंसा को पागलपन कहा है । उनकी राय में उसे सदा केलिये मौत में मिलाना चाहिए

---

1. दूसरा सप्तक, पृ.९

शिक्षा पर विचार

अँग्रेज़ हमारे देश से गये, लेकिन, अँग्रेज़ियत नहीं गयी । बापू की हत्या के बाद राष्ट्रघाती शक्तियाँ पुन: संगठित होने लगी । नई पीढ़ी अँग्रेज़ियत में डूब गयी है । युवा पीढ़ी हमारी संस्कृति और हमारे मूल्यों का निषेध करके और उन्हें छोटा मानकर उनकी मज़ाक उठाती है ।

आज "अँग्रेज़ी" पद और प्रतिष्ठा की भाषा बन गयी है । अँग्रेज़ी भाषा ने शिक्षितों और अशिक्षितों के बीच एक खाई खोद दी, जिस से शिक्षित अपने ही लोगों में अजनबी हो गया ।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में किताबी पढ़ाई पर अधिक ज़ोर दिया जाता है इस स्थिति का उद्घाटन करते हुए मिश्रजी ने इस प्रकार लिखा है कि -

पढ़ना लिखना बहुत बढ़ गया है आज कल
मेरा यह दस बरस का विपिन पीठ पर किताबें
लादकर स्कूल आता जाता है तो लगता है
यह सब अगर बच्चों को पढ़ना पड़ता होगा तो
क्या होगा उनके दिमागों का
बंद हो जायेंगे उनके ज़हन उनमें न हवा जायेगी न धूप[1] ।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति मिश्रजी के मन में श्रद्धा थी । एक ओर हमारे समाज में, विदेशी भाषा, विदेशी पहरावा आदि है तो दूसरी ओर देशी भाषा, देशी पहरावा आदि है । मिश्रजी दूसरे पक्ष का

---

1. गाँधी पंचशती, पृ.282

समर्थक था । उनकी दृष्टि में हमको भारतीय जीवन का सादगीपन स्वीकार करना चाहिए । "विदेशीपन की जगह देशीपन भाता है हमें[1]" कहकर मिश्रजी ने इस का समर्थन किया है ।

रूढ़ि-विरोध

"जगह जगह पर रूढ़ि पड़ी है प्रबल-प्राण पौरुष को घेरे[2] ।" इसलिये इनको तोड़ना चाहिए । रूढ़ियों के दृढ दुर्गों को ढहते देखकर मिश्रजी ने आनन्द का अनुभव किया है -

> बिना सीढ़ी के बढ़ेंगे तीर के जैसे बढ़ेंगे,
> इसलिये इन सीढ़ियों के फूटने का सुख
> टूटने का सुख[3] ।

रूढ़ियों को तोड़ने के साथ कवि के मन में यह विचार भी उठा था कि रूढ़ियों को अपने प्राणों की विभा से आलोकित कर वर्तमान तक खींच लाना उचित है ।

मानवतावाद

मिश्र जी सच्ची मानवता का गायक था । उन्होंने मनुष्य मनुष्य के बीच के भेदों को मिटाकर मानवता की प्रतिष्ठा करना चाहा ।

---

1. गांधी पंचशती, पृ.284
2. वही, पृ.140
3. दूसरा सप्तक, पृ.15

हिंसा और क्रांति में उनकी आस्था नहीं थी । मानवता के विजय का स्वर उनकी कविताओं में भरा हुआ है -

गाँव गाँव में गली-गली में युद्ध विरोधी काम चाहिए
देश प्रेम का यही अर्थ है यही अर्थ है मानवता का[1] ।

इस बात को स्पष्ट करते हुए एक आलोचक ने लिखा "भवानी भाई की कविता का केन्द्रीय स्वर उसका आयाम व्यक्ति हो या समाज, इन्सानियत का ही स्वर है और यह कहना गलत न होगा कि आज की दुनिया में, साहित्य और कला की दुनिया में भी सबसे अधिक जरूरत इसी स्वर की है[2] ।

<u>युद्ध एवं शांति</u>

एक तीसरे विश्वयुद्ध की भीषणता आज विश्व के ऊपर छा रही है । यह विचार छाती को भीतर से कुरेदता रहता है कि पिछले दो महायुद्धों से भीषण, अन्धा और अर्थहीन एक तीसरा युद्ध होगा[3] । इस अवसर पर कवि ने युद्ध न होने की आशा प्रकट की है -

वैसे मेरी इच्छा है
युद्ध न हो तो अच्छा है[4] ।

---

1. गाँधी पंचशती, पृ.219
2. डॉ.शिवकुमार मिश्र - साहित्य और सामाजिक संदर्भ, पृ.137
3. गाँधी पंचशती, पृ.217
4. वही, पृ.309

लेकिन मिश्रजी जानते थे कि "अपनी इच्छा केवल बाँझ है और शांति मनीषा की दुनिया में माँझ" है । फिर भी उन्होंने मानवता को यह सन्देश दिया कि शस्त्र के सहारे शान्ति नहीं स्थापित कर सकेगी । इसकेलिये दूसरों को बदलने के पहले अपने आपको बदलना आवश्यक है । शांति किसी लापरवाह राहगीर की जेब से गिरा रुपयों का बटुआ नहीं है कि दूसरे लापरवाह राहगीर को चलते चलते ठोकर से छूकर मिल जाये; या शांति न किसी चाँदनी रात में किसी लता पर की कली है कि कोई झोंका आये तो खिल जाये -

इसे अपने भीतर से बाहर तक आ जाकर बार बार
पाना होगा
और इस उपलब्धि पर प्राण मन चढ़ाकर
उसे फैलाना होगा[1] ।

धार्मिक चेतना

धर्म की पवित्रता आज नष्ट हो रही है । वर्तमान समाज में धर्म की जो अवस्था है उसे मिश्रजी की निम्नलिखित कविता में देखी जा सकती है -

कितने सादे शब्द धर्म और देश है
किंतु आज खूंख्वार कि उनके वेश है
आज सीधे नख, दाँत सभी उनके हुए
किसकी हिम्मत है कि देह उनकी छुए[2] ।

1· गाँधी पंचशति, पृ·209-210

2· वही, पृ·180

नोआखाली, बिहार और पंजाब में धर्म के नाम पर
हुए अत्याचार, अंगों का वह ढेर और नरमुंडों की
वह माला हम भूल नहीं सकते । इस बात की याद
दिलाते हुए मिश्रजी ने धार्मिक एकता की आवश्यकता पर
ज़ोर दिया है ।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में अपनी मौलिकता, सहजता और सामाजिक चेतना के कारण जिन कवियों ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है उनमें मिश्रजी का एक महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने दलबन्दी से दूर रहकर परिवेश को समझने और अभिव्यक्त करने का परिश्रम किया है । वे कभी सत्ता के कवि नहीं रहे । सत्ता पक्ष की बात हो या विरोध पक्ष की, उसे निर्भयता से कह देना उनका कवि स्वभाव था ।

विवेच्य युग के अन्य कवियों ने आर्थिक समानता पर ही ज़ोर दिया है, वहाँ मिश्रजी ने हर प्रकार की समानता पर ज़ोर दिया । उनकी समस्त कविताओं में गांधीवाद का प्रभाव देखा जा सकता है । उन्होंने साम्प्रदायिकता का विरोध ही नहीं किया, सांप्रदायिक एकता का सन्देश भी दिया ।

वर्तमान राजनीति पर उन्होंने ज्यादा विचार किया है । "संसद भवन", "राजनयिक", "प्रजातंत्र", "एकदम दरबारी", "बहसों का मज़ा" "जनसेवा", "अनुत्तरदायी" आदि कविताएँ राजनीति के वर्तमान रूप पर व्यंग्य करनेवाली है । मिश्रजी ने मार्क्स के सिद्धांत को हिंसा के कारण छोड दिया ।

प्रभाकर माचवे

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कविता में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति पर ज़ोर देनेवाले कवियों में माचवे प्रमुख है । वे प्रखर सामाजिक चेतना के कवि है । उन्होंने अपने युग के सामाजिक यथार्थ को सहज अभिव्यक्ति दी है । समाज में व्याप्त अराजकता, भ्रष्टाचार तथा अन्य विकृतियों पर उन्होंने व्यंग्य प्रहार किया है ।

माचवे के "स्वप्न भी" और "अनुक्षण" दो संग्रहों की कविताओं का अध्ययन यहाँ किया गया है ।

रूढि विरोध

उन्मुक्त प्रकृति के कवि होने के कारण माचवे को जीवन में किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं है । उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा समाज को रूढि के दास बनने से रोकने का प्रयत्न किया है । जैसे -

न रूढि के निरर्थ दास चाहिए
हमें निरभ्र और नील मुक्त व्योम चाहिए
गिरा, विचार तर्क पर हमें न पाश चाहिए
विनाश की मृषा हटे नया प्रकाश चाहिए[1]

कवि की दृष्टि में सोती मानव-भूमि को जगाना आवश्यक है । इसीलिये कवितागत रूढियों को भी तोडना आवश्यक है ।

1. अनु-क्षण, पृ॰72

बेकारी की समस्या

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने देश के नवनिर्माण की अनेक समस्यायें थी । बेकारी की समस्या इनमें प्रमुख थी । आज देश में बेरोजगारी बढ रही है । इससे जनता विशेषत: छात्रवर्ग कुंठित है । कवि ने निम्नलिखित कविता में इस भीषण अभिशाप की ओर व्यंग्य किया है -

सुना है कि आजकल, रखे हैं कुछ आदमी
पालतू / फालतू ! / होगा क्या उनका ?
मार दें पडोसी के उडे बम ?
फिर भी नहीं होंगे कम![1]

विद्यालय आज बेकारी की दुकान है । यहाँ विद्या बिक जाती है । यहाँ ज्ञान बिक जाता है । बेचारे नवयुवक रोज़ देश विदेश में "नो-वेकन्सी" का शिकार बन जाता है ।

जाति भेद का विरोध

जाति भेद की समस्या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी एक बडी सामाजिक कुरीति बनकर मौजूद है । इस युग के अन्य कवियों के समान माचवे ने भी सशक्त भाषा में जाति-पाँति और छुआछूत की भावना का विरोध किया है । इन कुरीतियों को मिटाने की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर दिया है । उनका आक्रोश इस प्रकार फूट पडा -

---

1. स्वप्न भंग, पृ.66

कौन यहाँ पर स्पृश्य और अस्पृश्य कौन है अधिकारी[1] ।

हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति उच्च वर्ग नहीं देते थे । इस बात की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा कि हरिजन को मन्दिर निषिद्ध थे, शूद्र वेद सुन लें तो कानों में पिघला सीसा डाले थे[2] ।

माचवे भारत की प्राचीन संस्कृति के अनन्य उपासक है । उन्होंने हमारी सांस्कृतिक गिरावट का कारण यहाँ का जाति भेद बताया है ।

आज अछूत जाग गये हैं । वे अपने अधिकारों को पहचानने लगे हैं ।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

कवि ने देखा कि युग युग से नारी नर का एकाधिपत्य भोग रही थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आज भी वह शोषण का शिकार बन रही है । इस बात की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा -

नये विधान बने, छिप-छुप कर जबकि पुराने ये सिक्के,
अपना वज़न मूल्य खोकर के दर-दर खाते हैं धक्के[3] ।

---

1. अनुक्षण, पृ॰73
2. स्वप्न भी पृ॰45
3. अनुक्षण, पृ॰73

राजनीतिक चेतना

स्वतंत्रता पर हर्ष प्रकट करते हुए कवि ने कहा कि भारतीय जनता ने अंग्रेजों ने बिछाया सारा जाल कपोतों के गण सा उडा किया और मुक्त गगन में विचारा[1]।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जनता के सामने नये स्वतंत्र, सुखी और संपन्न भारत के नवनिर्माण का लक्ष्य था। वे तिहरे शोषण - विदेशी, पूंजीवादी और सामन्ती शोषण से मुक्ति-चाहती थी। लेकिन जब मुक्ति मिली तब मुट्ठी भर लोगों को वरदान मिला। इसलिये माचवे ने ऐसी आजादी को व्यर्थ कहा।

गांधीजी ने सबसे पहले राजनीतिक क्षेत्र में "रामराज्य" की चर्चा की। तुलसीदास ने "मानस" में "रामराज्य" की महिमा गायी। भारत की जनता ने वर्गहीन, शोषणमुक्त, समाजवादी समाज की कल्पना की थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ये सपने ही रह गये। माचवे की "नव-रामायण" कविता भारत की राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करनेवाली है।

सुनाई देता: नेता भी वक्त पर अब चेता[2]
और यहाँ कई सफेदपोश धाघ, चोर चल रहे।[3]

---

1. अनु क्षण, पृ.73
2. स्वप्न भी, पृ.31
3. अनु क्षण, पृ.80

आदि कहकर माचवे ने वर्तमान नेताओं की चारित्रिक भ्रष्टता पर व्यंग्य किया है। उनकी स्वार्थ लोलुपता की ओर कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में संकेत किया है[1]।

आदमी के हैं बनाये राजतंत्र, विधान,
यदि न जन-जन का हुआ हित, मुक्ति का क्या अर्थ ?
यज्ञ जिस पर्जन्य के हित; जो उगाये धान,
वह स्वयं यदि अन्न स्वाहा कर चले तो व्यर्थ।"

गाँधीजी की हत्या

"दीवाली 1948" कविता में माचवे ने गाँधीजी की हत्या पर अपनी तीव्र व्यथा प्रकट की है। दीपावली कार्तिक की अमावास्या को होनेवाला एक पर्व है। रावण का वध करके सीता सहित श्रीरामजी इसी दिन अयोध्या वापस आये थे। और वहाँ उनका अभिषेक हुआ था। उस अवसर पर पूरी अयोध्या दीपमालिकाओं से सजायी गयी थी। माचवे की राय में गाँधीजी हमारे श्रीराम हैं। उन्होंने हमें स्वतंत्रता दिलायी। उन्होंने युगों तक हमें प्रकाश दान दिया; हमें दया, महानता, क्षमा आदि सिखायीं। उनकी हत्या पर माचवे का शोक इस प्रकार निकला -

दीपपर्व है परन्तु विश्व-दीप बुझ गया
देश के यही था भाग्य में कि यह फिर अमा,

---

1. अनु-क्षण, पृ. 69

हम मनाएँ खो के अपना आज वह महात्मा,

xx xx xx

यह विजय मना, परन्तु राम का अनुज गया
दीप लग रहे विवर्ण, रवि प्रसन्न ऋजु गया

xx xx xx

पा गये स्वतंत्रता व राष्ट्र का पिता गया,
चूक कौन सी हुई ? कि शूल यह समा रहा[1]।

आर्थिक चेतना

माचवे ने चारों ओर समाज में गरीबी और भूख से तडपती जनता को देखा -

वस्त्र देश में नहीं गरीब को न अन्न है[2]।

शोषण प्रधान आर्थिक व्यवस्था पर माचवे ने रोष प्रकट किया है। मीठे मीठे शब्दों से पेट नहीं भर जायेगा। किसानों की किस्मत अब भी मन्द पड गयी है।

समाज में व्याप्त वर्ग वैषम्य को भी कवि ने चित्रित किया है -

---

1. अनुक्षण, पृ. 79
2. वही ”

नहीं यहाँ पर कुछ भी शाश्वत या चिरकालिक
सब कुछ बँटा हुआ दो रिश्तों में है नौकर अथवा मालिक[1]।

उच्च वर्ग सदा निम्न वर्ग का शोषण कर रहे हैं। बडे बडे गजदंत बने, पैरों में ऊनी जूते पहनकर, चावल की चविरा पीकर उच्च वर्ग नाच रहे हैं। उच्च वर्ग के प्रति कवि का आक्रोश और क्षोभ इन शब्दों में मिलता है।

साम्यवादी चिंतन

प्रभाकर माचवे की कविताओं में समाजवादी यथार्थ की भावना मिलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय जन मानस में समाजवादी समाज की स्थापना केलिए जो आकांक्षा थी वह माचवे की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होती है -

जन जन का सुख-निधान
समताक्षित संविधान
सबको हो भूमि दान
सबको आवास, अन्न
सबको हो वस्त्र, धान्य
सब को अब मिले काम[2]।

---

1. स्वप्न भी, पृ.82
2. अनुक्षण, पृ.103

<u>सांस्कृतिक चेतना</u>

माचवे भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा प्रेम रखते थे । आर्ष संस्कृति का महत्व उन्होंने अपनी कविताओं में गाया है -

अतीत का सुवर्ण स्वर
सजीव और लाभकर
वही रखें[1] ।

सभी धर्मों और जातियों के प्रति वे आदर का भाव रखते थे । हिन्दुओं का आराध्य देव श्रीकृष्ण अहीर जाति के थे । इस बात को दिखाकर कवि यह बताना चाहता है कि उच्च जाति में जन्म लेने मात्र से कोई उन्नत नहीं बनेगा ।

माचवे ने अपनी कविताओं में वेद, पुराण, रामायण, महाभारत प्रभृति आर्ष संस्कृति के आधार स्तंभों का महत्व दिखाया है ।

कवि को इस बात में दुःख है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी संस्कृति इतनी बिगड चुकी है कि उसको सुधरना अब आसान नहीं है । इसलिये उन्होंने कहा -

फटी थेगरों की यह संस्कृति की जो गठरी
अब न सुधरने की यह, बिगड चुकी बहुत, अरी[2] ।

---

1. अनुक्षण, पृ.72
2. वही, पृ.88

माचवे के मतानुसार हमारी सभ्यता "बाजारू सभ्यता" है जो पाश्चात्य सम्पर्क और सदियों की दासता की देन है ।

दार्शनिक विचार

अपनी कविताओं में बीच बीच में माचवे ने अपना दार्शनिक विचार भी प्रकट किया है । मनुष्य भौतिक शरीर और आत्मा का संयोग है । आत्मकीर के उड जाने पर काया शून्य पिंजर-सी लगती है । पंचतत्वों का संयोग है जीवन; मृत्यु पंचतत्वों में पुन: मिल जाना है । मनुष्य का सारा अहंकार मृत्यु के द्वार पर मिट जाते हैं ।

मेधा का यह स्फीत-भाव औ' अहंकार सब तभी गल गया ।
पंचतत्व का चोला बदला, पंचतत्व में पुन: मिल गया,
पर-अस्तित्व भवन सूना-सा, यह व्यक्तित्व समूल हिल गया ।[1]

मनुष्य हर क्षण मृत्यु की ओर श्वासों के चपल चरणों में बढते जाते हैं । फिर भी हम अपने अस्तित्व के निर्णय केलिये नियति के हाथों में कठपुतली बनकर नाच रहे हैं ।

धार्मिक चेतना

माचवे ने अपनी कविताओं में धर्म के विकृत होते रूप को भी अंकित किया है । आज, उनके विचारानुसार मनुष्य की केवल आकृतियाँ शेष रही है, आत्मायें पापों में डूबी हुई है । हरिश्चन्द्र यहाँ बिक जाते हैं ।

---

1. अनुक्षण, पृ. ९२

प्रेमचन्द राख बन जाते हैं । मनुष्य के सभी प्रसाद उससे छिन जाते हैं । गंगा जो हिन्दुओं की पुण्य नदी है, आज पापनाशिनी है ।

तीर्थस्थानों का महत्व आज कम हो गया है ।

हमारे पूर्वज उदार मनसा वाले थे । वे एक साथ विष्णु, कृष्ण, दुर्गा, शिव, मारुति, सुब्रह्मण्य गणपति आदि देवी देवताओं की पूजा करते थे । पद्मनाभ के अनन्तशयनम्, शुचीन्द्र के मन्दिर, महाबलिपुरम के शिल्प आदि का विराट गौरव देख कर कवि अवाक् रह गये हैं । साथ ही उनको वर्तमान युग का चित्र सताता भी है -

इस युग में जब बौने मन, बौने विश्वास, प्रतीति असंभव
पंगु धारणा, खंडित रचना, लघु संकल्प व भाषा-त्रास
अब मति बौरी, जाति-भेद, औ", राजनीति भय, घृणा
औ" अहम ।
चिदम्बरम में देखे हैं नटराज नाचते अपस्मार पर
सदा पा रहे हैं युग युग से विजय प्रबुद्ध हि क्रुद्ध मार पर[1] ।

द्राक्षा के स्थान पर, आज, लोगों को शराब प्रिय है । आज धरम करम के बेशरम अनेक शोर चल रहे हैं ।

वर्तमान समाज में नैतिकता का ह्रास हुआ है । आज सचाई को तोलने केलिये नये-नये परिमाण होते हैं, कई तुलायें हैं । कोई बुलाये तो झूठमूठ हँसना या "हुआ कल्याण" कहना सचाई को नापने का एक मानदंड है ।

---

1. स्वप्नभंग, पृ.47

सतीत्व, वोटर-संख्या जैसी अमूल्य वस्तुएँ यहाँ बेची जाती है और पण्य वस्तु लावण्य बना है । मद्यपान, केबरे जैसी दूषित वृत्तियाँ समाज में फैल रही हैं । आज अच्छे और बुरे का भीषण संघर्ष हो गया है ।

हिंसा से पागल दुनिया को कवि ने "अहिंसा शक्ति के आगे निर्बल है शास्त्र, तोप, बम"[1] कहकर अहिंसा का महत्व दिखाया है ।

निष्कर्ष

प्रभाकर माचवे ने अपने युग के कटु यथार्थ को अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है । जीर्ण शीर्ण पुराने आदर्शों और विचारों को तोडने के लिये उन्होंने युवा पीढी को प्रेरणा दी है । राजतंत्र पर मुखौटे लगाये, स्वार्थलोलुप नेताओं पर उन्होंने व्यंग्य प्रहार किया है । उनकी "नव-रामायण", "आईनस्टीन के प्रति", "विजया दशमी 1948", "मुक्ति दिवस" जैसी कवितायें वर्तमान राजनीति पर प्रहार करनेवाली है । शोषण प्रधान आर्थिक व्यवस्था के प्रति कवि ने क्षोभ प्रकट किया है । पूँजीवाद का अंत और समाजवाद की स्थापना केलिये उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा आग्रह प्रकट किया है । "आदमी नचा नाच", "अमीर नाना के बेटे", "मालव सरिताओं से" आदि कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति कवि गौरव का अनुभव करते हैं । वर्तमान की क्षतिपूर्ति केलिये उन्होंने प्राचीन संस्कृति की पुनःस्थापना करना आवश्यक भी बताया । आ विश्व के लोग अति यंत्रीकरण से घबडाकर अपने प्रश्नों को सुलझाने केलिए भारत के योग, जैन-बौद्ध धर्म जैसे अनेक पूर्व के आध्यात्मिक चिंतन की ओर दौड रहे हैं । उनकी कई कविताओं में प्राचीन आर्ष संस्कृति का महत्व दिखाया गया है ।

---

1. अनुक्षण, पृ. 102

त्रिलोचन

त्रिलोचन उस जनपद का कवि है, जो भूखा-दूखा है, नंगा है और अनजान है -

उस जनपद का कवि हूं जो भूखा दूखा है
नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है ।

उनके "शब्द" काव्य-संग्रह की भूमिका में विष्णुचन्द्र शर्मा ने इस प्रकार लिखा है कि "त्रिलोचन की कविता, भारतीय सभ्यता का लम्बा अभियान है । त्रिलोचन की भाषा सक्रिय शब्दों का समाज है । उनकी कविता के शब्द जीवन पथ पर बे-रोकटोक आते हैं । परिहास करते हैं । जीवन का मर्म समझा जाते हैं । उनकी कविता के शब्द प्राणवान और नृत्यशील होते हैं । उनकी कविता के शब्द है "दुख से दबे हुए मानव ।" उन्होंने शब्द को निरा शब्द नहीं माना है । शब्दों में जीवन होता है । शब्दों में भी हाड, मांस है । यथा -

शब्दकार, इन शब्दों में जीवन होता है
ये भी चलते फिरते और बात करते हैं ।
xx xx xx

1· उस जनपद का कवि हूं, पृ·17

शब्दों में भी हाड, मांस है, जीवन धर् कर
वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र संभाले[1] ।

शब्द से व्यंजित अर्थ की तलाश में कवि भटका करता है । कहीं फूल मुरझाया तो उनकी आँखें भर आते हैं । थोडा सा रक्त कहीं बह गया तो वे बेचैन हो जाते हैं । हम उनको किसी वाद के संकीर्ण दायरे में प्रतिष्ठित नहीं कर सकते । वे सबके साथ है जैसे उनकी कविताओं से स्पष्ट हो जाता है ।

सामाजिक चेतना

जब कवि ने लिखा -

वही त्रिलोचन है, वह-जिसके तन पर गंदे
कपडे हैं कपडे भी कैसे-फटे लटे हैं[2] ।

तो यह उनका निजी वर्णन मात्र नहीं, आम आदमी का वर्णन भी है । चीर भरा पाजामा और छेदों वाला कुरता पहनकर भीख मांगनेवाला त्रिलोचन भी भारत की गरीब जनता का प्रतिनिधि है ।

मैं तुम्हारे खेत में तुम्हारे साथ रहता हूँ"

xx xx xx

---

1. शब्द, पृ.35
2. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.11

मैं सबके साथ हूँ अलग अलग सबका हूँ
मैं सबका अपना हूँ सब मेरे अपने हैं[1]।

जैसी पंक्तियाँ कवि की सामाजिक चेतना को स्पष्ट करनेवाली हैं। केवल अपना सुख दुख गाना और इसी से इस दुनिया में कवि कहलाना उन्होंने पसंद नहीं किया। कविता को किसी भी सिद्धांत के प्रचार का माध्यम बनना भी उनको अच्छा नहीं लगा। उनके विचारानुसार "जो समाज का एक व्यक्ति है वह अपनी स्वतंत्र सत्ता में भी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इस कारण से वैयक्तिक प्रतिभा और समाज चेतना परस्पर मिलजुलकर साहित्य सृष्टि अमर कर गई है[2]। इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा -

शब्दों के द्वारा जीवित अर्थों की धारा
मैं ने आज बहा दी है[3]।
xx x xx
मेरे और आपके दिल की
धड़कन है, कहना चाहें तो कविता कह ले[4]।"

जीवन का यथार्थ चित्रण

त्रिलोचन यथार्थ का प्रेमी है। वह विलास का प्रेमी कभी नहीं रहा। उन्होंने जब देखा तब केवल -

---

1. ताप के ताए हुए दिन, पृ.60,63
2. उस जनपद का कवि हूँ, भूमिका
3. शब्द, पृ.44
4. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.66

जीवन देखा, धूल और मिट्टी से आया
था, रक्त के कणों में यह सम्बन्ध समाया
था, कुछ ऐसा कि नदी की भी कल कल छल छल
में समाज में सुनता था, जिसका था खाना
बिना झिझक बेलाग मुझे उसका था गाना।[1]

त्रिलोचन की कविताओं में मूलत: जीवन का स्पन्दन होता है। उनकी कवितायें अपने युग की, समाज की जनजीवन की अभिव्यक्ति है। उनकी दृष्टि में वर्तमान समाज की स्थिति कुछ इस प्रकार है कि जीवन में अर्जन का मतलब पैसा ही है। आज पैसा ही जीवन के स्तर का मानदण्ड है। कभी कभी ऐसा लगता है कि इस जीवन का कोई अर्थ नहीं है, यदि कुछ है तो मार-काट है, हत्या और आत्महत्या है, लूटपाट है, बलात्कार है। जग में कौन अनर्थ नहीं है ? जीना सबसे कठिन काम है। सचमुच जीना केवल सांस लेना नहीं है, इससे ऊपर कुछ करना है। इनसान कहलाना हँसी खेल की बात नहीं है। कवि के विचारानुसार भारत को उन्नति की ओर ले जाने केलिये गरीबी हटाना आवश्यक है। कोई भूखा हो तो उसको रोटी दो। क्योंकि नींव छोड़कर खिसकी तो दीवार गिरेगी।

गरीबों की उन्नति की तीव्र अभिलाषा त्रिलोचन की कविताओं में देखी जा सकती है।

---

1. उस जनपद का कवि हूं, पृ. 85

पूँजीवाद का विरोध

हमारे समाज में कुछ लोग आँखों में सुख सपनों का अंजन आँजे हुए चलते हैं । कवि की दृष्टि में जमीन्दार और पूँजीपति इस जग में परोपजीवी है । कवि लोगों को उच्च वर्ग के चारण नहीं बनना चाहिए । क्योंकि हमारा लक्ष्य एक वर्गहीन समाज है -

पथ न्यारा है
आगामी मानव का, उसका यह नारा है
काम करे सो खाए, जग में परोपजीवी
जमींदार, पूँजीपति सबको ललकारा है
चारण नहीं बनेंगे आगामी मसिजीवी
उच्च वर्ग के, वर्गहीन होगा समाज यह ।
पूज्य रहोगे उस समाज में पर तुम अहरह ।[1]

यहाँ "मसिजीवि" से तात्पर्य कवि तथा अन्य साहित्यकार से हैं । समाजवाद का आग्रह भी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है ।

समाजवाद

आज साधारण जनता की आवाज़ें दूरियाँ पार कर उच्च वर्ग के कानों तक जाती है ।

---

1. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 77

आवाज़ें दूरियाँ पार कर आसमान की
कानों को अपना वक्तव्य सुना जाती है
xx xx xx
बादल छाए हैं सूरज भी ढका ढका ही
अस्ताचल को जा पहुँचा[1]।

त्रिलोचन की संघर्ष चेतना इन पंक्तियों में देखी जा सकती है। "बादल" विप्लव का प्रतीक है और 'आसमान' उच्च वर्ग का।

कवि हमेशा दीन दुखियों के साथ है। दुख से दबे हुए मानव उनकी कविता का विषय है। उन्होंने अपनी विवेच्य युगीन कविताओं में सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध, सोई जनता को जगाने का परिश्रम किया है। इसकेलिये उन्होंने अक्षरों के दाने से क्रांति के बीज बोये हैं। यथा -

सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह केलिये
मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को,
जिसको नेता लूट रहे हैं, कहकर ताको
मत, हम तो है ही
xx x xx
बीज क्रांति के बोता हूँ, अक्षर दाने
है घर बाहर जन समाज को नए सिरे से
रच देने की रुचि देता हूँ[2]।

1· शब्द, पृ·23
2· अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ·87

कवि की प्रतीक्षा यह है कि विषम समाज व्यवस्था को मिटाकर समाजवाद आयेगा ।

राजनीतिक चेतना

आज देश बडे वेग से सर्वनाश की ओर बढता जा रहा है ।। गीध जैसे जननेता मृत जनता के शव पर चोंच मारते जाते हैं । इस अवस्था में कवि अपना कर्तव्य भूल नहीं सकते । या सुख शैया के सपने के पीछे खींच न सके । नेताओं की भाषणप्रियता पर व्यंग्य करते हुए त्रिलोचन ने लिखा -

संप्रति हम जितना ही
कम कहते हैं, अच्छा है हमको मायावी
वाग्वीरता से घृणा है
xx x xx
नेता पागल दोनों खाते हैं ह्मर्दा
नेता घाघ है, मगर पागल सीधा सादा[1] ।

जनता की शक्ति पर कवि को विश्वास है । "आधुनिक अभिमन्यु" कविता में कवि ने इसी विश्वास को प्रकट किया है । चक्रव्यूह का युद्ध आज यदि ठन सकता है तो अभिमन्यु आज जनबल से तन सकता है । व्यूह-विधाता स्वयं व्यूह में फँस जायेंगे । त्रिलोचन ने वर्तमान परिस्थितियों को "चक्रव्यूह" और आधुनिक मनुष्य को "अभिमन्यु की संज्ञा दी है । अपने राजनीतिक विचार को व्यक्त करने केलिये त्रिलोचन ने व्यंग्य का भी सहारा लिया है ।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.102

चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया

चीन का भारत पर आक्रमण करना त्रिलोचन उचित नहीं मानते हैं। भारत को अपनी सीमा की रक्षा करनी थी। इसलिये चीन के विरुद्ध युद्ध करना कवि उचित मानते हैं -

भारत का
दोष कहाँ है, अपनी सीमा की रक्षा का
कार्य उसे करना है सारा मोह त्यागकर

क्योंकि

स्वाभिमान ही सार-तत्व है मानव मन का[1]।

गाँधीजी की हत्या

गाँधीजी की हत्या ने कवि को सताया। उन्होंने साम्प्रदायिकता को इसकेलिये दोषी कहा है। उन्होंने लिखा -

बापू, तुम्हारे होते तो कितना अच्छा होता,
बिना तुम्हारे सूना सूना सा लगता है[2]।

जहाँ विवेच्य युग के अन्य कवियों ने इस अवसर पर अपनी मार्मिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है वहाँ त्रिलोचन के शब्दों में एक प्रकार का नष्टबोध देखा जा सकता है।

---

1. शब्द, पृ.36
2. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.77

जाति भेद का विरोध

कवि ने आदमी आदमी के बीच होनेवाले भेद भाव का विरोध किया है । शत्रु मित्र की, गोरे-काले की खाई नहीं होनी चाहिए । जाति के नाम पर खून की नदियों को नहीं बहाना चाहिए । क्योंकि -

...खून एक ही दोनों में है,
वही हवा आँगन में है जो कानों में है[1] ।

त्रिलोचन की दृष्टि में हिन्दु और मुसलमान एक है । सभी मनुष्य है । "हिन्दु, मुसलमान, ईसाई ये सारे नाम मिटेंगे, सब मनुष्य होंगे" - यही कवि की प्रतीक्षा है ।

वर्तमान समाज में पायी जानेवाली संकीर्ण जातीयता पर व्यंग्य करते हुए त्रिलोचन ने इस प्रकार लिखा -

तुम हिन्दु हो ? कैसे हिन्दु हो ? क्या जाने
धर्म कर्म हिन्दु का सबकुछ छोड दिया है,
पुरखों की मर्यादाओं को तोड दिया है,
चोटी और जनेऊ तज दी अब मनमाने
काम किया करते हो सब भरभंड कर दिया
कुछ भी तो अपनापन होता, फरक चाहिए
हिन्दु किरिस्तान में .....[2] ।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.17
2. वही, पृ.81

त्रिलोचन जाति, वर्ण, वर्ग भेद से परे मनुष्य को मनुष्य मानने के पक्ष में है ।

धार्मिक चेतना

काशी, गंगा आदि तीर्थस्थान संकट मोचन के स्थल है । लेकिन कवि की राय में तीर्थयात्रा की अपेक्षा यही करणीय है कि "काशी और इलाहाबाद को छोड़कर अपना अंचल झांडो और देखो क्या सच है, क्या सपना[1] ।"

त्रिलोचन की दृष्टि में विश्व की भक्ति आज अनाश्रित भटक रही है । वे मनुष्य में - दीन दुखियों में - ईश्वर को देखने के पक्ष में है ।

दीन, हीन, छवि-क्षीण और व्याकुल ईश्वर को
आज सड़क पर हाथ पसारे मैं ने पाया[2] ।

समाज में दिखाई पड़नेवाले तथाकथित प्रवाचकों पर और लोगों के अन्धविश्वासों पर उन्होंने व्यंग्य प्रहार किया है । जैसे -

भूमण्डल भर के भविष्यव्यवसायी दल ने
जल-स्थल-नभ से महाप्रलय होगा भाखा है
प्राणी अर्धप्राण हो गये हैं, बस कल की
चिंता उनको अकर्मण्यता से कर मलने
पर ही विवश कर रही है[3] ।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.72
2. शब्द, पृ.62
3. वही, पृ.27

सांस्कृतिक चेतना

त्रिलोचन भारत के अतीत को गौरवपूर्ण मानते हैं । लेकिन देश की वर्तमान स्थिति पर उनको दुख है । उनकी दृष्टि में अपने अतीत वैभव के भस्मस्तूपों पर बैठकर आँसू बहाना व्यर्थ है । आँखों में आँसू के बदले लक्ष्य और कंठ में आह के स्थान पर ललकार होनी चाहिए ।

आधुनिक युग में मनुष्य नहीं, दो पैरों वाला पशु जीवित रहते हैं । इस दुनिया में आदर्शोपासक का कोई स्थान नहीं । दुनिया भीड भाड है । कवि का व्यंग्य है कि अगर तुम जीना चाहते हो तो इस भीड पर धक्के मारो क्योंकि इससे डरना जीवन को विनष्ट करना है । खाली पेट भरना, कुछ काम करना और उसके बाद चुपचाप मर जाना जीवन नहीं है । स्वाभिमान के साथ जीना ही श्रेष्ठ कार्य है ।

आधुनिक समाज को देखकर ऐसा लगता है मानों भारत रामराज्य नहीं रावणराज्य है । जैसे कवि ने लिखा -

भीषण कमी अन्न की, बलात्कार की अनुदिन
बढनेवाली गाथायें, हत्यायें, डाके,
चोरी, रिश्वतखोरी, कोई बुरा न ताके
रामराज्य है, रामराज्य ही बढती के दिन
आ जाने पर रावणराज्य कहा जाता है[1] ।

---

1. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.37

निष्कर्ष

त्रिलोचन जीवन के गायक हैं । वे कवि को मानव आत्मा का शिल्पी मानते हैं । उनकी विवेच्ययुगीन कवितायें "व्याकुल और प्यासी" जनता केलिये लिखी गयी है । राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक बुराईयों पर उन्होंने व्यंग्य प्रहार किया है ।

त्रिलोचन की कविताओं में समाज से या व्यवस्था से संघर्ष करने से भी अधिक समाज में या व्यवस्था में परिवर्तन लाने की इच्छा प्रकट की गयी है । "इस ऊबड-खाबड दुनिया से", "यह कबन्ध युग है", "आधुनिक अभिमन्यु", "याचना", "कर्म पथ", "युग दर्पण" जैसी कविताओं में त्रिलोचन ने वर्तमान समाज की सही आलोचना की है ।

भारत भूषण अग्रवाल

भारतभूषण की प्रारंभिक कविताओं में रोमांटिक संवेदना और वैयक्तिक भावना मिलती है । लेकिन उनकी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में सामाजिक चेतना प्रखर है । उनकी विवेच्य युगीन कविताओं का संसार तत्कालीन समाज और जीवन ही है ।

कवि की अनुभूतियाँ समाज की ही देन है । भारतभूषण ने जिन्दगी को समाज के साथ अनुभव किया और उन अनुभवों को ईमानदारी से चित्रित भी किया । अलगाव, निराशा, आतंक, जीवन की यांत्रिकता और अकर्मण्यता पर उन्होंने प्रहार किया - कभी सीधे, कभी व्यंग्य रूप से । "भारत जी की कवितायें हम में से उठकर बोलने वाले एक आदमी की सच्ची-सीधी बातचीत है[1] ।"

उनके "ओ अप्रस्तुत मन", "अनुपस्थित लोग", "एक उठा हुआ हाथ", "कागज़ के फूल", "उतना वह सूरज है" आदि संग्रहों की कविताओं का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

---

1. अशोक वाजपेयी - उतना वह सूरज है - भूमिका

सामाजिक चेतना

भारतभूषण ने यह समझ लिया कि वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्ति मात्र कुछ सार्थकता नहीं पा सकता जबकि समाज को ही न पलट दिया जाय। भारतभूषण की कविताओं का विश्लेषण करते वक्त डॉ॰ शम्भुनाथ चतुर्वेदी ने इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि उनके काव्य में समष्टि का आग्रह व्यक्तिवाद की अपेक्षा अधिक प्रबल है। उन्होंने व्यक्तिवाद या अहं को अस्थायी मनोवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है - अंतत: समष्टि की ओर उन्मुख होने का विश्वास उनमें बहुत प्रबल है[1]।

हमारे समाज में व्याप्त बिकाऊ मनोवृत्ति पर कवि ने व्यंग्य के सहारे प्रहार किया है। जैसे -

पहले बिके धर्म पर
फिर बिके भक्ति पर
रूप पर मत्य में बिके
बिकना तो अपनी परम्परा है[2]।

भारत जी ने मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व को - जो आधुनिक युग की देन है - भी चित्रित किया है। एक वह व्यक्तित्व जो जीवन के यथार्थ को भोगता है और दूसरा स्वप्न में जीवन बिताना चाहनेवाला व्यक्ति

---

1. नया हिन्दी काव्य और विवेचना, पृ॰157
2. ओ अप्रस्तुत मन, पृ॰112

"मैं और मेरा पिट्ठू", "अलगाव" जैसी कवितायें मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व को चित्रित करनेवाली है ।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध के बारे में भी उन्होंने विचार किया है । उन्होंने व्यक्ति को समाज रूपी प्रवाह का बिन्दु माना है -

बिन्दु हूँ प्रवाह का
जिसका उद्दिष्ठ हो समुद्र में समाना ही
और दूर रहना
मिट जाने के समान हो[1] ।

भारतभूषण ने साहित्यकार को दर्पण का खण्ड माना है । दर्पण के खण्ड की विशेषता यह है कि अपने लघु अस्तित्व में भी वह सार्थक और पूर्ण है । दर्पण को लाख खण्ड बनायें तो प्रत्येक खण्ड पर पूरा प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । इस प्रकार प्रत्येक साहित्यकार भी समाज का यथातथ्य चित्रण करनेवाले दर्पण का खण्ड है ।

लेकिन साहित्य समाज का दर्पण मात्र नहीं - दर्पण रूप का प्रमाण मात्र है । युग परिवर्तन की शक्ति उसमें होनी चाहिए । लेकिन वर्तमान परिस्थितियों ने कवि को समाज का तटस्थ दृष्टा बनने केलिये विवश कराया है -

---

1. अनुपस्थित लोग, पृ.12

जहाँ चलनेवाले लोग हैं
और चलानेवाले लोग हैं
और मैं दोनों से तटस्थ, देखता हूँ।[1]

वर्तमान समाज में व्यक्ति जो अकेलेपन का अनुभव करता है, उसको कृत्रिम परिवेश से घिरा हुआ, भीड से अलग "गमले का पौधा" के प्रतीक द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। "लोग साथ होते हैं जुलूस में। होता है अकेले ही जूझना।[2]" यही आज की स्थिति है।

जीवन की यांत्रिकता का चित्रण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारा समाज इतना बदल गया है कि मनुष्य यांत्रिक जीवन व्यतीत करने केलिए विवश हो जाते हैं। इस यांत्रिक जीवन की व्यस्तता और छटपटाहट को भारतभूषण ने सशक्त भाषा में चित्रित किया है। ट्रैफिक का शोर, नेताओं का भाषण, कलाकारों के अड्डे, साइन बोर्ड की कतारें, एक्सिडेंट, अश्लील पुस्तकें आदि नागरिक जीवन के विविध दृश्यों को दिखाकर कवि ने कहा कि इस यांत्रिकता के बीच प्यार जैसे मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

व्यक्ति और व्यक्ति के बीच मानवीय सम्बन्धों केलिये कोई अवकाश नहीं है। लोग सभी कार्य अखबारों से जानते हैं। वे समाज के

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.22
2. वही, पृ.40

मामलों में सीधे भाग नहीं ले सकते । इस मनोवृत्ति का विरोध करते हुए भारत भूषण ने लिखा -

नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा -
ज़िन्दगी को अखबार बनाकर पढ़ते रहना ।
कोई-न-कोई बता ही देगा वह रास्ता
जिस पर घटनायें मिलती हैं[1] ।

मनुष्य का काम आज यंत्र कर रहा है । ट्रैफिक पुलीसमान के स्थान पर आज 'आटो मैटिक लाईटें' लगी है । विज्ञान के इस युग में हर काम 'इलेक्ट्रिसिटि' से कराया जाता है । लोग यह भूल गये हैं कि आग किसे कहते हैं ।

इन सबके बीच भी मानवीय सदाशयता और इनसानी रचनात्मक शक्ति पर भारत जी की अटूट आस्था देखी जा सकती है ।

वर्तमान समाज को भय और आतंक का वातावरण घिरा है । भारत भूषण ने इसको साँप की निरंतर आनेवाली आहट के रूप में चित्रित किया है ।

आतंक से भरा हुआ अरक्षित जीवन का चित्र उनकी "डायरी का तीसरा पन्ना" कविता देती है -

---

1· एक उठा हुआ हाथ, पृ·26

रोज़ सबेरे
चाय की मेज़ पर
अखबार के पन्नों से मुझे चीखें सुनाई देती है ।
अचानक
कहीं पर तनी पुलीस की लाठी से
मेरी प्याली कांपकर छलकती है
चम्मच की खनखनाहट में
गोलियां गूंज उठती है[1] ।

मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

सबेरे के अखबार से लेकर रात में आँख में डालनेवाली दवाई तक सारे गृहकार्यों में व्यस्त मध्यवर्गीय गृहस्थ का चित्र भारतभूषण ने खींचा है । साहब की घण्डी पर उठने-बैठनेवाले, बस के फुटबोर्ड पर टँगा-टँगा घर आनेवाले, बच्चे की दवा केलिये आउटडोर वार्ड की क्यू में खडा रहनेवाले मध्यवर्गीय क्लर्क के सहानुभूतिपूर्ण जीवन को उन्होंने चित्रित किया है।

प्रात: काल मिल के साइरन से लेकर रात में आकाशवाणी से मौसम के हाल प्रसारित होने तक रोजमर्रा की जिन्दगी का यथार्थ चित्र उनकी कविता देती है । मध्यवर्गीय मनुष्य की बोझिल, यांत्रिक, उदास और असहाय जीवन का चित्र "विदेह" कविता देती है । आफिस से थका मान्दा घर लौटने पर वह इसका अनुभव करते हैं कि उसका अपना शरीर नहीं -

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.30

भूल से मैं सिर छोड आया हूं दफ्तर में
हाथ बस में ही टंगे रह गए
आंखें फाईलों में ही उलझ गई
मुंह टेलीफोन से ही चिपटा-सटा होगा
और पैर हो - न - हो क्यू में रह गए है
तभी तो मैं आज घर आया हूं विदेह ही ।[1]

भारतभूषण बचपन से ही पारिवारिक आर्थिक संघर्ष, रूढिवादिता और अज्ञान से गुजर रहे थे । उनकी कविताओं में जो आंतरिक टूटन का स्वर सुनाई पड्ता है शायद इसका कारण उनके बचपन का जीवन होगा । मध्यवर्गीय मन का द्वन्द उनकी कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है । जैसे -

न नीचे कूद सकता हूं
न ऊपर स्थिर रह सकता हूं ।[2]

भ्रष्टाचार

वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार बढ रहा है । 'सांप' के प्रतीक द्वारा कवि ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को चित्रित किया है -

इस महानगर में जहां भीजाता हूं
कुर्सी पर एक सांप को

1• अनुपस्थित लोग, पृ•78

2• एक उठा हुआ हाथ, पृ•62

कुण्डली मारे बैठा पाता हूँ
सड़क पर जब मैं बेखबर चल रहा होता हूँ
चुपके से बगल से
एक रंगीन साँप सरक जाता है
पार्कों की घासों पर
इन्हें लहराते देखता हूँ
दफ्तरों और रेस्तराँओं में
इनकी फुफकारें उठती हैं।[1]

भारतभूषण इन सर्पों का अंत करने केलिये - नाग यज्ञ करने केलिये एक जनमेजय के इन्तज़ार में रहते हैं।

आर्थिक चेतना

बीमारी, गरीबी और अविद्या में पड़े हुए, अपने देशवासियों के प्रति कवि के मन में सहानुभूति थी। हमारी योजनायें आज जन हित केलिये न रहकर प्रदर्शिनी तक सीमित रहती है। इस बात पर व्यंग्य प्रहार करते हुए भारतभूषण ने लिखा -

हम बड़े बड़े नक्शों को जाँचकर
ऊबड़ खाबड़ को काटेंगे
और उस पर रास्ता बनायेंगे
पर वह रास्ता घूम फिरकर

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.42

या तो स्विमिंग पूल पर पहुँचेगा
या सेमिनार के उद्घाटन में ।[1]

कृषकों की दुरवस्था ने कवि को सताया । आर्थिक अपर्याप्तता से मध्यवर्गीय आदमी जीने केलिये तडप रहा है । यह देखकर कवि ने पूछा "दो सौ रुपल्ली माहवार पर बारह जनों का परिवार कैसे चलता है ?"[2] आर्थिक शोषण पर भी उन्होंने व्यंग्य किया है ।

कवि ने मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतद्वन्द्व केलिये आर्थिक व्यवस्था को ही दोषी ठहराया । हमारी वर्तमान आर्थिक स्थिति साहित्यकार को भी केवल पैसे केलिये साहित्य रचना करने को बाध्य करनेवाली है । जैसे -

जो एकांत में बैठकर कविता रचा करूँ ?
मैं तो बस कभी-कभी अनुवाद करता हूँ
जब बच्चों की फीस या
बीवी को देने केलिये
अतिरिक्त पैसों की ज़रूरत पड जाती है[3] ।

राजनीतिक चेतना

भारत भूषण किसी भी राजनीतिक मतवाद से प्रतिबद्धता नहीं रखते थे । सन् 1943 में कुछ समय केलिये वे कम्यूनिस्ट रहे लेकिन बाद में

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.45-46
2. वही, पृ.50
3. वही, पृ.28

सिद्धांतों की अर्थहीनता उनको मालूम हुई । 'ओ अप्रस्तुत मन' संग्रह की भूमिका में कवि ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है - "मतों, सिद्धांतों, वादों और नारों के साम्प्रतिक क्रांति में किसी एक की परिधि में अपने को सीमित कर काव्य रचना करना और उस परिधि में कीर्ति ध्वजा फहरा लेना आसान तो है, पर उससे कवि धर्म का निर्वाह नहीं हो सकता.... और इसलिये प्रतिश्रुत यानी पक्षधर कवि से अधिक दयनीय प्राणी और दूसरा कोई नहीं ।"

जनतंत्र में आज "शब्दों का भयंकर रेला" होता है जो सबको निगलने आ रहा है । किताबों के फुहारे, अखबारों की बौछार, भाषणों के परनाले, बहसों की नदियां, सेमिनार की नहरें और विधान सभाओं के पोखरा - सब उफन रहे हैं । शब्दों के इस सैलाब में योजनाओं की फाईलें और इतिहास के पन्ने, भविष्य के अनुमान और विज्ञान के प्रबन्ध सब बहे चले जा रहे हैं। सब लोग सत्ता की कुर्सी केलिये लड रहे हैं -

अनगिनत हाथ
बैलट बाक्स से निकलकर
तक्षक की शक्ल में
इन्द्रासन से लिपट गये हैं[1] ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के राजनैतिक क्षेत्र में इतना भ्रष्टाचार आया है कि लोग "गांधीजी को टूरिस्ट" मानने लगे । नेता लोग अपना वचन पूरा नहीं करते हैं । योजनायें अपूर्ण रहती है -

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.53

प्रार्थना सभा में प्रवचनों को दीमक चाट रही है
कहाँ रखूँ, कहीं जगह नहीं है
साहब ने एक फ्रिज का आर्डर दे दिया है[1]।

आयोजनाओं की फूल मालाओं से इतना लद गया है कि देश का नक्शा अब दिखाई नहीं देता । देश आज नारे की हवाई, भाषण की चर्खी, योजना की महताब, सेमिनार की अनार और बहस के पटाखों और प्रदर्शन की फुलझडी से भरा हुआ है । नये नये राजनैतिक दलों का निर्माण हो रहा है, उनमें आदर्शों की कमी या अभाव रहता है । इस बात पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा -

हर रोज़ एक झंडा
मुझे सड़क पर कुचला मिलता है
हर रोज़ एक आदर्श
अस्पताल में दाखिल होता है[2]।

गाँधीजी, शास्त्री जैसे महापुरुषों के प्रति भारतभूषण के मन में श्रद्धा थी । शून्य तक पहुँचने वाले मनुष्य के इस युग में उन्होंने विश्व सरकार की कल्पना की है ।

सांस्कृतिक चेतना

भारतभूषण ने हमारी वर्तमान संस्कृति पर ज्यादा विचार किया है मानवता का नाम तक आज नहीं रहा । दंतकथाओं के दैत्य की तरह सब ने

1· एक उठा हुआ हाथ, पृ·57

2· उतना वह सूरज है, पृ·20

अपनी अपनी आत्मायें पिंजडों में बन्द करके कुओं में डाल दी है । युवा पीढी आधुनिक बनने केलिये 'ब्लू फिल्म', 'मारिहुवाना' आदि का शिकार बन रही है । मन्दिर की लाट पर गीता खोद दी गई है । फुट पाथ पर पीली किताबों का ढेर लगा है ।

धर्म का मूल्य इतना घट गया है कि वेद पाठी और आर्मी कण्डेक्टर में कोई फर्क नहीं दीख पडता । दोनों की बेटियां "ए फिल्म" देखती है ।

युद्ध एवं शांति

अणु की भीषणता से परिचित कवि ने शांति की स्थापना करना चाहा । एक तीसरे विश्व युद्ध का आतंक उनकी कविताओं में देखा जा सकता है -

जगह जगह / खाईयां है
कि हम तैयार है बमों केलिये[1] ।"

इसे देखकर व्याकुल होकर कवि ने यह आशा प्रकट की है कि यही अच्छा है कि उनमें बच्चे आंख-मिचौनी खेलते रहे । उन्होंने अणु परीक्षा का भी विरोध किया है ।

---

1. उतना वह सूरज है, पृ.38

आस्था का स्वर

भविष्य के प्रति आस्था और कर्म निष्ठा का स्वर भारत भूषण की कविताओं में सर्वत्र देखा जा सकता है । इस आस्था ने उनको कविता को एक मूल्यवान अस्त्र मानने की प्रेरणा दी है । युवा पीढ़ि को समाज से नाराज़ होकर भागने की बजाय समाज की शोषण सत्ता से लड़ने का उपदेश उन्होंने दिया । उनका विश्वास था कि "बचना नहीं जूझना ही मुक्ति है, शुचिता है, धर्म है[1] ।"

समाजवादी समाज की स्थापना करना कवि का लक्ष्य था । लेकिन वे जानते थे कि यह सपना निकट भविष्य में पूरा न होनेवाला है । फिर भी उन्होंने आस्था नहीं छोड़ी -

और ये अपने अधूरे दर्दीले गीत
काँपती कलम से उतारकर
उस अनागत के नाम सही करता हूँ
एक दिन जो
मेरे इस अधूरेपन का मर्म पहचानेगा ।
नहीं, नहीं,
जो इस अधूरेपन से ही जन्मेगा[2] ।

---

1. एक उठा हुआ हाथ, पृ.64
2. अनुपस्थित लोग, पृ.16

क्षण का महत्व

भारत भूषण की कुछ कविताओं में क्षण को महत्व देते दिखाई पड़ता है । जीवन के सुखदायी क्षण की प्रतीक्षा में कवि करोड़ों अरबों क्षणों तक जी सकता है -

जिऊँगा मैं -
करोड़ों-अरबों-अमित ये क्षण
माला के असंख्य अन्य दाने
जपूँगा -
जिससे कि लौटे वही मनका
रंग तन के रंग मन का[1] ।

लघुमानव की प्रतिष्ठा

लघुमानव की प्रतिष्ठा, जो विवेच्य युग की कविताओं की एक विशेषता है, भारतभूषण की कविताओं में देखी जा सकती है । अपनी लघुता पर कवि को गर्व है -

लो / मैं देता हूँ / अपना पराग-राग
आग यह अपनी / जो मैं हूँ,
जो मेरा सर्वस्व है / {पर जो नगण्य है}
बेहिचक देता हूँ
मुट्ठी भर अपने को रीता कर देता हूँ[2] ।

---

1. अनुपस्थित लोग, पृ.38
2. वही, पृ.71

निष्कर्ष

यद्यपि भारतभूषण की प्रारंभिक रचनाओं में रोमांटिक संवेदना और वैयक्तिक भावना मिलती है, उनकी स्वतंत्रता परवर्ती कविताओं में सामाजिक चेतना प्रखर है । स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यष्टि और समष्टि का जो द्वन्द्व दिखाई पड़ता है वह भारतभूषण की कविताओं में ज्यादा देखा जा सकता है ।

भारतभूषण की अधिकांश कवितायें व्यंग्य प्रधान है । मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की सच्ची छटपटाहट को वाणी देनेवाले कवि ने प्रेम के बदले हुए सन्दर्भों की विडम्बनाओं को व्यक्त करने के साथ सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को भी अत्यंत तीव्रता से अभिव्यक्त किया है । लोकमंगल और समष्टि कल्याण की भावना उनकी कविताओं में भरी हुई है । जीर्ण मान्यताओं और अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों के प्रति उन्होंने विरोध प्रकट किया है ।

"गमले का पौधा", "मैं और मेरा पिट्ठू", "साथ है जुलूस के", "खण्ड हूँ विराट का", "सूर्य से अपील", "एक उठा हुआ हाथ", "क्रांति", "अ-लगाव", "आतिशबाजी", "आहट : डायरी का तीसरा पन्ना", "परिदृश्य 1967", "नाग यज्ञ", "चीर-फाड़" जैसी कवितायें सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

गिरिजाकुमार माथुर

माथुरजी का कवि व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील रहा था। उन्होंने अपनी कविताओं में मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण ज्यादा किया है। उनकी कविताओं का मूल स्वर आस्था का है। वे कभी किसी सिद्धांत का प्रचारक नहीं रहे। उनकी कविताओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है।

"धूप के धान", 'शिलापंख चमकीले', 'जो बन्ध नहीं सका', 'साक्षी रहे वर्तमान' आदि विवेच्य काल के अंतर्गत आनेवाले उनके काव्य संग्रह हैं जिनका विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण यहाँ किया गया है।

सामाजिक चेतना

माथुरजी की कवितायें स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का दस्तावेज कही जा सकती है -

मेरे भीतर तमाम सारा
मलबा भरा है
हर किस्मी डिज़ाइन का
सडे अधमरे जिन्दा, मुर्दा
जहान का।

माथुरजी को वर्तमान समाज की सही आलोचना करते दिखाई पडता है। हवा में बढते हुए पापों की भभकदार बदबू है।

दिन दिन विपन्न होते घर सडाँध कारखाने हैं क्योंकि मामूली आदमी सिर्फ पेट है, लिंगी है और हर ऊँचे चढनेवाला आदमी पंजा है या दांत है, छुरा ब्लैक मेलर या दलाल है । इसलिये इस दुनिया में गंध की जगह हर तरफ दुर्गन्ध का अहसास है[1] ।

बाज़ार में, नौकरी में, रेल की सफर में, राजनीति में, इंसाफ में सभी में आज लोगों को धक्का मिलता है । माथुरजी के विचारानुसार हम सब एक परिवर्तनहीन शून्य में लटके हुए लोग हैं । हम सभी रास्तों से भटके हुए लोग है । विषम सामाजिक परिस्थितियों ने मनुष्य मनुष्य के बीच कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं रहने दिया है ।

हमारी वर्तमान सामाजिकता कोढ खाज है । यहाँ सबको सिर्फ अपनी चिन्ता है । वे इस प्रकार भाग रहे हैं मानों कहीं आग लग गई हो या भूचाल फटा हो या बाढ या युद्ध हो, या दुश्मन चढा आता है । व्यक्ति भीड और अकेलेपन में व्यस्त है -

चारों तरफ शोर है
चारों तरफ भरा पूरा है
भीड और कूडा है[2] ।

सभी राहें अन्धी हैं । ज्यादातर लोग पागल है । अपने ही नशे में चूर बहशी है या गाफिल है । नायक हीरो है और विवेकशील

---

1. साक्षी रहे वर्तमान, पृ.23
2. जो बन्ध नहीं सका, पृ.3

कायर है । माथुर जी ने वर्तमान समाज की तीखी आलोचना की है ।

भूख और गरीबी

करोडों आदमी धूप, सर्दी और गर्मी सह रहे हैं । उनके पास जिन्दगी का एक भी साधन नहीं है । उन्हें जिन्दगी मृत्यु से भारी है । भूख, बीमारी, गरीबी और गन्दगी मे वे तडप रहे हैं । जिन्दगी कौडियों के मोल बिकती है । इस अवस्था को माथुरजी ने इस प्रकार चित्रित किया है -

जल रहे हैं कोटि चूल्हे
किन्तु है इनसान भूखा
जल रही है आग
फिर भी आज तक इनसान भूखा ।[1]

वर्तमान समाज में आदमी और गोबर में कोई खास अंतर नहीं है । महँगाई और भूख से सूखा पेट जलता है । 'सत्ताधारी आँखें मूँदकर दूर शहरों में बैठते हैं । वे मज़े से रहते हैं । गरीबी को दूर करने केलिये नेता लोग कुछ नहीं करते हैं । इस पर कवि ने आक्रोश प्रकट किया है ।

स्वतंत्रता का स्वागत

स्वतंत्रता का सर्वात्मना स्वागत करते हुए माथुर जी ने लिखा है कि विषम शृंखलायें टूटी है । समस्त दिशायें खुलीं और युग बंदिली हवायें

---

1. धूप के धान, पृ.72

आज प्रभंजन बनकर चलती है । पुराने सिंहासन की प्रतिमायें टूट रही है । और

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है[1] ।

स्वतंत्रता के सुअवसर पर माथुर जी की प्रार्थना यह थी कि वैभव का धान्य लेकर महालक्ष्मी घर घर में उतरें, ऋद्धि सिद्ध से ग्राम भरें, नगरों में श्रीसुख बिखरें । भारत की मावर धरती पर सोना चाँदी बरसे । ऐसा दीपक जले कि जिसमे स्वर्ग धरा को तरसे । इस लौ में दारिद्र्य जले । जन जन का जीवन निखरे[2] ।

आज़ादी के साथ हमारे उपर पडे दायित्व के प्रति भी कवि सचेत थे । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश की गरिमा लौट आयी । सभ्यता का रंग केतन और शांति का सन्देश और जनमुक्ति मंगल कामना लेकर हमारी स्वतंत्रता आयी ।

भारत की स्वतंत्रता एशिया के जागरण का कारण बनी -

एशिया के कमल पर तुम भारती सी
पूर्व के जन जागरण की आरती सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गयी तुम भूमि स्वर्ग संवारती सी[3] ।

---

1. धूप के धान, पृ.55
2. वही, पृ.58
3. वही, पृ.17

गाँधीजी की मृत्यु

माथुर जी के मतानुसार बापू भारत का सूर्य था । उनकी मृत्यु सूर्यास्त के समान थी । इस पर कवि ने लिखा -

सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ
काल पुरुष मिट गया, धरा का सूना भाल हुआ[1] ।

माथुर जी ने बापू की मृत्यु पर रोने के बदले उनके आदर्शों को अपनाने का उपदेश और उसकेलिये प्रेरणा दी है । कवि के विचारानुसार गाँधीजी का सर्वश्रेष्ठ आदर्श मानवता है । कवि के मतानुसार गाँधीजी को अपना आदर्श पुरुष मानना चाहिए -

तू बात कहे जो एक बार
वह कोटि कंठ स्वर दुहरायें
तू बोये जो भी भाव बीज
वे सदियों तक उगते जायें[2] ।"

माथुर जी ने गाँधीजी को सूर्य कहा । विवेच्य युग में उनके अतिरिक्त भवानीप्रसादमिश्र ने इस प्रकार कहा है ।

---

1. धूप के धान, पृ.60
2. वही, पृ.129

वर्तमान राजनीति पर व्यंग्य

आज के नेताओं का काम पोस्टर लगाना और भाषण झोंकना बन गया है । माथुर जी की दृष्टि में नेता छुई-मुई है । छोटी से छोटी आलोचना {बुराई} से उसका चेहरा गिर जाता है । हमारे नेता अच्छी से अच्छी बातें सुनने का आदी है । हर जगह, हर बात पर वे हज़ारों झूठ बोलते हैं । वर्तमान युग के नेताओं पर माथुरजी ने व्यंग्य किया है -

नेता
एक फूला, गैस भरा गुब्बारा है
जिसे दिन भर भी सचाई
होती न गवारा है[1] ।

श्रम का महत्व

वास्तविक सुख मेहनत मे ही मिलेगा । इसलिये माथुरजी ने कहा पसीने से अपना पथ बनना है । परिश्रम की आग को उस समय तक बुझने न देंगे जब तक मिट्टी से उजाला आयेगा ।

माथे पर न रक्खो हाथ
ज़रा कुछ और तपने दो
xx xx xx

---

1. साक्षीरहे वर्तमान, पृ.38

इसी से जिन्दगी की तिक्त
कडवी, कटीली अनुभूति
मन में और पचने दो
हमारे दर्द, दुख, संघर्ष की
मज़बूत छाती पर
नई पीढी संवरने दो[1]।

वर्ग वैषम्य

धनी और निर्धन जिस प्रकार समाज में जीवन बिताते हैं इसका यथार्थ चित्र माथुर जी की कविता देती है। संघर्ष द्वारा आर्थिक विषमताओं को मिटा जा सकेगा। लेकिन, कवि के विचारानुसार, आज क्रांति पर नहीं, देश के नवनिर्माण पर ध्यान देना आवश्यक है -

हे सृजन-मदन की सुरभि-श्वास
आओ हे पृथ्वी के प्रियतम
फिर से धरती को फुल्ल अशोक बनाओ
फसलों की पकी गन्ध बनकर तुम छाओ
निर्माण बीज युग के पतझर से लेकर
तुम नवयुग का रंगोत्सव नया रचाओ[2]।

1· धूप के धान, पृ·135
2· वही, पृ·105

जहाँ विवेच्य युग के अन्य कवियों का लक्ष्य संघर्ष द्वारा वर्ग संघर्ष को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना है वहाँ माथुरजी की दृष्टि देश के नव-निर्माण पर ही है । श्रम के द्वारा देश की उन्नति करना आज की आवश्यकता है ।

नागरिक जीवन की अभिव्यक्ति

नागरिक जीवन आदमी को विद्या, नया संस्कार, काम, रोमांस, कुंठा, अवहेलना, ठोकरें, अपमान बहुत कुछ देता है । मामूली आदमी की तरह जीने का सुख शहर नहीं दे सकता । नगर और नागरिक सभ्यता के प्रति माथुर का दृष्टिकोण इस प्रकार का है । उनकी "अन्धेरी दुनिया" कविता शहर का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करनेवाली है ।

सांस्कृतिक चेतना

जिस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर समाज में नैतिक अधःपतन हुआ उसका प्रमाण माथुरजी की "तैंतीसवीं वर्षगांठ" कविता देती है । आदमी का सम्मान मिट गया है । मनुजता का गरिमा गान अब नहीं सुनाई पड़ता है । चारों ओर दैन्य, दुख, अन्याय और अत्याचार है । और -

आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार है
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता

मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बन्दूक का बारूद है[1]।

सत्य का मूल्य हट गया है। "सत्य की विजय होती है" यह परिभाषा आज निष्प्राण बन गयी है। आज लोग अच्छे तर्क से नहीं, निर्णीत तथ्य से संतुष्ट होते हैं। विवेक से नहीं, अन्धी श्रद्धा से नत होते हैं। न्याय से नहीं शक्ति से प्रसन्न होते हैं। उनकी "इतिहास: विकृत सत्य" कविता इस बात को स्पष्ट करनेवाली है। जैसे -

होती विजय सत्य की
यह पुरानी परिभाषा है
जो विजयी हो जाये
आज वही सत्य है[2]।

मनुष्य के दुहरे व्यक्तित्व - जो शहरी सभ्यता की देन है - को भी माथुरजी ने चित्रित किया है। जैसे -

मेरे दो मन
साथ-साथ रहते हैं
दोनों एक दूसरे के
घोर शत्रु है
दोनों मन
दो तरफ मुँह किये
एक साथ दो बात
बोलते ही रहते हैं[3]।

---

1. धूप के धान, पृ.107
2. जो बन्ध नहीं सका, पृ.17
3. वही, पृ.58

विवेच्य युग में माथुर जी के अतिरिक्त नरेश मेहता और भारत भूषण ने मनुष्य के दुहरे व्यक्तित्व को चित्रित किया है ।

भीड और अकेलेपन से आदमी व्यस्त है । मशीनी सभ्यता का चमत्कार चारों ओर दिखाई पडता है ।

मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही मशीनी घन घटा
आज जीवन के चुनौती मौत की
नीति कैदी है कुटिल काल धौत की[1] ।

युद्ध एवं शांति

वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी विभूति का पूरा इस्तेमाल मानवीय मंगल केलिये नहीं हो रहा है । विज्ञान की उन्नति ने आज सामूहिक विनाश का संकट उपस्थित कर दिया है । रासायनिक उत्पादनों से निकले खतरनाक वस्तुओं से अंतरिक्ष मलिन होता जा रहा है । माथुरजी ने इस स्थिति को इस प्रकार चित्रित किया है -

जब जगत को चाहिए फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जगाई जा रही[2] ।

---

1. धूप के धान, पृ.109
2. वही, पृ.107

शांति अब कहीं नहीं है । रॉकेट, जेट, उड़न बम आदि वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य को शांति नहीं दे सकती । यही कवि का विश्वास था ।

आस्था का स्वर

माथुरजी की कविताओं में जिन्दगी के प्रति, वर्तमान तथा भविष्य के प्रति आस्था का स्वर सुनाई पड़ता है । उनका विश्वास था कि मनुज का भविष्य कभी मिट न सका । अणु की अग्नि गरज में भी इस आस्था का स्वर उठता है कि जीवन में जीने का बल है और मनु की धरती अजर अमर है ।

अभावग्रस्त जीवन के प्रति निराश और विमुख न होकर भविष्य के वरण करने की प्रेरणा माथुर जी की कवितायें देती है । जैसे -

जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना मन । [1]

---

1. धूप के धान, पृ.118

निष्कर्ष

माथुरजी की कविताओं में स्वतंत्र भारत की सारी परिस्थितियों एवं समस्याओं का समावेश किया गया है । आर्थिक असमानता और वर्ग वैषम्य को मिटाने केलिये माथुर जी ने संघर्ष को आवश्यक बताया । लेकिन उन्होंने देश के नव निर्माण पर ज्यादा ध्यान दिया है । विश्व बन्धुत्व और मानवतावाद की भावना उनकी कविताओं में देखी जा सकती है । उनकी "अन्धेरी दुनिया", "तैंतीसवीं वर्षगाँठ", "चाँदनी बिखरी हुई", "इतिहास: विकृत सत्य", "बौनों की दुनिया", "सड़क से देश दर्शन", "इतिहास की पीडा", "अर्द्ध-आधुनिकों से बातचीत", "एक अधूरा आदमी", "ढाकवनी" आदि सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कवितायें हैं । अणु की अग्नि गरज में भी, माथुर की कविताओं में आस्था का स्वर सुनाई पड़ता है ।

कुँवरनारायण

समय की बदलती करवट को पहचानकर काव्य रचना करनेवाले कुँवरनारायण साहित्य को जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध मानने के पक्ष में है । साहित्यकार केलिये किसी वाद या सिद्धांत विशेष का संकुचित दायरा कुँवरनारायण को स्वीकार्य नहीं है । 'तीसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है - साहित्य जब सीधे जीवन से संपर्क छोड़कर वादग्रस्त होने लगता है, तभी उसमें वे तत्व उत्पन्न होते हैं जो उसके स्वाभाविक विकास में बाधक हों । जीवन से सम्पर्क का अर्थ केवल अनुभव मात्र नहीं, बल्कि वह अनुभूति और मनन शक्ति भी है जो अनुभव के प्रति तीव्र और विचारपूर्ण प्रतिक्रिया कर सके[1] ।" कुँवरनारायण केलिये कविता एक प्रौढ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है ।

'चक्रव्यूह' का कवि जीवन की घनीभूत भावनात्मक जटिलता के बीच उसकी विषमताओं का स्वयं अनुभव करते हुए एक सुस्थिर गम्भीर जीवन दृष्टि पाने केलिये ईमानदारी के साथ यत्नशील है[2] ।" वे जीवन के मूलभूत प्रश्नों से टकराने और उनका उत्तर खोजने केलिए व्यग्र है[3] ।

---

1. तीसरा सप्तक, पृ.147
2. देवीशंकर अवस्थी - विवेक के रंग, पृ.48
3. जगदीशगुप्त - कवितांतर, पृ.187

सामाजिक चेतना

कुँवरनारायण जिन्दगी को एक वरदान माननेवाला कवि है। इस महाजीवन समर में अंत तक लडने केलिये वे सन्नद्ध है। जीवन को जीवन से मिलकर ही बल मिलेगा - यही उनका विचार है। जैसे -

जीवन को जीवन से मिलकर ही बल मिलता,
औरों में जीकर ही अपना सम्बल मिलता[1]।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे समाज में स्वार्थ और छलकपट व्याप्त हुआ है। भौतिकता का आकर्षण प्रबल है। वर्तमान समाज की विद्रूपताओं की चर्चा करते हुए कवि ने इस प्रकार लिखा है -

कीच से तन-मन सरोवर के ढंके हैं,
प्यार पर कुछ बेतुके पहरे लगे हैं,
गाँठ जो प्रत्यक्ष दिखलाई न देती
किन्तु हमको चाहभर खुलने न देती
खोल दो यदि[2]।

वर्तमान में जीवित रहकर, वर्तमान को आत्मसात करते हुए भी कवि अतीत और भविष्य की ओर भी देखता है। उन्होंने समसामयिक जीवन की विडम्बनाओं को व्यंग्य रूप में भी चित्रित किया है। "गुडिया", "संपाति" जैसी कवितायें इसके उदाहरणस्वरूप कही जा सकती है। वर्तमान समाज के प्रति उनका व्यंग्य तीखा है। जैसे -

---

1. चक्रव्यूह, पृ.117
2. तीसरा सप्तक, पृ.159

आमाशय, / योनाशय / गर्भाशय
जिसकी जिन्दगी का यही आशय
यही इतना भोग्य,
कितना सुखी है वह
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य[1]।

"हम साथ हैं", "मैं मनुष्य मात्र"... जैसी कविताओं में कवि की सामाजिक चेतना का उत्तम दृष्टांत देखा जा सकता है। उनका विश्वास है कि व्यक्तित्व को दबाकर समाज को समृद्ध नहीं किया जा सकता। उन्होंने कला को 'जीवन का अनुकरण नहीं, जीवन का मर्म' माना है। इसलिये उन्होंने लिखा -

मैं तुम्हारे साथ हूँ
उस स्वप्न में -
    जो तुम्हारा है।
    हमारा है।
    सिर्फ मेरा नहीं[2]।

1· चक्रव्यूह, पृ·34
2· परिवेश हम तुम, पृ·86

श्रम का महत्व

अपनी मेहनत से धरती को स्वर्ग बनाने का सन्देश देते हुए कुँवरनारायण ने इस प्रकार लिखा है कि -

कर्मरत हो / स्वप्न मत देखो,
कहीं उन्माद रह जाये न भौरों का
निरर्थक गीत उद्दीपन ?[1]

सांस्कृतिक चेतना

कुँवरनारायण का कवि भारत के सुवर्ण अतीत से अटूट श्रद्धा और रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते आये हैं। वे खोये हुए मानव मूल्यों की तलाश में रहते हैं -

सत्य से कहीं अधिक स्वप्न वह गहरा था
प्राण जिन प्रपंचों में एक नींद ठहरा था।
xx xx xx
पहलदार सत्यों का छाया-तन इकहरा था,
जीवन का मूलमंत्र सपनों पर ठहरा था[2]।

---

1. चक्रव्यूह, पृ.31
2. तीसरा सप्तक, पृ.153

वर्तमान युग में मनुष्य जो अकेलापन का अनुभव करते हैं, कुँवरनारायण ने उसे चित्रित किया है । अभिमन्यु के समान हर आघात चुपचाप सहने केलिये आदमी मजबूर हो जाता है । जैसे -

मेरे ही लिये यह व्यूह घेरा
मुझे हर आघात सहना
गर्भ-निश्चित मैं नया अभिमन्यु, पैतृक-युद्ध[1] ।

वर्तमान यांत्रिक सभ्यता ने मनुष्य को मशीन का दास बना दिया है । इस बात पर विचार करते हुए कुँवरजी ने पूछा कि -

मशीनों को चलाता हुआ आदमी ?
या आदमी को चलाती हुई मशीनें[2] ?

धार्मिक चेतना

कुँवरनारायण ईश्वर को व्यक्ति का विकास मानते हैं । मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए कुँवर जी ने इस प्रकार लिखा है कि -

पूज्य मिट्टी है मगर पत्थर नहीं,
कर्म भोगी आदमी बंजर नहीं,
xx xx xx
विकसित व्यक्ति ही देवता है
इतर मानव जिसे केवल पूजता है[3] ।

1· चक्रव्यूह, पृ·
2· परिवेश हम तुम, पृ·79
3· चक्रव्यूह, पृ·122

उनके विचारानुसार देवता केवल मानव का विकसित व्यक्तित्व है । सही हुई पीड़ा ही अंत में देवत्व बन जाती है । हम देवालयों में ईश्वरों को इसलिये बिठाते हैं कि अपने ऊपर किसी अमरत्व की पूजा करने की इच्छा आदिम युग से लेकर मनुष्य में होती आयी है । कवि का यह दृष्टिकोण वर्तमान युग की देन है ।

निष्कर्ष

चारों ओर से महारथियों से घिरे हुए अभिमन्यु के समान सामाजिक विषमताओं से घिरे हुए स्वतंत्र भारत के मनुष्य के जीवन का यथार्थ चित्रण करने में कुंवरनारायण की कवितायें सफल हुई है । उनकी 'हम साथ हैं', 'मैं मनुष्य मात्र', 'क्रय-विक्रय', 'यह युग', 'समझौता' 'पहले भी आया हूँ', 'सृष्टा' जैसी कवितायें सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । वे कभी यथार्थ से पलायन करना नहीं चाहते । संघर्षरत जीवन से जूझने को वे तत्पर हैं । युवा पीढ़ी को रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से लड़ने की प्रेरणा उनकी कवितायें देती हैं ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर जीवन की गहनतम अनुभूतियों को अपनी कविताओं द्वारा अभिव्यक्त करने में सदा जागरूक थे । उनकी कविताओं में परिस्थितियों से गहरा सम्बन्ध स्थापित करनेवाली तीखी संवेदनशीलता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उनके तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । "काठ की घंटियाँ", "एक सूनी नाव" और "गर्म हवाएँ"। "कुआनो नदी" की कुछ कवितायें भी इस सीमा में आनेवाली है । वे "तीसरा सप्तक" के सातावाँ कवि भी रहे ।

सामाजिक चेतना

सर्वेश्वर ने वर्तमान समाज को एक मृत नगर की संज्ञा दी । इस मृत नगर में आस्था के नाम पर मूर्खता, विवेक के नाम पर कायरता और सफलता के नाम पर नीचता मुहर की तरह हर व्यक्ति पर लगी हुई है । यहाँ आदमी नहीं लाश होते हैं । एक लाश दूसरे लाश को इन्हीं साँचों में ढालती जाती है । आदमी लाचार है, लाचारी से घिरा हुआ है[1] ।

सर्वेश्वर को यह मालूम था कि सत्य की चोट बहुत गहरी होती है । इसलिये उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा सत्य की अभिव्यक्ति

---

1. एक सूनी नाव, पृ.38

करने का प्रयत्न किया है, चाहे वह मर्म को झकझोर उठे या आखें छलछला आयें। उन्होंने लिखा -

मैं सच्ची चोटें बांटता हूँ[1]
झूठी मुस्कानें नहीं बेचता।

उनकी कविताओं में जो दर्द है वह सामाजिक दर्द है।

लगा मुझको उठाकर कोई खड़ा कर गया
और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया[2]।

"व्यंग्य मत बोलो" उनकी सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कविता है जिसमें सर्वेश्वर ने वर्तमान समाज की सच्ची आलोचना की है। व्यंग्य न करने पर भी उन्होंने व्यंग्य किया है -

व्यंग्य मत बोलो
काटता है जूता तो क्या हुआ
पैर में न सही
सिर पर रख डालो
व्यंग्य मत बोलो[3]।

---

1. तीसरा सप्तक, पृ.218 - 219
2. वही, पृ.212
3. एक सूनी नाव, पृ.57

हमारे समाज में सब दिखावट है । आंतरिक सच्चाई किसी में नहीं है । सभी में एक प्रकार की बिकाऊ मनस्थिति है ।

भूख और गरीबी

पचास करोड आदमी खाली पेट बजाते, ठठरियाँ खडखडाते हर क्षण सामने से गुज़र जाते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद आज भी देश गरीब है । सर्वेश्वर स्वयं गरीबी का शिकार था । उन्होंने लिखा 'खेतों की मेडों, घर के पास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन के साथी रहे[1] । इसलिये गरीबों के प्रति उनके मन में सदा सहानुभूति रही । देश की दरिद्रता का चित्र उन्होंने इस प्रकार पेश किया है -

दे धोती ? / दिन-भर चरखा कात
साँझ क्यों रोती ? / सूत बेचकर
पी आये घर में ताडी / छीन लंगोटी
काटी बोटी बांटी / किस्मत ही निकली खोटी,
ऊपर नैन माँगते हैं / ये बाम्हन नौआ[2] ।

आज की परिस्थितियों में साधारण जन जीने केलिये तडप रहा है । देश की दरिद्रता का उद्घोष करनेवाले झूठे देश सेवकों पर कवि ने "क्यों न कल संसद भवन के सामने / हम प्रदर्शन करें कपडे उतारकर / देश की दरिद्रता पर[3]" कहकर व्यंग्य किया है ।

---

1. तीसरा सप्तक - वक्तव्य
2. तीसरा सप्तक - पृ.222
3. गर्म हवाएं. पृ.37

स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद भी हम आर्थिक सहायता केलिये अन्य देशों के पास जाने को मजबूर है । इस आर्थिक पराधीनता पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा -

देखो अब यहाँ
चूहों का राज है भाई ।
इधर-उधर से जो भी मिलता है
यहाँ लो आते हैं,
निरापद हो खाते हैं[1] ।

अपनी कविताओं द्वारा समाज में बदलाव लाना सर्वेश्वर का लक्ष्य था । इसकेलिये उन्होंने समाज को कर्मण्यता का सन्देश दिया । जैसे -

निश्चेष्ठ होकर बैठ रहना
यह महा दुष्कर्म है[2] ।

पूँजीवाद का विरोध

वर्ग वैषम्य को मिटाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना सर्वेश्वर का भी लक्ष्य था । वर्ग-भेद को मिटाने केलिए उन्होंने क्रांति को आवश्यक माना -

---

1. गर्म हवाएँ, पृ.32
2. एक सूनी नाव, पृ.42

मुर्दा हवा भी आँधी बनकर चलती रहती
और क्या शेष है जिसे तोड़ना चाहते हो
कहती रहती है[1]।

लेकिन हम इस सत्य से मुँह नहीं मोड सकेगा कि यह क्रांति यात्रा धीरे-धीरे शव यात्रा में बदल रही है। हमारी-तुम्हारी और सबकी चीखें इस कब्रिस्तान में गूँजेगी और दफन हो जाएगी। वह यह पहाड उखाड कर फेंक नहीं सकेगी जो सब-कुछ तहस-नहस कर दे। इसलिये कवि को साम्यवाद, "नंगे पैर, चीथडे पहने, हाथ में बन्दूक लिये, कँटीली झाडी पर पडी एक औरत की लाश" के समान दिखाई पडा। उनकी दृष्टि में "जिसके पैर में तुम जूते नहीं दे सकते उसके हाथ में तुम्हें बन्दूक देने का अधिकार भी नहीं है।" सबसे पहले देश की गरीबी हटाना आवश्यक है।

साम्प्रदायिकता का विरोध

जिन धर्म ग्रन्थों के जिल्द के भीतर नकली सफों में शैतान दिमागों के नक्शे और खूनी चालों की इबारतें हैं, जिनका अर्थ प्रार्थनाघरों में नहीं लडाई के मैदानों में खुलता है, उन धर्म ग्रन्थों का आदर कवि नहीं करते हैं। धर्म ग्रन्थ छूकर भी आदमी के हाथ जंगली जानवर के पंजे में बदल जाते हैं और ज़हरीले नाखून से वह इन्सान की सूरत नोचते हैं। ईश्वर का नाम लेते ही उनकी जीभ लपलपाने लगती है। वह स्त्री के उन स्तनों को चबाते हैं जिसने उसे पाला है।

---

1. गर्म हवाएं, पृ.16

मंत्रों और आयतों की जगह आज दहाड सुनाई देती है । पूजाघरों से आती सुगन्धी जलती लाशों की चिराईध में बदल जाती है । ऐसे समाज से इन दंगों को रोकने केलिये कवि ने अनुरोध किया है -

मैं हर क्षण उन सैनिकों को रोकता हूं
जो भूखे प्यासे पीछे से आती किसी आवाज़ की
ललकार पर
दूसरे के ईश्वर को मार कर
अपने ईश्वर को प्रतिष्ठित करने केलिए जूझ रहे हैं[1]।

राजनीतिक चेतना

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे मन में सुखद भविष्य की जो प्रतीक्षा थी वे आकाश में उड गयी है । हमारी वर्तमान राजनीति आज बहुत भ्रष्ट हो चुकी है । पार्टियों की संख्या प्रतिदिन बढती जा रही है ।

मील के पत्थरों की जगह
लगाते जाओ दलों की टोपियां[2] ।

कहकर कवि ने इस पर व्यंग्य किया है ।

नाम कमाना, संसद में एक सीट पाना आज के नेताओं का लक्ष्य बन गया है । कवि कहते हैं कि बस अड्डे पर चिल्लाते कुली और मंच पर भाषण देनेवाले नेता में कोई अंतर नहीं है ।

---

1. एक सूनी नाव, पृ.53
2. गर्म हवायें, पृ.20

सत्ताधारियों ने गांधीजी के आदर्शों को धूल में फेंका है । इस अवस्था को सूचित करने केलिये कवि ने कितना पैना व्यंग्य किया है, देखिये -

अच्छा हुआ / तुम चले गये
अन्यथा तुम्हारे तन का
ये जननायक क्या करता / पता नहीं[1] ।

सर्वेश्वर की दृष्टि में हमारे देश के सत्ताधारियों से कहीं अच्छे थे जो नरमुंडों की मालायें पहनकर अपने शौर्य पर इतराये वे लोग क्योंकि कम से कम बन्धुत्व और करुणा के गीत तो वे नहीं गाते थे[2] ।

"स्थिति यही है" "यह खिड़की", "बुद्धिजीवि" जैसी कवितायें वर्तमान राजनीति पर व्यंग्य करनेवाली कवितायें है । लोकतंत्र में जो विश्वास पहले थे, वह डिग गया -

लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाये[3] ।

1· गर्म हवाएं, पृ·30-31
2· वही, पृ·21
3· वही, पृ·15

आज के नेता समाजवाद और समानता के आकर्षक नारे लगाते हैं। लेकिन उनका एकमात्र लक्ष्य वोट पाना है। नेताओं के गिरगिटी स्वभाव पर व्यंग्य करते हुए सर्वेश्वर ने हमारी वर्तमान राजनीति के एक भ्रष्ट अंश का पर्दाफाश किया है। जैसे -

कुछ सीखो गिरगिट से
जैसी शाख वैसा रंग
जीने का यही है सही ढंग
अपना रंग दूसरों से अलग पड़ता है तो
उसे रगड़ धो लो[1]।

इन सबको देखकर कवि को ऐसा लगा कि "हमारी स्वतंत्रता वरदान नहीं, अभिशाप है। जो सुख बिना चाहे लाद दिया जाय वह संताप है[2]।"

सर्वेश्वर ने युग पुरुषों को श्रद्धांजलि अर्पित की है। इतिहास ने युग पुरुषों का यथाविधि सम्मान नहीं किया, इस पर कवि को दुःखी दिखाई पड़ता है।

<u>सांस्कृतिक चेतना</u>

वर्तमान समाज अपने सांस्कृतिक आदर्शों को भूला रहा है। चारों ओर भ्रष्टाचार बढ़ गया है। 'गोबरैले' के प्रतीक द्वारा सर्वेश्वर ने इस अवस्था को स्पष्ट कर दिया है -

---

1. एक सूनी नाव, पृ.57
2. वही, पृ.66

अच्छे से अच्छा शब्द फूलकर
गोबरैले में बदल जाता है
और बडे से बडे विचार को
गंदी गोली की तरह ढेलने लगता है
चाहे वह ईश्वर हो या लोकतंत्र[1] ।

हमारी सभ्यता बहुत चालाकी से आदिम गुफाओं में बन्द कर देती है । देश के नक्शे पर बदबूदार पेशाब फैली हुई है ।

वैवाहिक जीवन की पवित्रता नष्ट हो रही है । विवाह को आज बन्धन मानने लगे हैं । लोग विवाह के बन्धन से ज्यादा खुली हवा का प्रेम पसन्द करते हैं । वैवाहिक जीवन और स्वच्छन्द प्रेम के बीच तनाव की स्थिति है । यह पाश्चात्य देशों के अनुकरण का परिणाम है । विदेशीपन का विरोधी सर्वेश्वर ने इस भ्रम पर व्यंग्य किया है -

जिस्म तो अपना है
कपडे भी अपने हों
क्या ज़रूरी बात है ?
उद्देश्य तो केवल
चाहिए होना आधुनिक
देखिये लगता हूं न ठीक[2] ।

---

1. कुआनो नदी, पृ.51
2. गर्म हवायें, पृ.36

प्रगति के नाम पर विदेशों का केवल अनुकरण करना प्रगति नहीं है । स्वावलंबन बनना सच्ची प्रगति है ।

वर्तमान को प्राणवान बनाने केलिए हमको अपने अतीत की ओर देखना चाहिए । जीवन के खोये हुए मूल्यों को फिर ढूंढना चाहिए । क्योंकि हमारे समाज में आदमी यहाँ तक मनुष्यत्व हीन हो गया है कि यहाँ किसी का होना, या न होना कोई मतलब नहीं रखता है । "इस मृत नगर में" कविता में कवि ने इन्हीं विचारों को वाणी दी है ।[1]

शिक्षा पर विचार

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान का अर्जन करना नहीं, ऊँचे अंक प्राप्त करना है । इस कमी की ओर "पढ़ी लिखी मुर्गियाँ" कविता में सर्वेश्वर ने संकेत किया है -

जिसकी ऊँची कलगी सब उसके साथ लगीं,
उसकी ही चमक - दमक के है अनुराग रंगी,
अंडे कितने देंगी / जोड़ रहे बैठ मियाँ ।

अंग्रेज़ियत में डूबी हुई युवा पीढ़ी से कवि ने कहा कि एक गलत भाषा में गलत बयान देने से मर जाना बेहतर है[2] ।

---

1. एक सूनी नाव, पृ.58
2. गर्म हवाएँ, पृ.28

मानवतावाद

विज्ञान के चमत्कार से मानवता का ह्रास हो गया है । इस बात को ध्यान में रखकर कवि ने चेतावनी दी है कि -

इस गरीब धरती के
निहत्थे आदमियों की ओर से
कह दो,
जब सारे अस्त्र जवाब दे जायें
तब उस पत्थर से
वे इनसानियत का सिर फोड़ें
जिसे वे चाँद से लाये हैं[1] ।

धार्मिक चेतना

आज प्रार्थना घरों के घंटे तक जंगली जानवरों की तरह दुर्गन्ध सूँघते मिलते हैं । ईश्वर का नाम हर कमीने चेहरे पर मुखौटा बन जाता है । सर्वेश्वर मूर्ति पूजा के विरोधी थे -

मैं इसमें (पत्थर में)
ईश्वर को नहीं देखा है
और इससे वह कुछ नहीं माँगा है
जो शब्दों और अनुभवों से परे है[2] ।

---

1. कुआनो नदी, पृ.78
2. वही, पृ.80

कवि को विश्वास था कि वर्तमान युग का नेतृत्व मनुष्य ही कर सकता है । इसलिये उन्होंने किसी देवी देवता की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्त्व दिया ।

युद्ध-विरोधी स्वर

"पीस पैगोडा", "कलाकार और सिपाही", "आटे की चिड़िया" आदि कविताओं में युद्ध की विभीषिकाओं को उभारकर कवि ने युद्ध का विरोध किया है ।

आस्था का स्वर

सर्वेश्वर की कविताओं में भविष्य के प्रति आस्था का स्वर सुनाई पड़ता है ।

मिटने दो आंखों के आगे का अंधियारा
पथ पर पूरा-पूरा प्रकाश हो जाने दो[1] ।

निष्कर्ष

समसामयिक जीवन से चेतना ग्रहण करके सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सर्वेश्वर की कवितायें सफल हुई हैं । युग की सभी प्रकार की

---

1. तीसरा सप्तक, पृ.212

समस्याओं से वे सदा जागरूक रहे । व्यंग्य उनकी कविताओं की विशेषता है । यहाँ तक कि व्यंग्य न करने पर भी उन्होंने व्यंग्य किया है । "गोबरैले", "बासगाँव", "अभिशाप", "व्यंग्य मत बोलो", "यह खिड़की", "पोस्टर और आदमी", "स्थिति यही है" आदि सामाजिक राजनीतिक व्यंग्य कवितायें हैं । "इस अपरिचित नगर में", "इस मृत नगर में" जैसी कविताओं में कवि ने नगरजीवन का यथार्थ चित्र पेश किया है । उनकी धार्मिक चेतना उल्लेखनीय और युगानुकूल है जहाँ कवि किसी देवी देवता की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्व देते हैं ।

श्रीकांत वर्मा

सन् 1931 में स्वतंत्रता संग्राम के समय जन्म लेकर, सारी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को आँखों के सामने देखकर स्वतंत्रता की खुली हवा में जीवन बिताने वाला श्रीकांत वर्मा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख कवि है । उनकी कविताओं में वर्तमान समाज के प्रति खीझ है, चिढ़ है, क्षोभ और आक्रोश भी है । दुस्थिति उन्हें विवश कराती है । जैसे एक लेखक[1] ने लिखा श्रीकांत वर्मा की कवितायें अवश्य ही हमारे समय की वास्तविकता की क्रूर अभिव्यक्तियाँ है ।

उनके "माया दर्पण" "दिनारंभ" आदि काव्य संग्रहों की कविताओं का अध्ययन यहाँ किया गया है ।

सामाजिक चेतना

श्रीकांत वर्मा की कवितायें जीवन के संघर्षों से उपजी है । उनकी कविताओं में वर्तमान सामाजिक स्थिति कुछ इस प्रकार है कि -

---

1. परमानन्द श्रीवास्तव - दिशांतर 1981, पृ. 12

हर एक दूसरे से परिचित
होने की कोशिश में कुछ और
अपरिचित होकर
गुज़र रहे हैं एक दूसरे के
समीप से लगातार[1] ।

वर्माजी अपने को समाज का अभिन्न अंग मानता है । उन्होंने कहा "मैं हर एक नदी के साथ सो रहा हूं, मैं हर एक पहाड ढो रहा हूं, मैं सुखी हो रहा हूं, मैं दुखी हो रहा हूं, मैं सुखी-दुखी होकर दुखी सुखी हो रहा हूं[2] ।

कवि इस पृथ्वी भर में फूल नहीं आँसू चुनना चाहता है । यहाँ मनुष्य को हर वक्त निराशा का सामना करना पडता है । कवि की दृष्टि में यहाँ एक आदमी दूसरे का और दूसरा तीसरे का दहेज है । जिसकी वाणी में आज तेज है दस साल बाद वह इस तरह लौट आता है जैसे किसी वेश्या के कोठे से अपने को बुझा कर, गाकर, रिझाकर आता है[3] ।

समाज ऐसा बिगड गया है कि यहाँ किसी के न होने से कुछ भी नहीं होगा, कुछ भी नहीं हिलेगा[4] ।

---

1. मायादर्पण, पृ.76
2. वही, पृ.4
3. वही, पृ.104
4. वही, पृ.7

नगर जीवन का चित्रण

विवेच्य युगीन कवियों में श्रीकांत वर्मा की कविताओं में नगर उसके सम्पूर्ण रूप में मौजूद है । उनकी कविताओं में नगर एक पूरक के रूप में अंकित किया गया है । "माया दर्पण", "दिनारंभ", "बुखार", "अंतिम वक्तव्य" जैसी कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

वर्माजी की दृष्टि में शहर निर्मम और निर्विकार है, निशब्द निश्चेष्ट छाया के समान है । यहाँ एक दूसरे की आँखों में शंका और अविश्वास ढूंढते हैं । आदमी चक्कर खाकर सहसा दुनिया के किसी एक कोने में गिरता है और दूसरे कोने से लड़ाकर उभरता है । श्रीकांत वर्मा ने नगर जीवन का चित्रण इस प्रकार किया है -

शहर के बीच से नदी गुजरती है
शहर के बीच से सैनिक गुजरते हैं
शहर के बीच से बन्दी गुजरता है
शहर वही है जो पहले था -
जानता है / जुल्म[1] ।
xx x xx
शहरों के छतों में / च - ल - च - ल
हुई / मक्खियाँ / बैठ गयी / मं - ड - रा
अपनी-अपनी मंज़ों पर[2] ।

---

1. दिनारंभ, पृ.62
2. वही, पृ.33

जैसे एक लेखक ने लिखा आँखें तरेरती हुई प्रश्नवाचकता और हर चीज से उसका अर्थ पूछती हुई जागरूकता श्रीकांत वर्मा की कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है[1]।

नागरिक जीवन के हलचल के बीच भी आदमी अकेलापन महसूस करता है। जीवन यहाँ एक अंतहीन बहस होता है।

बेकारी की समस्या

शिक्षित बेकारों की समस्या वर्तमान समाज की एक ज्वलंत समस्या है। इस की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा -

मैं बार-बार / नौकरी के दफ्तर
और डाकघर तक / जाकर लौट / आता हूँ
अर्जी और अपना प्रेमपत्र लिये
अपने जमाने में / कितना बडा फासला है।
एक कदम के बाद / दूसरे उठाने में[2]।

राजनीतिक चेतना

इश्तहार छपानेवाले, क्लब का सदस्य, सभी परिचित-अपरिचित को फोन करनेवाले तमाम मूर्ख स्त्रियों से हँस हँसकर बातें करनेवाले और झुक झुक नमस्कार करनेवाले, दूसरों के बच्चों से झूठ-मूठ प्यार करनेवाले,

---

1. शेरजंग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ.373
2. मायादर्पण, पृ.104

अपने वर्षगाँठ पर समारोह संघटित करनेवाले झूठे नेताओं की नकली मुखौटों को उखाड़कर कवि ने हमारे सामने रख दिया है । इन पर कवि का व्यंग्य देखिये -

और क्या मैं फिर
शासन केलिए
एक शासक का चेहरा
(जिसे उसने किसी और से लिया था)
जाकर उधार लाऊँगा ?[1]

राजनीतिज्ञों की आत्मायें बिल्लियों की तरह मरी पड़ी है । लोकतंत्र पर जनता का विश्वास खो गया है -

कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर
फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)
कुछ लोग सारा समय
कसमें खायेंगे लोकतंत्र की
मुझसे नहीं होगा
जो मुझसे नहीं हुआ
वह मेरा संसार नहीं है ।[2]

---

1. माया दर्पण, पृ.11
2. वही, पृ.105

आधुनिक युग में देश प्रेम सिर्फ "घर का किराया, बिजली का बिल और बीमे की किश्तें चुकाना"बन गया है । भाषणों की झडी लगाना नेताओं का स्वभाव बन गया है । किंतु मौका पड़ते ही वे अपना उत्तर-दायित्व किसी और को सौंप देने का प्रयत्न करते हैं ।

सांस्कृतिक चेतना

कवि के विचारानुसार भारत की नहीं सारे संसार की सभ्यतायें दिन गिन रही है ।

प्रभु के चरण चिह्नों पर
चली जा रही है
दो बूढी औरतें
रसातल की ओर ।[1]

सभ्यता और संस्कृति प्राचीन मूल्यों का ह्रास हो रहा है । रामायण की पोथी पर आज धूल जमी हुई है । आज हम वे सब भूल चुके हैं जिनका गर्व हमें प्रेरणा देते थे । युवा पीढि के सामने परम्परा एक प्रश्न-चिह्न जैसी पड़ी है ।

युद्ध एवं शांति

आज विश्व में सब युद्ध की तैयारियों में व्यस्त रहते हैं । यह पृथ्वी अणु परीक्षणों आदि से विषाक्त हो रहे हैं । समाज के-मानवता के अंतःकरण में कवि पूछते हैं कि -

---

1. माया दर्पण, पृ.55

वसुन्धरा ! सूजा हुआ है क्यों
उदर ? / नसें क्यों / विषाक्त है ?
सांसों में / सीले - जंगल जैसी
यह कैसी वास है ?[1]

शांति सम्मेलनों की निरर्थकता पर व्यंग्य करते हुए श्रीकांत वर्मा ने लिखा कि "युद्ध के बाद एक एक शव के सिरहाने पर बैठी है शांति । सभी शांति प्रेमी थे[2] ।"

<u>आस्था का स्वर</u>

वर्तमान युग की सारी विसंगतियों के बीच भी भविष्य के प्रति कवि आस्था रखते हैं -

हर दिवस मौसम बदलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं
हर घड़ी दुनिया बदलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं[3] ।

---

1. मायादर्पण, पृ.42-43
2. वही, पृ.29
3. वही, पृ.39

निष्कर्ष

श्रीकांत वर्मा की कवितायें युवा पीढी का प्रतिनिधित्व करती है । युवा पीढी का असंतोष, मानसिक संघर्ष, अकेलापन, जीवन की यांत्रिकता आदि उनकी कविताओं में मिलेगा । उनकी कविताओं में नगर पूर्ण रूप में मौजूद है । विवेच्य युगीन कवियों में श्रीकांत वर्मा की कविताओं में शहरी जीवन का इतना खुला और यथार्थ चित्रण मिलता है । "बुझा शहर", "दिनारंभ", "माँ की आँखें" "और क्या बचा है", "अंतिम वक्तव्य" आदि कवितायें इस कोटी की है ।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं की दूसरी विशेषता उनका व्यंग्य है । राजनीति पर प्रहार करने केलिये उन्होंने व्यंग्य का प्रयोग किया है । "समाधि लेख", "एक दिन", "पटकथा" जैसी कविताओं में उन्होंने जिस व्यंग्य - का प्रयोग किया उसी प्रकार का व्यंग्य भारत भूषण और सर्वेश्वर की कुछ कविताओं में भी मिलेगा ।

****

अध्याय - पाँच

स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख प्रबन्ध काव्यों में सामाजिक चेतना

प्रबन्ध काव्य

सामान्य परिचय

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को श्रव्य और दृश्य - दो भेदों में विभक्त किया है । श्रव्य काव्य श्रवण मात्र से श्रोताओं को आनन्द प्रदान करता है । दृश्य काव्य, रंगमंच पर दर्शन द्वारा आनन्द प्रदान करता है ।

श्रव्य काव्य के गद्य, पद्य और चम्पू - तीन भेद किये गये हैं । गद्य छन्द रहित रचना होता है । पद्य छन्द युक्त रचना है । चम्पू गद्य और पद्यमयी रचना है ।

बन्ध की दृष्टि से वामन ने पद्य के प्रबन्ध और मुक्तक दो भेद किये हैं[1]। जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति प्रबन्ध काव्य में होती है। इसका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक होता है जबकि मुक्तक काव्य में जीवन के किसी एक अंश का चित्रण होता है। इसमें कवि की किसी एक मन:स्थिति की अभिव्यक्ति होती है। इसका विभाजन पाठ्य और गेय रूप में किया गया है।

प्रबन्धकाव्य के दो भेद होते हैं - महाकाव्य और खण्डकाव्य। आचार्य विश्वनाथ ने प्रबन्धकाव्य के तीन भेद माने हैं - महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य[2]। लेकिन उपर्युक्त दो भेद ही अधिक प्रचलित है।

महाकाव्य : परिभाषा

जीवन मूल्यों के व्यापक चित्रांकन करने की क्षमता महाकाव्य में होती है। "महाकाव्य सच्चे अर्थों में जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास है[3]।"

---

1. वामन - काव्यालंकार, पृ.59
   {बनवारीलाल शर्मा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य, पृ.23-24 में उद्धृत}
2. आचार्य विश्वनाथ - साहित्य दर्पण, पृ.315-329
   {स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य - बनवारीलाल शर्मा, पृ.35 में उद्धृत}
3. देवीप्रसाद गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, पृ.79

गुलाबराय के मतानुसार महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है जिसमें अपेक्षाकृत बडे आकार में, जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा, जातीय भावनाओं आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है[1]।" महाकाव्य राष्ट्रीय जीवन और भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी है।

कुछ विद्वानों ने महाकाव्य को कथा काव्य माना है[2]। साहित्य विश्वकोश में भी यही परिभाषा है[3]।

महाकाव्य के लक्षण

पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषियों ने महाकाव्य को काव्य का महत्वपूर्ण रूप माना है। भामह, दण्डी, विश्वनाथ आदि संस्कृत के आचार्य एवं अरस्तु, एबरक्राम्बी, वाल्टर पेटर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण किया है।

महाकाव्य के कथानक को लोक विश्रुत या ऐतिहासिक होना चाहिए। व्यापक विषयवस्तु और महान कार्य महाकाव्य का महत्वपूर्ण अंग है। महाकाव्य के नायक को उदात्त गुणों से संपन्न, महान, धीर, आदर्श और चरित्रवान होना चाहिए। श्रृंगार, वीर या शांत रस में से एक की मुख्यता महाकाव्य में अनिवार्य है। महाकाव्य की कथा सर्गों में विभक्त होती है। उसमें गम्भीर अभिव्यंजना शैली, मानवतावादी जीवन-दृष्टि आदि भी स्वीकार्य है। उसमें चतुर्वर्ग में से किसी एक की प्राप्ति का लक्ष्य हो।

---

1. गुलाबराय - काव्य के रूप, पृ.89

2. C.M.Bowra - From virgil to milton, p.1

हिन्दी के आचार्यों ने भी महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों को स्वीकार किया है[1]।

आधुनिक युग में महाकाव्य, युग जीवन, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का वाहक है। "महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार दर्पण होता है, जिसमें अपने मुख को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है[2]।"

खण्डकाव्य

प्रबन्धकाव्य का दूसरा भेद खण्डकाव्य है। इसमें जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का वर्णन होता है। "खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च:"[3] कहकर आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य की रूप कल्पना की है। हिन्दी के विद्वानों ने भी इसको स्वीकार किया है। "महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का क्षेत्र सीमित होता है। उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती है[4]।" उसकी रचना केलिये कोई एक घटना पर्याप्त होती है। यह खण्डजीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत हो[5]। खण्डकाव्य में प्रासंगिक कथाओं का अभाव होता है।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली - भूमिका
   नन्ददुलारे वाजपेयी - हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, पृ. 44-45
2. पंत - तारकवध - प्राक्कथन
3. आचार्य विश्वनाथ - साहित्य दर्पण 6, पृ. 329
   (बनवारीलाल शर्मा - स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य, पृ. 51 में उद्धृत)
4. डॉ. गुलाबराय - काव्य के रूप, पृ. 111
5. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - वाङ्मय विमर्श, पृ. 41

स्वातंत्र्योत्तर प्रबन्धकाव्य : विशेषतायें

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लिखे गये प्रबन्धकाव्यों को देखकर यह निर्णय करना कठिन है कि वह महाकाव्य है या खण्डकाव्य। क्योंकि इस युग में महाकाव्य सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन हो रहा है। अब उपेक्षित और नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति[1] महाकाव्य का नायक बन सकता है। आज के महाकाव्यों के अधिकांश पात्र देवी गुणों से सम्पन्न नहीं, वे मानव है। "आधुनिक युग में ऐसे पात्रों के चरित्रांकन में हम परिवर्तित विद्रोही स्वर के दर्शन करते हैं जो प्राचीन परम्परा के अनुसार निन्दित, गर्हित और तामस गुणों से युक्त है, किन्तु नवीन दृष्टिकोण ने उनके चरित्रांकन को नवीन रेखायें प्रदान कर उन्हें नवीन रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है[2]।"

राम मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श पुरुष है, लेकिन उनके चरित्र में मौलिक उद्भावनायें भी की गयी है। स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में राम आदर्श मानव का प्रतीक है। सीता आदर्श नारी है; सच्ची मानवतावादी विचारों की पोषिका है। कैकेयी के चरित्र के कलंक को दूर करने का प्रयत्न हुआ है। रावण के चरित्र को ऊपर उठा दिया है। कृष्ण को कुशल राजनीतिज्ञ और लोक रक्षक का रूप दिया है। कर्ण, वर्ण भेद से पीड़ित समाज का प्रतिनिधि है। एकलव्य दलित मानवता का प्रतीक है।

---

1 एकलव्य, कर्ण, कैकेयी आदि

2. डॉ. बनवारीलाल शर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य, पृ.174

लोक विश्रुत कथानक, उदात्त चरित्र सृष्टि, वैविध्यपूर्ण छन्द, भाषा-सौष्टव, शैलीगत गरिमा आदि प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में युग की प्रेरणा और प्रवृत्तियाँ नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, विश्वबन्धुत्व की भावना, सामाजिक चेतना का प्रतिफलन और युगीन समस्याओं के समाधान खोजने की चेष्टा देखी जा सकती है । स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यकारों ने इतिहास, पुराण और समकालीन जीवन से इतिवृत्त ग्रहण किया है । भारतीय जीवन चेतना और संस्कृति के अपूर्व तत्व पुराणों में विद्यमान हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लिखे गये प्राय: सभी प्रबन्धकाव्य पौराणिक पुराख्यानों पर आधारित है । लेकिन इनमें कवियों ने अपनी मौलिक उद्भावनायें भी की है । इनमें समकालीन यथार्थ का चित्रण किया गया है । "इनमें परंपरागत एवं युग सापेक्ष मूल्य, आदर्शवादी, यथार्थवादी, विज्ञानयुग के बुद्धिवादी, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व संदर्भित मूल्यों की प्रस्थापना की गयी है[1] ।

आलोच्य युग के महाकाव्यकार का दायित्व युग जीवन की चेतना को आत्मसात् कर जीवन्त कथानक, महत्वपूर्ण नायक, गरिमामयी उदात्त शैली और गम्भीर अभिव्यंजना शैली के माध्यम से महदुद्देश्य की सिद्धि है[2] ।

1· डॉ· उमाकांत गुप्त - नयी कविता के प्रबन्धकाव्य शिल्प और जीवन दर्शन, पृ·298

2· देवी प्रसाद गुप्त - हिन्दी महाकाव्य सिद्धांत और मूल्यांकन, पृ·392

स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विघटन, वैयक्तिक विकृतियों, विसंगतियों और कुंठाओं को पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । जैसे माथुरजी ने लिखा पौराणिक प्रतीकों के रूप में ही सापेक्ष मानवीय संदर्भों में उस व्यंग्य विपर्यय की प्रभावशाली सृष्टि हो सकती है, जो मूल्यों के स्तर पर मानवीय अनुभूतियों और जीवन सत्यों की टकराहट का आवश्यक परिणाम है ।[1]"

सांस्कृतिक जागरण में भी प्राचीन इतिवृत्त सहायक है । कनुप्रिया, अन्धा युग, संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी, उर्वशी, अंगराज आदि महाकाव्यों में जिन समस्याओं का अवतरण किया गया है, वे सार्वभौम और विश्व जनीन है । इनमें कवियों ने पौराणिक आख्यानों और पात्रों को नयी अर्थवत्ता देने का प्रयास किया है । इनमें युद्ध और प्रेम की समस्याओं को नयी भावभूमि पर प्रस्तुत किया गया है ।

उर्वशीकार की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण है कि स्वातंत्र्योत्तर प्रबन्ध काव्य पौराणिक विषयों के द्वारा नया सन्देश देते हैं ।

कहने भर को प्राचीन कथा,
पर इस कविता की मर्म व्यथा,
आज के विलोल हृदय की है;
सब की सब इस समय की है ।
जब भी अतीत में जाता हूँ,
मुरदों को नहीं जिलाता हूँ ।

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - नई कविता - संयुक्तांक 5 तथा 6, पृ.5।

पीछे हटकर फेंकता बाण,
जिससे कंपित हो वर्तमान ।
खण्डहर हो, हो भग्नावशेष,
पर कहीं बचा हो स्नेह शेष,
तो जा उसको ले आता हूँ,
निज युग का दिया जलाता हूँ।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ महाकाव्य ऐतिहासिक प्रसंगों के आधार पर लिखे गए हैं । "अशोक" "गोरा-वध", "तप्तगृह" आदि इस कोटि में आते हैं । इन महाकाव्यों की रचना का मूल उद्देश्य एक आदर्श एवं सम्पूर्ण देश की स्थापना करने केलिये जनता को प्रेरणा देना है । गाँधी, नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, चन्द्रशेखर आज़ाद प्रभृति राष्ट्रनायकों को नायक बनाकर कई महाकाव्य लिखे गये । जैसे "जननायक", "मानवेन्द्र" ।

द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषणता और मानवता का पतन नये कवि को विह्वल कर दिया । इसलिये कवियों ने किसी न किसी प्रसंग से युद्ध की समस्या को उठाकर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । "अन्धा युग", संशय की एक रात", "एक कंठ विषपायी" आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है । आलोच्य युग के श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्यों पर आगे के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है ।

---

1. मृत्ति तिलक - पृ.48-49
(उर्वशी काव्य की समाप्ति "कविता जो उर्वशी के पूर्ण होने पर पंत को लिखा गया पत्र)

1. मेधावी - डॉ॰ रांगेय राघव

चौदह सर्गों में विभक्त एक चिन्तन प्रधान महाकाव्य है मेधावी । इसमें रांगेय राघव ने मानव वंश के विकास की गाथा अंकित की है । मानवता का उद्भव, विभिन्न युगों में उसका विकास और मंगलमय भविष्य की कल्पना इस महाकाव्य की विषय वस्तु है ।

आदिम समाज का रूप, नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण, विधवा का दयनीय जीवन, शोषण, पूंजीवाद के अन्त होने की अभिलाषा, विश्व शान्ति की कल्पना आदि विषयों पर आलोच्य प्रबन्ध काव्य में विचार किया गया है ।

आदिम युग में साम्यवादी समाज था । इसका वर्णन प्रबन्ध काव्यकार ने इस प्रकार किया है -

आदि पुरुष जो सरल चित्त था, द्वेष क्रोध से कहीं दूर
उसका सामूहिक रूप था, साम्य-शक्ति का प्रथम रूप था ।
सब उपजाते, सब ही खाते, गीत गुंजाते, नर्तन करते
नर नारी के संग प्रेम की, मुक्त धार में हंस-हंस बहता ।

मेधावी, पृ॰185

उस समय नारी को भूमि माता की छाया मानी जाती थी। वह जननी और आदि चेतना के रूप में स्वीकृत थी। लेकिन बाद में नारी नर की भोग्या मात्र बन गयी। नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण उदार था -

एक ओर जननी कह छलता, उधर बना देता वेश्या
बंदिनी के आँसू ने बहकर, खींचा था सतीत्व का घेरा[1]।

पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से हमारे समाज में कुछ बुराइयों का प्रवेश हुआ जो नारी केलिये कलंक है। युग-युगों से नर के अत्याचारों से पीड़ित नारी का चित्र कवि ने खींचा है। विधवा के दयनीय जीवन और बहुविवाह पर उन्होंने समाज का ध्यान आकर्षित किया है -

एक ओर विधवा का सूना
जीवनतम की रेखा बन रहा
बहु विवाह आर्थिक निर्भरता
स्त्री का है स्वातंत्र्य हन रहा।
कितनी कारा, कितनी छलना,
नारी तो अब भी दासी है[2]।

विज्ञान की उन्नति से आधुनिक मनुष्य पृथ्वी पर ही स्वर्ग और नरक की स्थिति मानते हैं। स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने इस पृथ्वी में ही स्वर्ग और नरक माना है। शून्य में ईश्वर की खोज करना व्यर्थ है।

---

1. मेधावी, पृ.189
2. वही, पृ.243

इसी जग में हो जाये स्वर्ग
इसी जग में मानव हो देव[1] ।

हमारे समाज में मजदूर और किसान अब भी शोषण का शिकार बन रहे हैं । दूसरी ओर पूँजीपति है -

अरे दासों से श्रृंखलाबद्ध चले जाते पिसते मज़दूर
पसलियों पर खाकर भी चोट, हाँफते श्रम में निरत किसान ।
xx xx xx
इधर मरते हैं भूखे किन्तु, उधर सागर में फसलें डाल
नफों का करते हैं उद्धार, अरे ओ महा पिशाच[2] ।

इन पंक्तियों में रांगेय राघव ने वर्ग वैषम्य को चित्रित किया है । पृथ्वी को स्वर्ग बनाने केलिये, नई दुनिया बसाने केलिए जनशक्ति को जगाने का स्तुत्य प्रयास कवि ने किया है ।

भारत विश्व का मार्गदीप, शांति के सन्देश वाहक है । विश्वशांति हमारा लक्ष्य है ।

तब भी हमीं विश्व पथ दर्शक, तोड़ेंगे कलुषों की कारा ।
हमने मूर्त बने अब तक भी जग भर को आलोक दिया है
अरे हमारे ज्ञान अन्न से, मानव अब तक पला जिया है
हम लाखों वर्षों के पंथी, कभी न जीत सका अँधियारा
अपराजित है राष्ट्र हमारा[3] ।

---

1. मेधावी, पृ.247
2. वही, पृ.250-251
3. वही, पृ.264

हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा । संघर्ष होगा और पूँजीवाद का अंत होगा । यही कवि की आशा थी । उन्होंने "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धांत को भी स्वीकार किया है ।

एक दिन मानव का श्रम श्वास
मिटा देगा यह पाप महान
विश्व होगा केवल सुख-स्थान
एक घर सी होगी यह भूमि
और भौतिक के दुख कर चूर
बनायें मानव वह पन्थ
जहाँ शोषण का रहे न नाम
जहाँ का सत्य वास्तविक सत्य
जहाँ स्वातंत्र्य, साम्य, सुख-शांति
करेंगी निशि दिन नृत्य ।[1]

स्वर्ग और नरक की कल्पना रांगेय राघव की अपनी मौलिक कल्पना है । इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने केलिये जनशक्ति को जागृत कराने का महत्वपूर्ण कार्य इस प्रबन्धकाव्य के द्वारा कवि ने किया है ।

2. जननायक - रघुवीर शरण मित्र

31 सर्गों में विभाजित प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में युग पुरुष गांधीजी का जीवन चरित्र प्रस्तुत किया गया है । इसमें वर्णित समस्त घटनायें गांधीजी की आत्मकथा से ली गई है । इतना ही नहीं जैसे इसकी भूमिका में डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, यह भारतवर्ष की जनता के सबसे

---

1. मेधावी, पृ.265

महान नेता का केवल जीवन ही नहीं बल्कि पिछले पचास-साठ वर्षों का जीवन्त इतिहास भी है । .... इन पंक्तियों में भारतवर्ष के अतीत, वर्तमान और भविष्य बोल रहे हैं[1] ।

"जननायक" में स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों और शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है । समसामयिक राजनीति का सजीव चित्रण भी इसमें मिलता है ।

गाँधीजी ने आफ्रीकी जनमानस में गोरी सरकार के वर्णभेद के विरुद्ध जिस चेतना को जगाया था उसका चित्रण मिश्रजी ने इस प्रकार किया है ।

आफ्रीका में छिडी लड़ाई, गाँधीजी ने शंख बजाया
सत्य, अहिंसा, आत्मशक्ति से, शांतिपूर्ण संग्राम रचाया[2] ।

उस समय जाति-वर्ग भेद से भारतीय समाज पीड़ित था । गाँधीजी धर्म के सच्चे उपदेष्टा थे । उन्होंने समाज को यह शिक्षा दी कि वास्तव में सब धर्मों का मूल एक है - ईश्वर की उपासना करना:-

यह हिन्दू, वह मुसलमान क्या ! कौन पारसी ! क्या ईसाई !
मानव मानव सभी एक हैं सब आपस में भाई-भाई[3] ।

जननायक - भूमिका बधाई, पृ.17-20

2. वही, पृ.109

3. वही, पृ.98

छुआछूत की स्याही को धो डालने की आवश्यकता पर नागपूर कांग्रेस में गांधीजी ने ज़ोर दिया । इस बात का स्मरण करते हुए मिश्रजी ने लिखा -

करो अच्छूत्तोद्धार भाइयो । कहा नागपूर कांग्रेस में
एक रहो सब, एक रहो सब, बनी रहे एकता देश में
खादी के तारों को जोडो, धो दो छुआछूत की स्याही
कैसा हिन्दु मुसलमान क्या, हिन्दु-मुस्लिम हैं हमराही[1] ।

कवि की स्वातंत्र्य भावना स्पष्ट है जहाँ उन्होंने लिखा "स्वतंत्रता हमारा अधिकार है । हम स्वतंत्र ही जियें, अन्यथा हमारा जीना व्यर्थ है[2] ।"

मिश्रजी को हम सत्य और अहिंसा के समर्थक देख सकते हैं । "सत्य अहिंसा का बल लेकर, सोया भारत जाग उठा है ।"

बंगाल में जो भयानक दुर्भिक्ष हुआ उसका वर्णन भी इस महाकाव्य में है । भूख और अकाल से कलकत्ता श्मशान बन गया । कलकत्ता की गली-गली में लाशों को कुत्ते खाते थे । ठठरी पन्जर कंकालों पर कौए चोंच चला जाते थे । कुत्ते मुर्दों को खाते थे । नारी रोटी केलिये अपना तन मन बेचती थी[3] ।

---

1. जननायक, पृ.213
2. वही, पृ.246
3. वही, पृ.392

इसके साथ ही देश भर में जो साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे, उसको मिश्रजी ने बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है । जब देश-भर की जनता स्वतंत्रता की खुशी मना रही थी तो जननायक गाँवों और नगरों में भ्रमण करते हुए साम्प्रदायिकता के कलंक को दूर करने का प्रयास कर रहे थे । "जितना जहर फैलता था सब युग के शिव पल में पी जाते ।"[1] युग का शिव गाँधीजी है ।

बापू की हत्या पर समस्त भारतवर्ष किस प्रकार दुख सिन्धु में डूब गयी उसका वर्णन मिश्रजी ने इस प्रकार किया है -

जिसने खबर सुनी मरने की, वही सुन्न सा खड़ा रह गया ।
जिसने मरण सुना बापू का, शोक सिन्धु में वही बह गया ।
xx xx xx
बच्चे रोये, बूढ़े रोये, दुनिया का हर प्राणी रोया
ऐसा लगता था दुनिया में, हर मनुष्य मरघट में सोया ।।
जनता का विलाप मत पूछो, मानो हुई बाल विधवा वह ।
मानों जल सूखा सरिता का, मछली तड़प रही थी रह-रह ।[2]

प्रस्तुत महाकाव्य में मिश्रजी ने यह स्थापित किया है कि गाँधीजी सच्चे अर्थ में जननायक थे -

गाँधीजी वह संगम है जिसमें, आकर मिली करोड़ों धारा ।
गाँधी वह धरती जिस पर, चलता यह पीड़ित जग सारा ।।

---

1. जननायक, पृ.467
2. वही, पृ.505-506

गाँधी वह सागर जिसमें, रत्नों का भण्डार भरा है ।
गाँधी वह गंगा है जिसमें, हर आँसू ने प्यार भरा है[1] ।

मिश्रजी ने इतिहास पुरुष गाँधीजी को अपने महाकाव्य का नायक बनाकर नायक संबन्धी प्राचीन मान्यताओं को बदल दिया है । गाँधीजी के जीवन की प्रत्येक घटना को अंकित करने के साथ कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य में भारत के तत्कालीन इतिहास को भी चित्रित किया है । साम्प्रदायिकता, छुआछूत, बंगाल का अकाल आदि सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते समय मिश्र जी की मौलिक प्रतिभा देखी जा सकती है ।

3· अंगराज : आनन्दकुमार

महाभारत की कथा पर आधारित इस महाकाव्य में कर्ण के जीवन का समग्र चित्रण किया गया है । पच्चीस सर्गों के इस महाकाव्य में कवि ने कर्ण के जन्म से लेकर युद्ध क्षेत्र में उसकी वीरगति प्राप्त करने तक के घटनाक्रम को कुछ परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत किया है ।

कवि की नवीन दार्शनिक एवं वैचारिक दृष्टि का परिचय भी इसमें मिलता है । साथ ही कर्ण के चरित्रोत्कर्ष भी किया गया है । इसकी संपूर्ण कथा पाण्डवों के विरोध एवं घृणा की भित्ति पर टिकी है । इसमें कृष्ण निर्बलों के सहायक तथा देवसत्ता के संस्थापक के रूप में आये हैं[2] कर्ण मानवतावादी भावना से प्रेरित है -

---

1· जननायक, पृ·138

2· अंगराज, पृ·256

करके दूषित शर का प्रयोग,[1]
हम नहीं चाहते विषय भोग ।

कहकर कवि ने कर्ण के उदात्त चरित्र को चित्रित किया है ।

"छली भीम को देख दुष्क्रिया कुप्य हुए बलराम"[2] कहकर अंगराजकार ने भीम को छली और दुष्कर्मी कहा । उनकी दृष्टि में धृतराष्ट्र पुत्र-मोहान्ध[3] और अर्जुन युद्ध नीति की उपेक्षा करनेवाला है[4] । दुर्योधन निष्कलंक है । "पंचभोगिनी और कुल-मर्यादा-भ्रष्ट"[5] द्रौपदी अनार्य मूर्ति है ।

अङ्गराज का कर्ण उदार, शूर-वीर, मित्र प्रेमी, मातृ भक्त और स्वाभिमानी है । राज्याभिषेक के पश्चात् कर्ण सूत-सदन पहुँचा तो राधा ने नरनाथ और प्रजा प्रभाकर कहकर उसका अभिनन्दन किया । लेकिन कर्ण ने अपने किरीट को मातृपद में रखकर कहा -

और कहा जननी, हम तो वत्स वही हैं ।
तव समीप हम अंग-प्रधान कदापि नहीं हैं[6] ।

---

1. अंगराज, पृ.256
2. वही, पृ.286
3. वही, पृ.15
4. वही पृ.216
5. वही, पृ.78
6. वही, पृ.35

दीन दलित जातियों में आत्मविश्वास जगाना कवि का लक्ष्य था । इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इस महाकाव्य की भूमिका में आनन्दकुमार ने इस प्रकार लिखा है - "शताब्दियों की पद-पद-दलित जनता में जो आत्मतुच्छता, चारित्रिक दुर्बलता और भीरुता तथा अकर्मण्यता आ गई है, उसका निराकरण करना आवश्यक है । आजकल अपनी हीन दशा पर बैठकर रोने की प्रेरणा देनेवाला साहित्य सामयिक नहीं कहा जायेगा । सामयिक वह होगा जो जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करे, असंयत को संयत करे, भूले भटके को रास्ते पर लाये[1] ।" इस उद्देश्य से प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने मौलिक उद्भावनायें भी की है । इसकी कथा सम्पदा महाभारत की है, काव्य सम्पदा कवि की अपनी है । वृक्ष व्यासजी का है लतायें मेरी है, मूल उनके है, फल-फूल मेरे हैं, शाखायें प्राचीन है, लेकिन पल्लव दल नवीन है[2] ।"

यह स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद लिखा गया प्रबन्धकाव्य है । जनता के हृदय से दासता की मनोवृत्ति को नष्ट करके स्वतंत्रता की भावना भरना आवश्यक था । इसकेलिये शासन को सुव्यवस्थित करना था । प्रस्तुत महाकाव्य का एक उद्देश्य यह भी था । जैसे -

नष्ट दासता-मनोवृत्ति करके जनता की ।
एक एक में भरी भावना स्वतंत्रता की ।।
नव विधान से न्यायबद्ध करके शासन को ।
दिये तुल्य अधिकार प्रजापति ने जन-जन को[3] ।

---

1. अंगराज, पृ.13-14-15
2. वही
3. वही, पृ.36

धनी और निर्धन के भेद-भाव को मिटाकर सब को समान अधिकार मिलना चाहिए -

"समाधिकारी बन दरिद्र-धनी नर-नारी।[1]"

आर्यभारत का गौरवगान भी आनन्दकुमार ने किया है। तपस्वियों की यह पुण्य भूमि महान है। हमारी संस्कृति उज्ज्वल है -

आर्यों का यह देश धन्य है करके जहाँ तपोबल संचय।
विधि विधान विपरीत यशस्वी मर्त्यजीव बनता मृत्युंजय।[2]

प्रस्तुत महाकाव्य में युद्ध के बारे में भी विचार किया गया है। कवि ने युद्ध को जन-विनाश साधन माना है। इसका परिणाम भीषण है फिर भी कुछ अवसरों पर युद्ध अनिवार्य बन जायेगा।

समाज में जिस जाति भेद का विचार है उसको मिटाना चाहिए। क्योंकि

कभी न आर्य-समाज में होता जाति विचार है
जाति-वंश धन्य नहीं, पुरुष-पौरुष विचार्य है
पंच गुणों में जो गुणव्य है वही आर्य है[3]

---

1. औराज, पृ.36
2. वही, पृ.108
3. वही, पृ.29

कवि ने कर्ण की गुरुभक्ति को भी इसमें उद्घाटित किया है। अपनी जंघा पर सिर रखकर सोते गुरु की निद्रा के भंग होने के भय से कर्ण ने विषकीट के काटने से उत्पन्न असह्य पीडा सही। इस प्रकार की गुरुभक्ति आधुनिक युग में दर्शनीय नहीं है।

इस प्रकार अंगराज में आनन्द कुमार ने कर्ण को मातृभक्त, गुरुभक्त, स्वाभिमानी युद्ध क्षेत्र में न्याय और नीति का पालन करनेवाला आदि रूपों में चित्रित करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। साथ ही युगीन समस्याओं को रेखांकित करके प्रस्तुत महाकाव्य को युगानुकूल नये धरातल पर प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी कवि ने किया है।

4. कैकेयी - केदारनाथ मिश्र प्रभात

"कैकेयी" में प्रभात जी ने यह स्थापित किया है कि कैकेयी ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति केलिये राम को वन भिजवाया। 13 सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य में कैकेयी के जीवन से सम्बन्धित एक प्रमुख घटना मुख्य रूप से चित्रित की गयी है।

कैकेयी ने अपने साम्राज्य के कई जनपदों में राक्षसों का आक्रमण देखा। राम के अभिषेक का समाचार सुनकर वह खुश हुई। फिर भी अपने कर्तव्य का स्मरण करते हुए उन्होंने राम को वन भेजने का प्रस्ताव रखा। प्रभातजी का मानवतावादी दृष्टिकोण यहाँ देखा जा सकता है

राज्याभिषेक का समाचार सुनकर "सम्राट बनो तुम जय हो ! अभिराम ! तुम्हारी जय हो"[1] कहकर कैकेयी ने अपना संतोष प्रकट किया। लेकिन उनके मन में द्वन्द्व चला -

एक ओर राज्याभिषेक के उत्सव का उल्लास महान ।
और दूसरी ओर सभ्यता संस्कृति का अंतिम आह्वान ।
एक ओर कामना कि राजा बने लोकप्रिय राजकुमार
और दूसरी ओर प्रश्न क्यों बने नरक मानव संसार[2] ।

प्रभातजी ने राम के वन गमन को मानवता की जय, आर्य सभ्यता की, स्वतंत्रता की जय कहकर प्रस्तुत घटना को एक नूतन दृष्टिकोण प्रदान किया है। राष्ट्र की जय केलिये वैधव्य को भी ससंतोष स्वीकार करनेवाली कैकेयी का देश प्रेम उज्ज्वल है -

वैधव्य मुझे स्वीकार राष्ट्र की जय हो,
दासत्व न अंगीकार, राष्ट्र की जय हो[3] ।

प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में प्रभात जी ने कैकेयी के चरित्र पर लगे गये कलंक को दूर करने का प्रयत्न किया है। राष्ट्र हित केलिये सबकुछ त्याग देने का महान सन्देश "कैकेयी" देता है।

---

1. कैकेयी, पृ.50
2. वही, पृ 186
3. वही, पृ.59

5. रश्मिरथी - दिनकर

"रश्मिरथी" युग चेतना का काव्य है । सात सर्गों में विभाजित प्रस्तुत खण्डकाव्य में कर्ण का जीवन चरित्र अंकित किया गया है । इसके माध्यम से कवि ने अपना सामाजिक विचार भी व्यक्त किया है । कवि ने इस में मनुष्य की दुर्बलताओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत की है ।

"रश्मिरथी" का नायक कर्ण जाति प्रथा का शिकार था । कर्ण सूर्य और कुन्ती का पुत्र था । लेकिन सूत के घर पलने के कारण तत्कालीन समाज में उसको निम्न स्थान ही प्राप्त हुआ । फिर भी अपने दृढ निश्चय और साधना से वह महारथी बना ।

कर्ण का जीवन यह सिद्ध करता है कि "नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, वंश, धन, धाम नहीं"[1] ।-

पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर[2] ।
xx xx xx
मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव ताडेगा
नीचवंशजन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा[3] ।

---

1. रश्मिरथी, पृ.5
2. वही,
3. वही, पृ.7

प्रस्तुत पंक्तियों में दिनकर ने जाति-भेद का विरोध किया है ।

भारतीय संस्कृति में दान की महिमा अनंत है । भारतीय इतिहास में कर्ण दानवीर के नाम से प्रसिद्ध है । दिनकर ने "दान" को जीवन धर्म कहा है ।

जीवन का अभियान दानबल से अजस्र चलता है[1]
xx xx xx
कर्ण नाम पड गया दान की अतुलनीय महिमा का[2] ।

भौतिक उन्नति के कारण मनुष्य अहंकारी बन गया है । इस बात की ओर संकेत करते हुए दिनकर ने कहा कि "नर विभव हेतु ललचाता है/ पर वही मनुज को खाता है[3] ।" कवि ने सत्य की महत्ता का उद्घोष कर्ण के मुख से इस प्रकार कराया है -

नहीं राधेय सत्पथ छोड़कर अघ ओक लेगा,
विजय पाये न पाये रश्मियों का लोक लेगा[4] ।

युद्ध की समस्या पर भी रश्मिरथी में विचार किया जा है । कवि के विचार में, आधुनिक युग में युद्ध का कारण मनुष्य का अहंकार है जो भौतिक उन्नति का परिणाम है । महाभारत आज भी मही पर चल रहा है ।

---

1. रश्मिरथी, पृ.63
2. वही, पृ.54
3. वही, पृ.55
4. वही, पृ.161

भुवन का भाग्य रण में जल रहा है । मनुज मनुज को ललकारता फिरता है । मनुज ही मनुज को मारता फिरता है[1] ।

युद्ध को टालने केलिये कवि ने एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । उनके विचार में समाज का नेतृत्व कलाकार के हाथों में सौंपना आवश्यक है । स्वार्थी नृपों के हाथों में नहीं, क्योंकि कलाकार ही समाज का शुभचिन्तक कर्मी है[2] ।

प्रस्तुत महाकाव्य में दिनकर ने जाति भेद, युद्ध, अतिभौतिकता आदि सामयिक समस्याओं पर विचार-विमर्श प्रस्तुत करनेकेलिए कर्ण के जीवन चरित्र को आधार बनाया है । दिनकर ने कर्ण के जीवन से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य कुल से नहीं कर्म और उदात्त चरित्र बल से महान बनता है । रश्मिरथी में कर्ण को दानवीर के रूप में चित्रित करके भारतीय संस्कृति की महानता की उद्घोषणा की गयी है । ग्रंथकार ने भी कर्ण को मातृभक्त, दानवीर, गुरुभक्त आदि रूपों में चित्रित करके उनके चरित्रोत्कर्ष करने का प्रयत्न किया है ।

6. अन्धा युग - धर्मवीर भारती

पाँच अंकों में विभाजित इस गीति नाट्य में धर्मवीर भारती ने महाभारत की युद्धोपरांत स्थिति को आधुनिक युग की विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है । इसमें महाभारत कालीन कथा को प्रतीक बनाकर वर्तमान समाज की मर्यादा हीनता, अनास्था, घुटन, दर्द और

---

1. रश्मिरथी, पृ.153
2. वही, पृ.15

शंकाओं पर गहरी चोट की गई है । साथ ही युगानुकूल नये आदर्शों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास भी किया गया है ।

इसकी कथा महाभारत के अठारहवें दिन की सन्ध्या से प्रारंभ होती है । इसमें महाभारतकालीन युद्ध को वर्तमान युग के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । मूल कथा प्रसंगों के बीच से आधुनिक जीवन बोध उभर कर आया है । यह ज्योति की कथा है - अन्धों के माध्यम से ।

युद्धोपरांत
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ,
आत्माएँ सब विकृत है
यह कथा उन्हीं अन्धों की है
यह कथा ज्योति की है, अन्धों के
माध्यम से ।[1]

प्रस्तुत गीति नाट्य के गांधारी, धृतराष्ट्र, संजय, विदुर, युयुत्सु, अश्वत्थामा आदि पात्रों को वर्तमान सामाजिक परिवेश में चित्रित करके भारती जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । उनके मतानुसार महाभारत युद्ध का कारण एक व्यक्ति (धृतराष्ट्र) का स्वार्थ था । व्यक्ति की अपेक्षा समाज ही प्रमुख है धृतराष्ट्र के मुख से कवि ने इस बात को स्पष्ट किया है -

आज मुझे भान हुआ
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है[2] -

1· अन्धा युग, पृ·12
2· वही, पृ·21

यंत्र संस्कृति ने जिस प्रकार नागरिक जीवन पर गहरी चोट कर दी है उसका उल्लेख भारती जी ने किया है ।

इसलिये सूने गलियारे में
निरूद्देश्य
चलते हम रहे सदा
दाएँ से बाएँ
और बाएँ से दाएँ[1] ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के नेताओं में नैतिक अधःपतन हुआ । कृपाचार्य की उक्ति से कवि ने कहा -

शान्त रहो कृतवर्मा
योद्धा नामधारियों में
किसने क्या नहीं
किया है / अब तक ?[2] ।

'अन्धा युग' में मूल कथा प्रसंगों के बीच से आधुनिक जीवन बोध उभरकर आया है । गांधारी आधुनिक मनुष्य की निराशा और अनास्था का प्रतीक है । प्रहरी प्रजा का प्रतीक है । युयुत्सु सत्य और न्याय का और अश्वत्थामा आधुनिक कुंठाग्रस्त व्यक्ति का प्रतीक है ।

1· अन्धा युग, पृ·29
2· वही, पृ·47

इस गीति नाट्य में भारती जी ने कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं सहज मानव के रूप में प्रस्तुत किया है । यह प्रवृत्ति आलोच्य युग की देन है ।

अट्ठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूं करोड़ों बार
जितनी बार जो भी सैनिक धराशायी हुआ
कोई नहीं था
वह मैं था
गिरता था घायल होकर जो रणभूमि में[1] ।

युयुत्सु कौरव होने पर भी पांडवों के पक्ष से लड़ा क्योंकि सत्य उनके साथ थे । इस बात का उल्लेख करते हुए भारतीजी ने सत्य के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है -

मेरा अपराध सिर्फ इतना है
सत्य पर रहा मैं दृढ़
xx xx xx
मैं भी हूं कौरव
पर सत्य बड़ा है कौरव वंश में[2] ।

युगीन परिस्थितियों की जटिलता से पीड़ित मनुष्य पशुता की ओर बढ़ रहा है । धर्म, नीति, मर्यादा ये सब आडम्बर मात्र रह गये हैं ।

---

1. अन्धा युग, पृ.102
2. वही, 55

हम सब के मन में कहीं एक अन्ध गह्वर है
बर्बर पशु, अन्धा पशु वास वहीं करता है[1]।

"अन्धा युग" में भारती जी ने युद्ध की समस्या पर काफी विचार किया है। दो विश्वयुद्धों ने मानव जीवन को परिवर्तित और विकृत कर दिया है। युद्ध की विभीषिका को चित्रित करते हुए कवि ने मानव वंश को चेतावनी दी है कि यदि एक तीसरा विश्वयुद्ध होगा तो -

आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पतियाँ नहीं होंगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्टग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायगी[2]।

"अन्धायुग" के रचनाकार का उद्देश्य युद्ध की विभीषिकाओं की ओर मानवता का ध्यान आकर्षित करना था। इस गीति नाट्य में भारती जी ने पहली बार कृष्ण को मानव के रूप में चित्रित किया है। महाभारत की कथा के माध्यम से सामयिक जीवन का चित्रण करने में भारती जी सफल हुए हैं।

7. <u>पार्वती - डॉ॰ रामानन्द तिवारी "भारतीनन्दन"</u>

"पार्वती" महाकाव्य में युगीन जीवन चेतना की विस्तृत अभिव्यंजना हुई है इस में भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप का व्यापक चित्रण मिलता है। कवि ने इसमें शिव संस्कृति का सन्देश प्रसारित करके

---

1. अन्धा युग, पृ॰23
2. वही, पृ॰84-95

मानवतावादी जीवन मूल्यों की स्थापना करने का सफल प्रयास किया है । इसमें सत्य, शील और नय - जो भारतीय संस्कृति के अनिवार्य उपकरण है - का महत्व प्रतिपादित है ।

"पार्वती" की कथा शैव पुराण से ली गयी है । साथ ही इसमें कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचय भी मिलता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जीवनादर्शों के संगठन की समस्या बलवती होती जा रही है । जीवन मूल्यों की सुदृढ संगठन केलिये संस्कृति का उद्धार करना आवश्यक है । "ज्ञान, शक्ति, श्रम और स्नेह से मानव को देव समान बनना है[1] । मानव को अपने गौरव को पहचानना है । विश्व कल्याण की भावना सबके मन में उठानी चाहिए । मानवता का जयकार करते हुए पार्वतीकार ने लिखा -

बोल उठे सब एक कण्ठ से "मानवता की जय हो"
गूंजा उठा स्वर अन्तरिक्ष में "अन्त समस्त अनय हो[2] ।"

समस्त भेद-भावों को मिटाकर नवयुग के निर्माण करने केलिए कवि ने जनता का आह्वान किया है -

जन जन के जाग्रत गौरव से कम्पित होगी अन्ध अनीति,
दम्भ, दर्प, अतिचार आदि की प्रलय बनेगी भीषण भीति
धर्म धुरन्धर अन्ध पुजारी मद-विभोर शासक सामन्त,
धन-कुबेर, श्रीमान्, दानपति सबका क्रांति करेगी अन्त[3] ।

1· पार्वती, पृ·483
2· वही, पृ·499
3· वही, पृ·483

xx xx xx

नवयुग का निर्माण करेगी श्रेयमुखी जीवन की क्रांति[1] ।

कवि केलिये नारी का नय और मान संस्कृति की माप है[2] । नारी का सम्मान मानव संस्कृति का गौरव होगा[3] - यही कवि का विश्वास था । युग युग से आतंकित और कलंकित नारी केलिये उन्होंने आदर प्रकट किया है -

नारी का बहुमान बना संस्कृति की बेला,
जीवन सागर रहा शान्त जिसमें अलबेला,
मानवता की मर्यादा थी निर्मल नारी,
शक्तिमयी श्रीमूर्ति मनोहर और सुकुमारी ।
xx xx xx
वह युग युग की आतंकित और लांछित नारी
महिमा मण्डित हुई प्राप्त कर गरिमा सारी[4] ।

पार्वतीकार की धार्मिक चेतना उल्लेखनीय है । कवि ने मानवता को सब से श्रेष्ठ धर्म कहा है । उनकेलिये मानव ही ईश्वर है -

मानव ही रह गया एक ईश्वर की आशा,
जीवन ही बन गया धर्म की नव परिभाषा[5] ।

---

1. पार्वती, पृ.483
2. वही, पृ.526
3. वही, पृ.483
4. वही, पृ.518
5. वही, पृ.517

"पार्वती" में कवि ने नये जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी चाही । नारी को उन्होंने संस्कृति का अंग माना । युगों से उपेक्षित और कलंकित नारी केलिये उन्होंने इस महाकाव्य में आवाज़ उठायी है ।

8· तारकवध - गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश"

तेरह सर्गों के इस महाकाव्य में "गिरीश" जी ने तारिकासुर से सम्बन्धित पौराणिक कथानक को युगानुकूल नवीन रूप देकर प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत महाकाव्य की भूमिका में कवि ने यह स्वीकार किया है कि देव, दानव और मानव एक ही परम तत्व के तीन रूप है । कवि ने मानव जीवन की मौलिक, चिरन्तन समस्याओं को अपने कथापट के ताने-बाने में नये रूप से उपस्थित कर, देव दानव और मनुष्य को एक ही महासत्य के त्रिगुणात्मक रूपों में अंकित कर उनके समन्वय द्वारा मानव जीवन की पूर्णता का लक्ष्य सिद्ध किया है[1] ।

जाति-भेद, पूंजीवाद, यांत्रिक सभ्यता वैयक्तिक स्वतंत्रता, धार्मिक अधःपतन आदि समकालीन समस्याओं पर इस प्रबन्ध काव्य में विचार किया गया है । जाति-भेद और वर्ग वर्ण भेद से पीड़ित समाज को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है -

---

1· तारकवध - प्राक्कथन, पृ·1-2

त्याग-त्याग ब्राह्मण ने छोड़ा क्षत्रि धर्म क्षत्रिय ने
दान वैश्या ने, भक्ति शूद्र ने तजा कर्म निज सबने ।
गौरव का आधार बनाया वर्ण-जन्म को केवल
नहीं सभी ही उसके माना वर्ण-कर्म को सम्बल[1] ।

पूँजीवाद को महान विष्फोटक विषधर कहकर कवि ने उसका शीश कुचलने की आशा प्रकट की है -

कुचलो उसका शीश प्रगति सब उसकी रोको ।
अगति-गर्त में लोक वृन्द को व्यर्थ न झोंको[2] ।

शोषण खूब चल रहा है । यांत्रिक सभ्यता भी इसका एक कारण है । आधुनिक युग की यांत्रिक सभ्यता का विरोध करते हुए गिरीशजी ने लिखा -

नगर मध्य विकराल यंत्र थे प्रबल प्रचलित ।
अर्थ पिशाच अनंत अंतर्हित लिप्सा पालित ।
यंत्र-मूल्य से श्रमिक मूल्य घटकर पाता था ।
मरने ही के हेतु विवश उनमें जाता था[3] ।

"तारकवध" के कवि व्यक्ति स्वातंत्र्य के पक्षपाती दिखाई पड़ता है । वर्ग-वर्ण भेद और आर्थिक असमानता को मिटाकर समाजवादी

---

1. तारकवध, पृ.402
2. वही, पृ.504
3. वही, पृ.261

समाज की स्थापना करना उनके मतानुसार आज की आवश्यकता है -

होना राष्ट्र स्वतंत्र, न राजा चाहिए ।
क्यों वह भी स्वाधीन प्रकृति उसकी हरे ?
सेना का क्या काम सभी सैनिक जहाँ ?
xx xx xx
ऐसा दिव्य समाज बना पाओ अगर ।
तारकाक्ष ! पुरुषार्थ तुम्हारा हो अमर[1] ।

हमें अपनी स्वतंत्रता का संरक्षण करना चाहिए । साथ ही विश्व-मानवतावादी चेतना को भी जागृत करना आवश्यक है ।

प्रस्तुत महाकाव्य में श्री (ऋषि) आदर्श मानव के रूप में आया है । आधुनिक मनुष्य प्राचीन धार्मिक मूल्यों को छोड़कर भौतिक सुखों के पीछे दौड़ रहा है । इस पर भी कवि चिंतित दिखाई पड़ता है । भय पीड़ित मानव ने देवों का आराधन छोड़ा । पूजन, भजन, यज्ञ, चिन्तन का सारा साधन उन्होंने छोड़ दिया है[2] ।

प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में "गिरीश" जी ने गौरव का आधार जन्म नहीं, कर्म माना है । आलोच्य युग में दिनकर ने भी इसी विचार को प्रकट किया है । 'तारकवध' के कवि ने अपने इस प्रबन्ध काव्य में श्री ऋषि, तारकाक्ष आदि चरित्रों को प्रतीक रूप में चित्रित करके अपनी रचना को युगानुकूल बना दिया है ।

1· तारकवध, पृ·502
2· वही, पृ·402

1.एकलव्य - डॉ. रामकुमार वर्मा

डॉ. रामकुमार वर्मा ने "एकलव्य" में निषाद पुत्र एकलव्य को नायक स्थान पर प्रतिष्ठित किया है । एकलव्य की साधना तथा गुरुभक्ति का सुन्दर चित्रण इसमें मिलता है । द्रोणाचार्य का मानसिक द्वन्द्व भी प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में कवि ने एकलव्य के चरित्र को ऊँचा किया है । साथ ही इसमें द्रोण के चरित्र पर लगे कलंक का परिमार्जन भी किया गया है ।

महाभारत के एकलव्य जैसे उपेक्षित पात्र को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करके कवि ने अपनी मानवतावादी विचारधारा का परिचय दिया है । इसमें कवि ने वर्गहीन समाज का आदर्श प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में एकलव्य पतित वर्ग का प्रतिनिधि है । निषाद संस्कृति का प्रतीक है उसके चरित्र में दृढ निश्चय, जिज्ञासा, गुरुभक्ति आदि गुण विद्यमान हैं

तत्कालीन परिस्थितियों के कारण गुरु द्रोण एकलव्य को अपना शिष्य नहीं बना सका । लेकिन एकलव्य ने -

आप गुरु मेरे हैं, रहें सब काल में,
हानि क्या ! प्रत्यक्ष नहीं, मेरे मन में तो हैं ।[1]

---

1. एकलव्य, पृ. 127

- कहकर वन में गुरुमूर्ति बनाकर उसके समक्ष सिद्धि प्राप्त की है। डॉ० वर्मा ने एकलव्य को सच्चे गुरुभक्त के रूप में चित्रित किया है। वह गुरु निन्दा सह नहीं सकता। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण देती हैं -

सावधान, आर्य! गुरु निन्दा एक क्षण भी,
सुन न सकूँगा[1]।

गुरु दक्षिणा देते समय उसकी गुरुभक्ति की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। इस अवसर पर

तुमने निषाद हो
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को[2]। कहकर अर्जुन उसे सराहते हैं।

सामाजिक विसंगतियों और विवशताओं की सजीव अभिव्यक्ति भी इस महाकाव्य में मिलती है। एकलव्य वर्ण-वैषम्य से पीड़ित समाज का प्रतिनिधि है। एकलव्य के मुंह से कवि ने जाति भेद का विरोध किया है -

हमने सहन की है वर्ण की विगर्हणा,
शूद्र कहलाते रहे सेवा भाव मान के।
किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध ही,
बात क्या नहीं है क्रांतिकारी बन जाने की[3]।

---

1. एकलव्य, पृ०254
2. वही, पृ०296
3. वही, पृ०198

जाति-वर्ण भेद से परे शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी है । यही वर्माजी का विश्वास था ।

जाति भेद नहीं, वर्ण भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी है[1] ।

द्रोणाचार्य राजगुरु थे । अपने पद की मर्यादा के कारण वे एकलव्य को शिक्षा नहीं दे सके । वर्तमान समय में भी शिक्षा पर राजनीति का नियंत्रण होता है ।

राजगुरु हूँ, विशेष पद की मर्यादा है ।
शिक्षानीति राजनीति के पदों ही चलती ।
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में ।
गुरुकुल है कहाँ । यहाँ तो राजकुल है[2] ।

द्रोण गुरुकुल का स्वामी नहीं, राजकुल का सेवी थे । इसलिये उनको एकलव्य का तिरस्कार करना पडा । इस पर उन्होंने अपने को धिक्कारा है । कवि के मतानुसार शिक्षा को राजनीति से नहीं जोडना चाहिए -

भूमिपति है सही प्रशासक हों भूमि के,
किंतु क्या सरस्वती का शासन करेंगे वे ?

---

1. एकलव्य, पृ.222
2. वहीं, पृ.126

राजदंड तो विधान करता है राज्य का,
किंतु है सरस्वती निवासिनी हृदय की।[1]

कवि का जीवन दर्शन भी इस महाकाव्य में व्यक्त किया गया है। मानव जीवन नैराश्य की भूमि नहीं। सुख-दुख बादलों की भाँति उड़ जाते हैं। आत्म बल के सामने पशुबल नगण्य है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणयन में गाँधीजी के अछूतोद्धार आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। "एकलव्य" के कवि ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि जाति-भेद से परे शिक्षा प्राप्त करने का सभी अधिकारी है। शिक्षा पर राजनीति का हस्तक्षेप होने का उन्होंने विरोध प्रकट किया है। निम्न वर्ग के लोगों के मनमें आत्मविश्वास की नयी चेतना उत्पन्न करने में प्रस्तुत महाकाव्य ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

10· कनुप्रिया - धर्मवीर भारती

'कनुप्रिया' में भारतीजी ने राधा के प्रेम को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। राधा के परम्परागत चरित्र को दार्शनिक भूमिका दी गयी है। "माथुरजी के विचार में राधा भारतीय संस्कृति की मूल रागात्मक प्रवृत्ति के प्रतीक रूप में आधुनिक जटिल परिवेश के बीच भावी युग निर्माण में अपनी सार्थकता का महत्व बलपूर्वक स्थापित कर देना चाहती है।[2]

1· एकलव्य, पृ·196

2· गिरिजाकुमार माथुर - नई कविता - संयुक्तांक 5 तथा 6, पृ·57

भारती जी ने राधा और कृष्ण को आधुनिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया है । राधा मानवी के रूप में चित्रित की गयी है । कृष्ण को प्रतीक बनाकर उनके माध्यम से आधुनिक मनुष्य के मानसिक द्वन्द्व, युद्ध का औचित्य एवं अस्मिता के संकट को चित्रित करने का महत्वपूर्ण प्रयास भारतीजी ने किया है ।

पौराणिक परम्परा का निर्वाह करने के साथ साथ राधा आधुनिक नारी चेतना का प्रतिनिधित्व भी करती है -

और जन्मान्तरों की पगडण्डी के
कठिनतम मोड पर खड़ी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ
कि इस बार इतिहास बनाते समय
तुम अकेले न छूट जाओ[1] ।

युद्ध के औचित्य और अनौचित्य पर भी "कनुप्रिया" में विचार किया गया है । युद्ध के भीषण दृश्य को भारती जी ने इस प्रकार चित्रित किया है -

विष भरे फेन, निर्जीव सूर्य, निष्फल सीपियाँ
निर्जीव मछलियाँ[2] ।

1· कनुप्रिया, पृ·78

2· वही, पृ·74

युद्ध किसी धर्म की स्थापना नहीं कर सकता, किसी मूल्य की स्थापना नहीं कर सकता । युद्ध की अकल्पनीय अमानुषिक घटनायें देखकर भारतीजी ने युद्ध की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगाया है -

कोई भी अर्थ मुझे समझ नहीं आता है
अर्जुन की तरह कभी
मुझे भी समझा दो
सार्थकता है क्या बन्धु ?[1]

कवि के विचार में वर्तमान युग में युद्ध के बदले प्रेम को स्थान मिलना चाहिए । शाश्वत जीवन मूल्यों की खोज कनुप्रिया में है । इस में उठायी गयी मूल समस्या भी यही है -

न्याय-अन्याय, सदसद्, विवेक-अविवेक
कसौटी क्या है ? आखिर कसौटी क्या ?[2]

"अन्धा युग" के समान कनुप्रिया में भी भारतीजी ने कृष्ण और राधा को मानवीय धरातल पर खड़ा कर दिया है । इन दोनों प्रबन्ध काव्यों में युद्ध की समस्या पर ज्यादा विवेचन किया गया है । युद्ध की विभीषिकाओं को चित्रित करके उसकी सार्थकता पर भारती जी ने सन्देह प्रकट किया है । साथ ही आधुनिक मनुष्य के मानसिक द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी इसमें किया गया है ।

---

1. कनुप्रिया, पृ.68
2. वही, पृ.74

11• ज्योतिपुरुष - रघुवीरशरण मित्र

दस खण्डों के इस खण्डकाव्य में मित्रजी ने मानव समाज की वर्तमान समस्याओं का चित्रणकिया है । इसका नायक "पुरुष" स्वयं कवि है । वह अभावजन्य वेदना से तड़पनेवाले आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है । खण्डकाव्य की भूमिका में कवि ने यह स्वीकार किया है कि व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय संघर्षों ने उसे लिखने केलिये विवश किया ।

पहले पुरुष ने पीडाओं से निराश होकर जीवन से पलायन करना चाहा । लेकिन बाद में वह अपनी आत्मा की ध्वनि पहचान कर समाज सेवा केलिये आगे बढा । और उसने समष्टि हित केलिये अपने व्यक्तिगत सुख का त्याग भी किया । कवि की समष्टि चेतना निम्न लिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है -

मेरा ध्येय तुम्हारा सुख है,
चाहे दुख दो अपने ।
मेरे श्वास तुम्हारे ही हैं
प्राण संभालो अपने ।[1]

हमारे समाज में पीडित, शोषित और श्रमिक सदा सहानुभूति का पात्र रहे हैं । मित्रजी ने अपने को शोषित वर्ग का साथी कहा है -

निर्धनों की झोंपडी में रह रहा हूं मैं,
धार बनकर प्यास के हित बह रहा हूं ।[2]

1• ज्योति पुरुष, पृ•57
2• वही, पृ•113

प्रस्तुत खण्डकाव्य में युद्ध के बारे में भी मित्र जी ने विचार किया है। युद्ध का आतंक हर क्षण विश्व के ऊपर छाया हुआ है। धरती पर तोपों के आगे हम को प्यार का सन्देश फैलाना चाहिए -

मेरा देह विश्व का घर है
कोई नहीं पराया[1]।
x x x x x
रोको अत्याचार को,
तोपों के आगे फैला दो,
तुम धरती के प्यार को[2]।

"कनुप्रिया" में भारती जी ने भी युद्ध के बदले प्रेम को फैलाने का सन्देश दिया है। कवि की विश्व मानवतावादी चेतना भी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है।

वर्तमान युग में राजनैतिक नेता कामचोर और केवल भाषण प्रिय बन गये हैं। इस पर कवि का व्यंग्य देखने लायक है -

भाषण देना बहुत सरल है,
काम करो तब बात है[3]।

स्त्री के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यंत उदार था। उन्होंने नारी को अभावों की पूर्ति और मनोभावों की मूर्ति कहा -

---

ज्योति पुरुष, पृ.73
2. वही, पृ.65
3. वही, पृ.88

तुम पूर्ति अभावों की हो,
तुम मूर्ति मनोभावों में,
तुम जीवन की गतिविधि हो,
चाँदनी थके पाँवों में[1]।

इस प्रकार देखें तो यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि "ज्योति पुरुष" केवल व्यक्तिगत काव्य नहीं, समष्टिवादी रचना है । कवि ने अपने को नायक स्थान पर प्रतिष्ठित करके नूतन प्रयोग किया है जो स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है ।

12. रामराज्य - बलदेवप्रसादमिश्र

आर्ष संस्कृति और भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण उपपत्ति है "रामराज्य" की कल्पना । प्रस्तुत महाकाव्य में मिश्र जी ने इसी कल्पना को साकार करने का प्रयास किया है । इसमें मिश्र जी ने राम के चरित्र को वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है । उनके मतानुसार राम त्रेता युग के नहीं, युग युग के प्रेरणाधाम है । राम केवल ब्रह्म या विष्णु नहीं, मानव भी है ।

राम ब्रह्म हों, राम विष्णु हों, किंतु राम नर तो है निश्चय
युग दृष्टा ही नहीं, आप ही युग कर्ता भी जो निस्संशय[2]।

---

1. ज्योति पुरुष, पृ.34
2. रामराज्य, पृ.147

समष्टि हित केलिये व्यक्ति हित का त्याग कवि ने वांछनीय माना है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की जनता ने जिस रामराज्य का सपना देखा, वह इस प्रकार का था -

तन मन से जो मनुज स्वस्थ हो, वह श्रम कर ऐश्वर्य पावें,
शासन का दायित्व यही है नर इसकी सुविधायें पायें ।
पर इस सुविधा में समष्टि की सुविधा पर आघात न होवें ।
रामराज्य में रही व्यवस्था प्रतिजन ऐसे मार्ग संजोवें ।[1]

लेकिन यह सपना सपना ही रह गया । इस सपने को साकार करने की प्रेरणा प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में मिश्रजी ने दी है । उनके मतानुसार उत्तर-दक्षिण की एकता यानी सम्पूर्ण भारत की एकता आवश्यक है । क्योंकि दक्षिण यदि विकलांग रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण है । सब अवयव स्वस्थ हो, तभी शरीर स्वस्थ रहेंगे । "भारत" को शरीर से उपमित करना कवि की मौलिक कल्पना है । केवल भारत के उत्तर और दक्षिण नहीं, समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब बनना चाहिए ।

क्यों मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आबद्ध रहे ।
क्यों न विश्व का मानव, खग मृग तक मुझको निज बन्धु कहे ।[2]

-कहकर रामराज्यकार ने विश्वबन्धुत्व की भावना का परिचय दिया है । और इसकेलिये उन्होंने नेहरु जी के पंचशील के सिद्धांत का समर्थन भी किया है ।

---

1. रामराज्य, पृ.146
2. वही, पृ.26-27

वर्तमान नागरिक सभ्यता पर भी कवि ने इसमें विचार किया है। उनके मतानुसार नगर के साथ गाँवों को भी बढाना चाहिए। क्योंकि आज गाँव को सुखाकर ही नगर बढते हैं। इसलिये यह श्रेयस्कर है कि

नगर बढें पर साथ ही क्यों बढाये गाँवों को।[1]

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य की अन्य विचारणीय विषय है वर्तमान शिक्षा प्रणाली। जनसमुदाय को विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य है। लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली कुछ ऐसी है कि -

ग्रन्थ के बोझ, पन्थ के बोझ, खो गयी जिनमें मन की शांति
ज्ञान की साक्षरता वह कौन, ज्ञान है वह तो केवल भ्रांति।[2]

नारी के प्रति मिश्रजी का दृष्टिकोण उदार था। उन्होंने स्त्री को पुरुष का पूरक, उसकी शक्ति मानी है। स्त्री और पुरुष के सहयोग से जगद् का कार्य कलाप चलता है। उत्तम नर का निर्माण करना नारी का कर्तव्य है। मिश्रजी की राय में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार होना चाहिए

न कोई हीन न कोई उच्च, उभय का अपना अपना मान।
उभय समझे अपने कर्तव्य, प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान।[3]

---

1. रामराज्य, पृ.24
2. वही, पृ.50
3. वही, पृ.49

मिश्रजी ने प्रस्तुत महाकाव्य में नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया है । साथ ही उन्होंने सामयिक समस्याओं का चित्रण भी किया है । राम को ईश्वर के रूप में नहीं मानव के रूप में चित्रित करके मिश्र जी ने महाकाव्य की नायक परिकल्पना में एक नूतन दृष्टिकोण उपस्थित किया है । आलोच्य युग में धर्मवीर भारती ने अन्धायुग में कृष्ण को मानव रूप चित्रित करके इस प्रवृत्ति का सूत्रपात किया है । दमन, शोषण और भ्रष्टाचार से घिरे हुए इस युग में "रामराज्य" की रचना महत्त्वपूर्ण उपलब्धी कही जा सकती है ।

13. उर्वशी - दिनकर

उर्वशी में दिनकर ने पुरुरवा और उर्वशी की पौराणिक कथा को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है । उर्वशी सनातन नारी का प्रतीक है ।

"नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है । इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है जब शरीर की धारा, उछालते उछालते, उसे मन के समुद्र में फेंक देती है; जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधी में पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है ।"[1]

उर्वशी में नारी के मूलत: तीन रूप मिलते हैं - प्रेयसी, पत्नी और माता । प्रेयसी के रूप में उर्वशी पत्नी के रूप में औशीनरी, और माता के रूप में सुकन्या आती है उर्वशी चिरन्तन नारी का प्रतीक है जैसे -

---

1. उर्वशी - भूमिका,

मैं देशकाल से परे चिरन्तन नारी हूँ ।
मैं आत्मतंत्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हूँ ।[1]

दिनकर के मतानुसार पुरुष परमेश्वर का और नारी प्रकृति का प्रतीक है । प्रकृति को माया कहकर उस के अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता । क्योंकि -

हम निसर्ग के स्वयं कर्म हैं, कर्म स्वभाव हमारा,
कर्म स्वयं आनन्द, कर्म ही फल समस्त कर्मों का ।[2]

उर्वशीकार ने मातृत्व की प्रशंसा कई बार की है । उन्होंने नारी को महासेतु कहा जिस पर अदृश्य से चलकर नये मनुज जग में आते रहते हैं ।[3] इतिहासों की दृष्टि केवल पुरुषों के पौरुष, संघर्ष और यशोगान पर केंद्रित रही है । नारियों की शूरता उसने अनदेखा छोड दी है ।

अन्वेषी इतिहास शूरता का, संघर्ष सुयश का,
किंतु, हाय शूरता नारियों की नहिं होती है,[4]

क्योंकि -

"नारी क्रिया नहीं वह केवल क्षमा, क्षान्ति, करुणा है ।[5]

---

1. उर्वशी पृ.78
2. वही, पृ.62
3. वही, पृ.91
4. वही, पृ.128
5. वही, पृ.128

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में दिनकर ने नारी समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है । उर्वशीकार ने पुरुष और स्त्री को परमेश्वर और प्रकृति के रूप में चित्रित किया है । इसमें स्त्री के तीन रूप मिलते हैं - प्रेयसी, पत्नी और माता । कबीर दादू जैसे संत कवियों ने स्त्री को माया कहकर उसका तिरस्कार किया है । उर्वशीकार ने इस बात का खण्डन किया है ।

14. संशय की एक रात - नरेश मेहता

"संशय की एक रात" में नरेश मेहता ने खण्डित व्यक्तित्व, युद्ध एवं शांति, मूल्यों का विघटन आदि समस्याओं पर विचार किया है । इसके सभी पात्र आधुनिक चेतना के वाहक दिखाई पड़ता है । इसमें उपस्थित सारी समस्यायें वर्तमान जीवन की समस्यायें हैं ।

यह चार सर्गों का एक खण्डकाव्य है प्रथम सर्ग में कवि ने रामेश्वरम के सिन्धु तट में चिन्तामग्न होकर टहलते राम के मन के द्वन्द्व को चित्रित किया है । राम का मन "क्या हो क्या न हो" के द्वन्द्व से दुखित है । दूसरे सर्ग में राम युद्ध के बारे में ही सोचते हैं । तब राम के पिता दशरथ और जटायु छाया के रूप में आकर युद्ध के लिए प्रेरणा देते हैं । तृतिय सर्ग में राम युद्ध की अनिवार्यता समझते हैं चतुर्थ सर्ग में राम युद्ध सम्बन्धी सामूहिक निर्णय को स्वीकार करता है ।

राम का रावण से युद्ध उनका व्यक्तिगत प्रश्न नहीं, बल्कि दक्षिण प्रदेश के रावण द्वारा पीड़ित असंख्य साधारण जनों की स्वाधीनता का प्रश्न है । राम की निजी समस्या सार्वजनिक समस्या बन जाती है -

सीता माता
भले ही राम की पत्नी हो
किसी की वधू
किसी की दुहिता हो
पर
हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है -
रावण अशोकवन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता[1] ।

नरेश मेहता ने प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को उद्घाटित किया है । उन्होंने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्रधानता दी है । एक ओर राम सीताहरण को अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं । दूसरी ओर हनुमान इसको साधारण जन की मुक्ति की समस्या मानते हैं । प्रस्तुत खण्डकाव्य में राम आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधि है । हनुमान साधारण जन का और "सीता" स्वतंत्रता का प्रतीक है ।

राम के मन में जो द्वन्द्व है, वह आधुनिक मनुष्य का द्वन्द्व है । क्या करे, क्या न करे - यह आज के मनुष्य के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । आधुनिक मनुष्य अपने को खण्डित एवं लघु मानता है । अनास्था, अविश्वास और संशय में मानव भटक रहा है इस परिस्थिति में नरेश मेहता ने "राम के प्रज्ञा मानस को एक द्वन्द्वग्रस्त मानस का रूप दिया है[2] ।"

1· संशय की एक रात, पृ·64

2· वही, शीर्षबंध से

दो सत्य
दो संकल्प
दो-दो आस्थायें
व्यक्ति में ही
अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो गया है[1]।

युद्ध की समस्या पर प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में काफी विचार किया गया है। व्यक्तिगत रूप से राम युद्ध के विरोधी है। राम कहते है कि मैं सत्य चाहता हूँ, युद्ध से या खड्ग से नहीं, मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ[2]। लेकिन शांति केलिये जब अन्य सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं तो युद्ध को अंतिम मार्ग के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। प्रबन्धकाव्यकार स्वत्व और अधिकार अर्जन के अंतिम मार्ग के रूप में युद्ध को स्वीकार करने के पक्ष में है। लेकिन युद्ध के उपरांत शांति होगी ऐसा विश्वास उनको नहीं। इसलिये राम के मन में फिर द्वन्द्व होता है। उन्होंने सोचा कि यदि मानवीय प्रश्नों का एकमात्र उत्तर युद्ध है, खड्ग है तो -

समर्पित है यह
धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण।
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
बाण बिद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए[3]।

---

1. संशय की एक रात - पृ.39
2. वही, पृ.31
3. वही, पृ.31-32

इस अवसर पर दशरथ की छाया ने राम को उत्तेजित किया है -

मेरे पुत्र
संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है
यश जिसकी छाया है ।
उस कर्म को वरो[1] ।

"युद्ध आज की एक प्रमुख समस्या है । संभवत: सभी युगों की । इस विभीषिका को सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा और इसलिये राम को भी ऐसा ही एक तत्व देकर प्रश्न उठाये गये[2] ।" यह एक सत्य है कि किसी भी युग में किसी का व्यक्तिगत मत नहीं चल सकता । सामाजिक प्राणी होने के कारण, उसे समाज में रहने केलिये समाज के निर्णय को मानना ही पड़ेगा । राम युद्ध नहीं चाहते थे । लेकिन अंत में सामूहिक निर्णय को स्वीकार करते हुए वे युद्ध केलिये तैयार होते हैं ।

नरेश मेहता ने हनुमान के द्वारा साम्राज्यवाद का विरोध भी प्रकट किया है । क्योंकि -

साम्राज्य वृत्ति के द्वारा
हम साधारण जन
अर्द्ध सभ्य कर दिये गये
हमने राक्षस-रथ खेंचे

---

1. संशय की एक रात, पृ. 66
2. वही, पृ. 65

दास भाव से
बदले में । नर नहीं । वानर पद प्राप्त किये ।[1]

सन् 1962 में भारत पर चीन का आक्रमण हुआ । प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रणयन भी इसी वर्ष हुआ । इसमें कवि ने पौराणिक कथा को आधार बनाकर युगीन समस्याओं को ही चित्रित किया है । आधुनिक मनुष्य के द्वन्द्व - जो आधुनिक परिस्थितियों की देन है - राम के माध्यम से चित्रित किया गया है । मेहता जी ने युद्ध की समस्या पर इसमें ज्यादा विवेचन किया है । उन्होंने युद्ध को शांति का उपाय नहीं माना है । उनकेलिये युद्ध एक दर्शन है । भारती जी ने भी "अन्धा युग" और "कनुप्रिया" में युद्ध की समस्या पर विचार किया है । भारती जी की दृष्टि युद्ध की विभीषिकाओं को चित्रित करके समाज का ध्यान आकर्षित करने में था । उन्होंने कनुप्रिया में युद्ध के बदले प्रेम को स्थान देने की बात भी कहीं ।

15. एक कंठ विषपायी - दुष्यंत कुमार

भारत के इतिहास में भारत-चीन युद्ध एक महत्वपूर्ण घटना थी । चीनी आक्रमण ने एक ओर हमारे शांति और अहिंसा के आदर्शों पर प्रश्न-चिह्न लगाया । दूसरी ओर यह आक्रमण प्रजातंत्र केलिए एक चुनौती भी थी । "एक कंठ विषपायी" का प्रणयन चीनी आक्रमण के पश्चात् सन् 1963 में हुआ । यह सामयिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करनेवाली रचना है ।

---

1. संशय की एक रात, पृ.65

प्रस्तुत गीति-नाट्य में प्राय: सभी पात्र प्रतीक है । ब्रह्मा राष्ट्र नेता का प्रतीक है । सर्वहत साधारण जनता का प्रतिनिधित्व करता है । दक्ष परम्परा का पोषक है । शिव परम्परा के गलित मूल्यों को तोडनेवाले मूल्यान्वेषी के रूप में चित्रित किया गया है । वे युवा पीढी के प्रतीक हैं ।

वर्तमान समय में हमारे देश की सब से बडी समस्या प्रजातंत्र की असफलता की है । नेताओं की निष्क्रियता, अदूरदर्शिता आदि के कारण भारत में प्रजातंत्र असफल होता जा रहा है । हमारे प्रजातंत्र का वर्तमान रूप सर्वहत के इन शब्दों में देखा जा सकता है ।

पर तुम जाने कैसे शासक हो ।
और --- जाने कैसी है तुम्हारी यह प्रजा
- ज़रा - ज़रा बातों पर चीखती-चिल्लाती है
शासन के दरवाज़े पीटती है
नारे लगाती है
और शत्रु सेना की तरह चढ़ी आती है ।[1]

सर्वहत के माध्यम से प्रजा की मनस्थिति का सही विश्लेषण इसमें किया गया है शासक जनता की आवाज़ नहीं सुनते हैं तो प्रजा नारे बाजी और जुलूसों द्वारा शासकों के कान खुलवाने का प्रयत्न करता है । सर्वहत के माध्यम से दुष्यंत कुमार ने वर्तमान भ्रष्ट शासन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया तीखे शब्दों में व्यक्त की है -

---

1. एक कंठ विषपायी, पृ.110

प्रजातंत्र में यह मनमानी नहीं चलेगी

xx xx xx

खोलो ये दरवाज़े खोलो,
इस कायर शासन को तोडो[1]।

क्योंकि "चाहे न चाहे किंतु शासक की भूलों का उत्तरदायित्व प्रजा को वहन करना पड़ता है[2]।" शासन के गलत सलत झोंकों के आगे भी प्रजा निर्विवाद और विनयी रहे - यही शासक का मोह है। वे अपनी इच्छा के अनुसार नियमों में परिवर्तन कर लेते हैं। प्रजा को इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने का अधिकार वे नहीं देते हैं। इन नेताओं का मुखौटा उतारते हुए कवि ने एक तीखे यथार्थ का उद्घाटन किया है -

दुनियां में सब भूखे होते हैं, सब भूखे -
- कोई अधिकार लिप्सा का,
- कोई प्रतिष्ठा का
- कोई आदर्शों का
और कोई धन का भूखा होता है -
xx xx xx
किन्तु बन्धु
जीवन की भूख बहुत कम लोगों में होती है[3]।

1· एक कंठ विषपायी, पृ·101
2· वही, पृ·49
3· वही, पृ·65

अपनी रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इसकी भूमिका में कवि ने लिखा है कि इस प्रबन्ध काव्य की मूल समस्या राज-लिप्सा और युद्ध से सम्बन्धित है । युद्ध की अनिवार्यता और युद्ध की विभीषिका दोनों पर इसमें विचार किया गया है -

मेरे उत्तरवासी सम्बन्धी सब बेघरबार हो गये
सब शरणार्थी सब शरणार्थी
पूर्व जन्म में कितने पाप किये थे
जो इन कापुरुषों का संरक्षण पाया है[1] ।

युद्ध के सम्बन्ध में दुष्यन्तकुमार ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया है - युद्ध किसी भी समस्या का समाधान नहीं है । यदि कोई शासक मन में युद्ध को किसी समस्या का किंचित भी समाधान समझे तो भ्रम है।[2] युद्ध एक कारण है उसको सत्य नहीं मानना चाहिए[3] । समस्याओं का एकमात्र समाधान अगर युद्ध है तो युद्ध एक अनिवार्यता बन जाता है[4] युद्ध में जो भीषण नरसंहार होता है उस को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है -

सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है
और सड़ी हुई लाशें हैं
क्षत-विक्षत तन है

एक कंठ विषपायी, पृ०106
2• वही, पृ०101
3• वही, पृ०115
4• वही, पृ०110

और उन भिन्नाते हुए
चीलों गिद्धों के झुण्ड
और मक्खियाँ हैं[1] ।

मूल्यों के विघटन की समस्या आज की एक प्रमुख समस्या है । जर्जर रूढियों और परम्परा के शव से चिपटे लोगों को प्रतीकात्मक रूप से इस प्रबन्धकाव्य में कवि ने चित्रित किया है ।

अकल्पित
ऐसा क्या मोह
कि शव को चिपटाये फिरते हैं तन से[2] ?
xx xx xx
क्यों लोग नये को ऊपर आने देना नहीं चाहते ?
चाहे वे साधारण जन हों
क्यों इनमें अधिकांश लोग लाशें ढोते हैं,
लाशें मरी मान्यताओं की
जरे विचारों की भावों की[3] ।

यह एक साधारण तत्व है कि हर परम्परा के मरने पर थोडे दिन तक सारा वातावरण शून्य से भर जाता है । उसके बावजूद शून्य की उसी भूमि कोई नया रूप धारण करते हैं, एक नन्हा अंकुर उभर आता है[4] ।

---

1. एक कंठ विषपायी, पृ.45
2. वही, पृ.82-83
3. वही, पृ.121
4. वही, पृ.119

वर्तमान युग के बदलते नारी पुरुष सम्बन्धों के बारे में भी इस प्रबन्धकाव्य में विचार किया गया है । आधुनिक मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व की ओर भी महाकाव्यकार ने संकेत किया है ।

करते हैं कुछ, कुछ करना चाहते हैं
अपनी प्रिया के संदर्भ में
दुहरा जीवन जीते हैं शिवशंकर[1] ।

चीनी आक्रमण के पश्चात् लिखे गये इस महाकाव्य में युद्ध की सार्थकता पर विचार किया गया है । साथ ही असफल होते प्रजातंत्र, बदलते नारी-पुरुष सम्बन्ध, रूढि विरोध आदि सामयिक समस्याओं पर भी दुष्यन्त कुमार ने विचार किया है । सामाजिक चेतना की दृष्टि से यह स्वातंत्र्योत्तर युग का एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है ।

16. सत्य की जीत - द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

चीनी आक्रमण से प्रेरणा ग्रहण करके लिखा गया खण्डकाव्य है सत्य की जीत । इसकी कथा पौराणिक है । लेकिन इसके सभी पात्र प्रतीक बनकर सामने आते हैं । द्रौपदी भारतमाता का प्रतीक है । पाण्डव भारत का और कौरव चीन का प्रतीक है । द्रौपदी को सत्य, धर्म और न्याय के पक्ष का समर्थन करती दिखाई पड़ती है ।

---

1. एक कंठ विषपायी, पृ. 60-61

शांति, सहयोग और प्रेम से भारत दुनियां के पास पहुंच रहे हैं[1] क्योंकि शस्त्र बल पर आधारित शांति क्षणिक और स्थायित्व विहीन होती है[2]। प्रस्तुत खण्डकाव्य में कवि ने इस बात को रेखांकित किया है। लेकिन दुख की बात है कि आज हमारा देश संस्कृति की ओर नहीं अवनती की ओर जा रहा है। हमारी वर्तमान सांस्कृतिक गिरावट की ओर कवि ने निम्न लिखित पंक्तियों में हमारा ध्यान आकृष्ट किया है -

सतत बढ रहे हमारे चरण,
समझते हम, संस्कृति की ओर।
किंतु ये घटनायें ललकार
कह रहीं हम अवनति की ओर[3]।

विश्व कल्याण केलिये कवि ने विश्व के सामने भारत के सह-अस्तित्व का सन्देश रखा है। न्याय, समत्व मैत्री-भ्रातृत्व, सह-अस्तित्व इन्हीं शाश्वत मूल्यों से विश्व कल्याण हो सकते हैं -

न्याय-समत्व-मैत्री-भ्रातृत्व,
भावना-स्नेहिल सह-अस्तित्व।
इन्हीं शाश्वत मूल्यों से बने
विश्व का मंगलमय व्यक्तित्व[4]।

---

1. सत्य की जीत, पृ.83
2. वही, पृ.49
3. वही, पृ.34
4. वही, पृ.92

नारी को कवि ने अबला नहीं माना है । वर्तमान युग में नारी अबला नहीं । इसलिये उन्होंने पूछा -

प्रकृति ने बतलाया कब पुरुष,
बली है, नारी है बलहीन ।
कहाँ अंकित उसमें रे पुरुष,
श्रेष्ठ, नारी निकृष्ट अतिदिन ।[1]

द्वारिकाप्रसाद जी की उदार दृष्टि यहाँ देखी जा सकती है । नारी के प्रति होनेवाले अत्याचारों को देखकर कवि ने पुरुषत्व का धिक्कार भी किया है ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में द्वारिकाप्रसाद ने पौराणिक कथा को युगानुकूल नये भावभूमि पर चित्रित किया है । चीनी आक्रमण के पश्चात् लिखे गये इस खण्डकाव्य में पाण्डव को भारत का और कौरव को चीन का प्रतीक बनाकर चित्रित किया गया है । विश्वशांति का सन्देश इसमें मुखरित है ।

17· लोकायतन - पंत

लोकायतन लोक जीवन का महाकाव्य है । सात सर्गों में विभाजित प्रस्तुत महाकाव्य में समष्टि पर विचार किया गया है । यह युग चेतना का काव्य है । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का ज्वलंत

1· सत्य की जीत, पृ·11

चित्रण इसमें मिलता है । इसमें पंतजी ने जनजीवन की समस्याओं का यथार्थ रूप सामने रखा है । इस बात को स्पष्ट करते हुए महाकाव्य की भूमिका में पंत जी ने लिखा - यह ग्रामधरा के अंचल में, जनभावना के छन्द में बन्धी, युग-जीवन की कथा है ।

प्रस्तुत महाकाव्य में सुन्दरपुर नामक जनपद परतंत्र भारत के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है । यहां युवा कवि वंशी जागृति का सन्देश फैलाता है । वह जन-सेवा का मार्ग स्वीकार करता है । गांधीजी से मिलकर देश को स्वतंत्र कराने का प्रयत्न करता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का चित्रण भी इस महाकाव्य में होता है । भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का सजीव चित्रण इसमें मिलता है । सारा महाकाव्य विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है ।

प्रस्तुत महाकाव्य दो खण्डों में विभक्त है - बाह्य परिवेश और अन्तश्चैतन्य । प्रथम खण्ड में पराधीन भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक ह्रासावस्था को कवि ने "सुन्दरपुर" गांव की दशा के माध्यम से चित्रित किया है । स्वाधीनता आन्दोलन के युग से लेकर वर्तमान युग तक के संघर्षों, व्यापारों, घटनाओं, समस्याओं और मूल्य चेतनाओं का सजीव चित्रण इसमें किया गया है । द्वितीय खण्ड में कवि ने आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत किया है ।

पंत जी की सामाजिक चेतना इस महाकाव्य में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनकी राय में व्यष्टि के स्थान पर समष्टि के बारे में विचार करना वर्तमान युग की अनिवार्यता है।

जब स्वदेश में आग लगी हो,
धू-धू-कर जलते हो सब घर,
तब किसको निज दुख[1] का रोना,
भाता ?

इसलिये कवियों को व्यक्तिवादी चिंतन छोड़कर समष्टि चेतना का वाहक बनना चाहिए। पंत जी की दृष्टि में "कवि युग प्रबुद्ध और नियति का ज्ञाता है[2]।" इसलिये उन्होंने कहा -

वैयक्तिक रुचियों को कर
सामूहिक रुचि में विकसित[3]।

कला को उन्होंने कला केलिये मात्र नहीं माना। उनकेलिये कला लोकमंगल की सिद्धि भी थी।

लक्ष्य कवि का न मात्र आनन्द, न रस ही उसकी अंतिम सिद्धि
x x x x
कला जन-भू का कर शृंगार, लोक जीवन को करे पवित्र[4]

इसलिये पंत ने कहा -

कवि मनीषि का कर्तव्य सनातन
जीवन मंगल का करना सुख सर्जन,
x x x x x x

---

1. लोकायतन, पृ.49
2. वही, पृ.220
3. वही, पृ.182

कवि मन को देना आलोक, जगत् को,
शांति प्रीति, आनंद ज्योति मंगल कर[1]।

वर्तमान समाज भौतिक वैभव के मद से उत्तेजित है, शोषक और शोषित में विभक्त है। एक ओर अन्ध भौतिकता का कर्कश स्वर है तो दूसरी ओर रिक्त तप त्याग विरति का रोदन है। "जाति पाँति, मृत रूढ़ि रीति से श्री हत" है हमारा समाज। पंत जी के मतानुसार इसका कारण यह है कि -

जाति पाँतियों में, देशों में,
वर्ग श्रेणियों में विभक्त जन
बाधक उनके योगक्षेम का,
गत संस्कारों का बौना मन[2]।

जनता का मन रूढ़ि रीतियों का वन है। वहाँ कटु जाति पाँति का तम गुम्फित है। छुआछूत की भावना से समाज का तन और मन क्षत विक्षत है। दारिद्र्य, दुःख और अशिक्षा से जनता पीड़ित है। अनाचार और महँगाई बढ़ी। साधारण जन सुख सुविधा से वंचित रहता है। परतंत्र देश से भी दुष्कर है स्वाधीन धरा का जीवन[3]। लोकायतन में पंतजी ने अपने इन्हीं विचारों को वाणी दी है।

---

1. लोकायतन, पृ.26
2. वही, पृ.50
3. वही, पृ.159

पूँजीवाद पर भी पंत ने इस महाकाव्य में विचार किया है । समस्त सम्पत्ति कुछ लोगों के अधीन है । अधिकांश लोग निर्धन और दुखी हैं -

संचित समस्त युग संपद,
धनपतियों में मुट्ठी भर,
अब मध्य निम्न वर्गों के
जन निर्धन से निर्धनतर[1] ।

हमारी आर्थिक पराधीनता का कारण यह वर्ग वैषम्य है । पंत जी ने यह मत प्रकट किया है कि हमारी आर्थिक चिंतन पद्धति को बदलना है नहीं तो हमारी योजनायें व्यर्थ हो जायेंगी । आर्थिक उन्नति केलिये गृह-उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए -

हरि ने तकली, चरखे, करघे
जुटा, मिरी - कर से संचालित
खोला गृह उद्योग शिविर था,
स्त्री जन के जीवन विकास हित[2] ।

आज सहयोग, ग्राम पंचायत आदि कोरा युग प्रहसन लगते हैं । मुट्ठी भर लोगों की सुविधा केलिये निरीह अगणित साधारण जन पिसते हैं । जन श्रम ही सच्ची संपत्ती है इसलिये क्षमा करने केलिये जनता को प्रेरणा देना आवश्यक है ।

1· लोकायतन, पृ·167
2· वही, पृ·67

ऋण पर्वत कन्धों पर धर कर, जीवन स्तर को उठाने केलिये प्रयत्न करनेवाले सरकार की आलोचना भी कवि ने इस में की है । नेताओं का चारित्रिक पतन हो गया है । उनमें पद लिप्सा बढी । जन सेवक अब शासक बनकर नगरों में सुख जीवन बिताते हैं -

सौधों में सधे, सुरक्षित,
नाता न जनों के दुख से ।
पकडे दाँतों पंजों से
भारत माँ का शव जर्जर
जन हित कारा वया भोगी
करते वसूल उसका कर ।[1]

वे जन रक्षक से भक्षक बन गये हैं ।

भारत के विभाजन पर भी इसमें विचार किया गया है । पंत जी ने विभाजन को "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धांत की पराजय मानी है । उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान में कोई खास अंतर नहीं है । प्रार्थना, दान, तीर्थाटन, उपवास, नियम, व्रत, साधन दोनों धर्मों में है । दोनों एकेश्वर वादी है । इसलिये कुछ भेद भाव रखना निरर्थक है । गाँधीजी ने कहा कि -

गीता कुरान दोनों ही जो हम न सुन सके सविनय,
तो व्यर्थ प्रार्थना करना, मेरा सीधा सा आशय है ।[2]

1· लोकायतन, पृ·160
2· वही, पृ·128

क्योंकि -

भारतवर्ष सब धर्मों की भू सबको हो यहाँ समन्वय[1]।

चीन के बर्बर आक्रमण के प्रति भी प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में कवि ने आक्रोश प्रकट किया है ।

इतिहास रहेगा साक्षी
प्राचीन पड़ोसी, सहचर
सांस्कृतिक शिष्य भारत का
जन-रक्त पात को तत्पर[2]।

पंत जी ने भारत की मुक्ति को विश्व की मुक्ति माना है । भारत के जीवन मंगल में निखिल भुवन के सब जीवों का हित रहता है । हमारी स्वतंत्रता विश्व एकता का सोपान है । पंत जी की मानवतावादी दृष्टि यहाँ देखी जा सकती है ।

प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में गाँधीजी के अतिरिक्त शेष सभी पात्र कल्पित हैं । गाँधीजी को उन्होंने लोक प्रगति का देवदूत और तीस कोटि जनता का नेता कहा है । गाँधीजी ने जड़वाद से ग्रस्त जग में अध्यात्म क्रांति का केतन फहराया, जन मन को व्यापक गम्भीर आस्था में संगठित कर दिया, भौतिक मूल्यों से पीड़ित संदिग्ध भू जन के सामने सत्य शिखा रख दी[3]।

लोकायतन, पृ॰128
2. वही, पृ॰175
3. वही, पृ॰140

भारत की तपोज्ज्वल शक्ति और उसका अहिंसा रूपी दिव्यास्त्र विश्व के अन्य देशों के लिये भी मार्गदर्शक है - यही पंत जी का विश्वास था ।

पशुबल केवल सामूहिक
संहार शक्ति से परिचित,
जीवन की शक्ति अहिंसा
रचना मंगल में रत नित[1] ।

गाँधीजी के अहिंसा सिद्धांत पर कवि को विश्वास रखते दिखाई पड़ता है ।

यंत्र युग के त्रस्त मानव को कवि का उपदेश था कि वैभव की मदिरा पीकर पागल मत बनो, क्योंकि नैतिक समृद्धि ही भू की निधि है ।

भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक पंत जी ने हमारी वर्तमान सांस्कृतिक गिरावट की ओर भी संकेत किया है, जब उन्होंने लिखा -

हम स्वाभिमान से विरहित,
पर भाषा जीवी बुध जन
माँगी विद्या पर गर्वित[2] ।

उपनिषदों की ज्योतिर्मय चेतना आज कहीं खो गई है । पर-संस्कृति और पर-भाषा को त्यागे बिना उन्नति और राष्ट्रीय एकता संभव नहीं ।

1· लोकायतन, पृ·140
2· वही, पृ·163

लोकायतन में कवि ने अपनी धार्मिक चेतना को भी प्रकट किया है। पुरोहित और पंडे स्वार्थान्ध है और वे अन्धविश्वासों का जाल बुनते हैं। वे जनता को नरक में ढकेल देते हैं, देश को अन्धकार में डालते हैं।

घृणित पाखण्डों की कर सृष्टि धर्म के ये लोभी बक्काल
बेच खा गए सत्य का दाय
खडे कर कर्म कांड कंकाल।[1]

विधवा की शोचनीय स्थिति ने कवि को सताया है।

नहीं जानती वह क्यों स्त्री के
सिर पर कालिख सा विधवापन,
बद्ध देह अर्पित समाज को,
मुक्त हृदय मन प्रभु का भाजन[2]।

लोकायतन में पंत की समन्वयवादी दृष्टि देखी जा सकती है। सुन्दरपुर गांव के पास काल्पनिक कलाकेन्द्र की स्थापना के मूल में उसकी समन्वयवादी दृष्टि है हम सब मानव कुटुम्ब के अवयव हैं जाति पाति वर्णों के विष से जन मन को विमुक्त कर, जड रूढि रीति के तम को मिटाकर हम को नव राष्ट्र का निर्माण करना है। इस प्रकार देखें तो सामाजिक चेतना की दृष्टि से लोकायतन स्वातंत्र्योत्तर युग का श्रेष्ठ और सफल महाकाव्य कहा जा सकता है।

---

1. लोकायतन, पृ.319
2. वही, पृ.67

18· आत्मजयी - कुँवरनारायण

आत्मजयी कठोपनिषद् पर आधारित प्रबन्धकाव्य है । पौराणिक कथा पर आधारित होने पर भी इसमें समकालीन समस्याओं पर विचार किया गया है । इस बात को स्पष्ट करते हुए प्रबन्धकाव्य की भूमिका में कवि ने इस प्रकार लिखा - कठोपनिषद से लिये गये नचिकेता के कथानक में मैं ने थोडा परिवर्तन किया है मूल कथा को बिना अधिक बिगडे ही उसे एक आधुनिक ढंग से देखा गया है, पौराणिक दिव्य कथा के रूप में नहीं' ।

नचिकेता का अपने पिता वाजश्रवा से जो मतभेद था वह नई और पुरानी पीढी के संघर्ष का प्रतीक है । नचिकेता नई पीढी का प्रतिनिधित्व करता है । वे नये जीवन बोध के पक्ष में हैं । इसलिये पुरानी पीढी का विरोध करते हैं -

मेरे पिता ! तुम और तुम्हारी दुनिया
एक दूसरे की थकी हुई प्रतिक्रिया में प्राणों से रूढ,
बासी सी लगती है । सीमित कुछ लोगों तक
तरसाओं सी लगती जीवन की अतुल राशि ।

नचिकेता जीवन में सार्थक मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहता है । क्योंकि गलत जीने से सही बातें भी गलत हो जाती हैं[2] ।"

पिता वाजश्रवा पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है । पुत्र उनकी पूँजीवादी मनस्थिति का विरोध करता है । नचिकेता कवि का अपना प्रतीक है।

1· आत्मजयी, पृ·13
2· वही, पृ·6

उपनिषद् के नचिकेता को मृत्यु का अभिशाप दिया गया था । लेकिन आत्मजयी के नचिकेता का शाप जीवन है ।

कुँवरनारायण का जीवन-दर्शन इस प्रबन्धकाव्य में देखा जा सकता है । जीवन केवल सुख का साधन नहीं । जीवन शरीर से संबन्धित है, किंतु शरीर सापेक्ष नहीं -

व्यक्ति दास ही नहीं देह का
स्वामी भी है ।
अनुशासित ही नहीं
मुक्त अनुशासक भी है इच्छाओं का[1] ।

युवा पीढी की एक खास मनोवृत्ति है मृत्यु चिंतन । नचिकेता के माध्यम से कवि ने इस को व्यक्त किया है । सामान्यत: मृत्यु निराशा की प्रेरिका है । लेकिन नचिकेता मृत्यु को, जीवन को नया अर्थ देनेवाली चेतना मानते हैं ।

एक दृष्टि चाहिए मुझे -
जीवन बच सके
अन्धेरा होने से - बस[2] ।

मृत्यु का सही अनुभव करके नचिकेता ने जीवन को जीत लिया है और इसी प्रकार अपने अस्तित्व को प्रमाणित किया है । प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य युवा पीढी को प्रेरणा देनेवाला है ।

1· आत्मजयी, पृ·76
2· वही, पृ·73

19. मानवेन्द्र - रघुवीर शरण मित्र

पं. नेहरू के जीवन चरित पर आधारित 40 सर्गों का महाकाव्य है 'मानवेन्द्र'। स्वातंत्र्य पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत की सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण इसमें मिलता है। कवि ने इसमें पं. नेहरू के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया है। नेहरूजी को राष्ट्रनायक, जनसेवक, स्वतंत्रता के सेनानी, मानवता के पुजारी आदि रूपों में चित्रित किया है।

नेहरूजी ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के पुनर्निर्माण में उनका योगदान अमूल्य है। वे कुशल राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक, समर्थ शासक और अच्छे लेखक भी थे।

भारत के प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने भारत को जिस तरह संवारा, उसके नवनिर्माण करके उसे जो उज्ज्वल रूप दिया, उस से सम्पूर्ण विश्व के अर्धविकसित और अविकसित देशों को एक नयी चेतना मिली।[1] नेहरूजी के इस विराट व्यक्तित्व की झलक 'मानवेन्द्र' में पायी जाती है।

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में पण्डितजी के जीवन तत्वों के वर्णन के साथ युग चेतना की किरणों का समावेश भी किया गया है। अतीत के प्रति श्रद्धा, वर्तमान के प्रति प्रसन्नता और भविष्य के प्रति मंगल कामना भी इसमें व्यक्त की गयी है।

---

1. मानवेन्द्र - भूमिका, पृ. 1

मिश्रजी के मतानुसार कर्म को उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक है क्योंकि "भोग उसका धर्म जो है कर्म रत । जो कर्म नहीं करते वे नपुंसक है । भोग विलासी व्यक्ति का जीवन निरर्थक है । कवि के इन शब्दों ने कर्म का महत्त्व बताया है ।

अँग्रेज़ों ने अपनी शोषण नीति और दमन नीति से "दास भारत को दीन भारत" कर दिया । हर तरह से हीन भारत कर दिया ।

दमन कि जिसमें दया न बिलकुल, जैसे वधशाला में
दमन कि जैसे रक्त तृषित को - होश न हो हाला में[1] ।

अँग्रेज़ों की कूटनीति कुछ इस प्रकार की थी कि जो भी क्रांति के गीत गाये उसकी वाणी काटना, जो स्वतंत्रता लेने निकले उसका शोणित चाटना, भारतीयों के मन को भी बन्दी कर लेना और हमारी संस्कृति भी हर लेना इससे भारत की वर्णाश्रम व्यवस्था की नींव हिल गयी । अँग्रेज़ों ने हमारी एकता नष्ट कर दी । इन बातों का स्मरण करते हुए मिश्रजी ने लिखा -

मिटती गयी एकता अपनी-अपनी ही भूलों से
हमने करी घृणा उपवन में - अपने ही फूलों से[2] ।

1· मानवेन्द्र, पृ·135

2· वही, पृ·150

इसका परिणाम यह हुआ कि -

तन बन्दी थे, मन बन्दी थे, सब थे आज्ञाकारी
अपना घर हो गया पराया, रोती थी लाचारी ।[1]

पराधीन भारतमाता की आँसू पोंछने केलिए जिस प्रकार जवाहर ने दृढ संकल्प लिया उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है -

मुझे दुलार पुकार रही है - माता रोती रोती ।
xx xx xx
मुझको नींद न आती कमला, मेरा धीरज छूटा
मुझे क्रोध आता है उस पर, जिसने भारत लूटा ।।[2]

देश मुक्ति केलिए सभी प्रकार की यंत्रणाएँ सहने केलिये जवाहर तैयार हो गये । उनके भाषण से आग फूकती थी । उन्होंने जनमानस को सर्वस्व बलिदान कर स्वतंत्रता प्राप्त करने केलिये प्रेरित किया ।

बापू से मुलाकात, बापू द्वारा कांग्रेस के नेतृत्व का दायित्व नेहरूजी को सौंप देना, खादी का प्रचार, कृषकों की दशा सुधारने केलिये ज़मीन्दारी प्रथा उन्मूलन आन्दोलन, विदेशी साधनों का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक कानून तोड़ना, गिरफ्तारी, द्वितीय विश्व,"भारत छोड़ो" आन्दोलन, स्वतंत्रता प्राप्ति, देश विभाजन आदि समस्त घटनाओं एवं प्रसंगों का चित्रण इस महाकाव्य में मिलता है ।

---

1. मानवेन्द्र, पृ.158
2. वही, पृ.165

जवाहर की पत्नी कमला को कवि ने उच्चादर्शों वाली महिला के रूप में चित्रित किया है। पति की देश-सेवा के मार्ग पर उन्होंने बाधा नहीं बननी चाही। और "कमला बन्धन नहीं राह में, कमला सिद्धि तुम्हारी"[1] कहकर उन्होंने पति को प्रेरणा भी दी। "प्रियतम रण में, मैं क्यों घर में"[2] सोचकर ध्वजा उठाकर वे स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़ी।

मित्र जी ने स्वाधीन भारत को जनता की सम्पदा मानी है। उनकी दृष्टि में सिद्धि और साधना जनता ही है।

मुक्ति का स्वागत नये इतिहास मे है,
यह नया इतिहास बदला या पुरातन फिर नया है,
सिद्धि जनता, साधना जनता, प्रजा राजा बनी है
यह सभी का देश है अब, राज्य है इस पर सभी का।
xx xx xx
मन्दिरों में देवताओं की नयी आराधना यह,
शक्ति से, श्रम से, हृदय से, बुद्धि से, शाश्वत स्वरों से[3]।

देश की आर्थिक विषमता को दूर करना चाहिए। कृषकों की दशा सुधारने केलिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करना आवश्यक है। किसानों की दुर्दशा ने कवि को सताया। शोषण का विरोध करते हुए मित्रजी ने लिखा -

---

1. मानवेन्द्र, पृ. 168
2. वही, पृ. 262
3. वही, पृ. 512-513

शोषण करते हैं समाज का - शोषक पूंजीवादी ।
इनकेलिये जोतता बोता-मौन कृषक फरियादी ।।
रोता हैकिसान भारत का, पूंजीपति हंसता है ।
महल बनानेवाला भोला - कूडे में बसता है[1] ।

इन पंक्तियों में मिश्रजी ने तीखे शब्दों में पूंजीपतियों की आलोचना भी की है ।

साम्प्रदायिक दंगों से देश व्यथित है। स्वतंत्रता के दीप जले तो साथ ही रक्त की धारा बही । काश्मीर पर हुआ पाक आक्रमण का भारतीय सेनाओं ने सामना किया । बापू के निधन में "युग का शिव सो गया शांति से-सूर्य रश्मियां भागीं"[2] कहकर कवि ने अपना दुख प्रकट किया ।

नेहरूजी के "पंचशील" और "सह-अस्तित्व" के सिद्धांत को मानवोत्थान के चिरन्तन सिद्धांत के रूप में कवि ने इस प्रबन्ध काव्य में प्रस्तुत किया है ।

भगतसिंह, बिस्मिल, अशफाक, राजगुरु, सुखदेव, लाहडी, चन्द्रशेखर आज़ाद प्रभृति देश-स्नेहियों और शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करके कवि ने अपनी देश-भक्ति को प्रकटकिया है ।

चेतना आई शहीदों की चिता से,
रक्त की हर बूंद बिजली बन गई थी ।
फांसियों से आग फैली हर दिशा में[3] ।

---

1. मानवेन्द्र, पृ.214
2. वही, पृ.603
3. वही, पृ.347

हमारी स्वतंत्रता अमर शहीदों की छाती है, बलिदानों की श्री है। कोटि-कोटि लालों की निधि है, अभिमानों की श्री है। यह बड़ी तपस्या का फल है। इसलिये हमको इसका संरक्षण करना चाहिए।

विश्व नागरिकता की भावना तथा सह-अस्तित्व के जन्मदाता होने के नाते नेहरूजी केवल भारत की ही नहीं, वरन् समस्त विश्व की विभूति थे। अपने प्रबन्धकाव्य में मिश्रजी ने यह सिद्ध भी किया है। नेहरूजी के विराट व्यक्तित्व को अंकित करने के साथ कवि ने स्वातंत्र्य पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की सही आलोचना भी प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष

इस अध्याय में आलोच्य युग के प्रमुख प्रबन्ध काव्यों में पायी जानेवाली सामाजिक चेतना का गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आ गया। इसके साथ कवियों के दृष्टिकोण और उनकी रचनाओं में जो नयी चेतना उभरकर आयी, स्वतंत्रता के बाद वह पूर्ण रूप से विकसित हो गयी। स्वातंत्र्योत्तर युग में प्रबन्धकाव्यों की रचना अधिक मात्रा में हुई है।

महाकाव्य सम्बन्धी प्राचीन मान्यताएँ काल की आँधी में विलुप्त हो रही है। नायक सम्बन्धी धारणा में परिवर्तन आ गया है। आदर्श चरित्र ही महान होते हैं, ऐसी धारणा स्वातंत्र्योत्तर कवियों में नहीं है। जाति, वर्ण या कुल नायक को महान नहीं बनाता। उसके अंतर्गत प्रोज्ज्वलित मानवीय गुणों से वे महान बनते हैं। कर्ण, एकलव्य आदि ऐसे नायक हैं। ऊर्मिला, कैकेयी, पार्वती जैसी नारियाँ भी नायिका बन गयी।

आलोच्य युग के अधिकांश प्रबन्धकाव्यों की रचना पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर हुई है । भारतीय साहित्य पर रामायण और महाभारत का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । समसामयिक कथानकों पर आधारित प्रबन्धकाव्य भी है । जननायक, मानवेन्द्र, लोकायतन, ज्योति पुरुष आदि ऐसी रचनायें है ।

स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में पौराणिक चरित्रों को युगानुकूल व्यक्तित्व प्रदान किया गया है । युधिष्ठर को राज्यलोलुप, द्यूतासक्त और कामुक कहा । कर्ण स्वाभिमानी, रण कुशल, दानवीर, आदर्श मित्र, धर्मनिष्ठ एवं दृढ़प्रतिज्ञ और गुरुभक्त है । "पार्वती" आदि शक्ति और विश्व के सृजन का मूल कारण है । "कैकेयी" राष्ट्र भक्ति की साकार मूर्ति है ।

"मेधावी" में मानव समाज के विकास का चरित्र अंकित करके विधवा समस्या, नारी की स्थिति, शोषण, पूंजीवाद आदि सामयिक समस्याओं पर विचार किया गया है । "जननायक" और "मानवेन्द्र" में गाँधीजी और नेहरू के जीवन चरित्र को अंकित करने के साथ ही स्वातंत्र्य पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत का इतिहास भी चित्रित किया गया है । "अंगराज" और "रश्मिरथी" महाभारत के कर्ण के जीवन पर आधारित प्रबन्धकाव्य है । अंगराजकार ने कर्ण को उदार, शूर-वीर, मातृभक्त, गुरुभक्त आदि रूपों में चित्रित करके उनके चरित्र को उज्ज्वल स्थापित किया है । "रश्मिरथी" में कर्ण को नायक बनाकर दिनकर ने यह सिद्ध किया है कि "नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, वंश, धन, धाम नहीं ।"

"कैकेयी" में प्रभातजी का मानवतावादी दृष्टिकोण देखा जा सकता है । "अन्धा युग", "संशय की एक रात", "एक कंठ विषपायी", "कनुप्रिया" और "सत्य की जीत" एवं "रश्मिरथी" में युद्ध की समस्या पर

विचार किया गया है । युद्ध की विभीषिकाओं को चित्रित करके मानव वंश को इसके विरुद्ध जागृत कराना इन रचनाओं का उद्देश्य है । युद्ध ही शांति का एकमात्र साधन ऐसा विश्वास इन कवियों में नहीं । लेकिन कुछ संदर्भों में युद्ध अनिवार्य बन जाता है ।

'उर्वशी' सनातन नारी के रूप में चित्रित की गयी है । "ज्योति पुरुष" और "रामराज्य" समष्टि चेतना के महाकाव्य हैं । पार्वतीकार ने मानवता को सबसे श्रेष्ठ धर्म कहा है । भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का सजीव चित्र "लोकायतन" में मिलता है । पंतजी का उदात्त जीवन दर्शन और उनकी विश्वबन्धुत्व की भावना इसमें झलकती है । पंतजी की समन्वयवादी दृष्टि इसमें देखी जा सकती है । जीवन के शाश्वत मूल्यों की खोज "आत्मजयी" में देखी जा सकती है । नचिकेता और वाजश्रवा के बीच जो मतभेद हुआ, वह नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है ।

आलोच्य युग के महाकाव्यों में मानवतावादी जीवन दृष्टि स्पष्ट परिलक्षित होती है । स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में युग धर्म का सम्यक निर्वाह हुआ है ।

SSSSSSSSSSSSSS

अध्याय - छः

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्राप्त सामाजिक चेतना का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्राप्त सामाजिक चेतना का मूल्यांकन

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के तृतीय, चतुर्थ और पंचम - तीन अध्यायों में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन किया गया है। विवेच्य युगीन कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के उपरांत यह उचित महसूस हुआ कि इसका मूल्यांकन करें।

राजनैतिक क्षेत्र के समान साहित्य के क्षेत्र में भी भारत की स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। भारतेन्दु युग से लेकर स्वातंत्र्य पूर्व लिखी गयी कविताओं का मुख्य स्वर दासता से देश की मुक्ति का स्वर था। स्वातंत्र्योत्तर युग की कविताओं में देश के नव-निर्माण का स्वर प्रमुख रूप से सुनाई पड़ता है।

काव्य विषय का आधार मानव जीवन ही है । कवि समाज का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी होता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश भर में नयी सामाजिक चेतना का उदय हुआ । अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की दासता से मुक्ति मिलने के साथ साथ प्रजातंत्र की स्थापना भी हुई । राजनीतिक क्षेत्र में जो परिवर्तन आया, जो घटनायें घटीं, सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में जो उतार-चढाव हुआ, आर्थिक क्षेत्र में जिस वर्ग वैषम्य का भूत भीषण रूप में मौजूद है, इन सबका प्रभाव कवियों पर और उनकी रचनाओं पर पडना स्वाभाविक है ।

परिवेश का गहरा प्रभाव भारतभूषण अग्रवाल, नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, त्रिलोचन, नरेन्द्र शर्मा, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा प्रभृति कवियों पर ज्यादा पडा है । पूर्ववर्ती काव्यधाराओं के पंत, सोहनलाल द्विवेदी, बच्चन, शमशेर, दिनकर, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवि भी विवेच्य धारा में आ चुके हैं । इनके अतिरिक्त कुंवरनारायण और भवानीप्रसाद मिश्र को भी प्रस्तुत धारा के अंतर्गत माना गया है ।

कविता के क्षेत्र में पंत छायावाद के प्रवर्तक कवियों में एक माना जाता है । लेकिन उनकी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में युगाभिव्यक्ति का तीखा स्वर मिलता है । इसी प्रकार बच्चन हालावादी कवि माना जाता है । लेकिन उनकी विवेच्य युगीन कविताओं में पूरा भारतीय समाज उभरकर सामने आता है । दिनकर की कवितायें समाज की वाणी कही जा सकती है । समस्याओं के चक्रव्यूह में फंसे आधुनिक मनुष्य को लेकर कुंवरनारायण और "स्वातंत्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड से गुजरा है, जनता पर उनकी जो प्रतिक्रिया हुई है, उसकी मानसिक आशा, निराशा आकांक्षा और आक्रोश के भावों को अपनी

कविताओं में साकार करके सोहनलाल द्विवेदी भी इस श्रेणी में आता है। व्यक्ति सीमा में ही सामाजिक चेतना को आत्मसात् करने के कारण शमशेर को इस धारा में स्थान मिला है। केदार की कवितायें एक समाज सजग दायित्व प्रेरित कवि की अभिव्यक्तियाँ कही जा सकती है। श्रीकांत वर्मा युवा पीढी का प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है। माथुर की कवितायें सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली रचनायें है। त्रिलोचन मूलत: धरती का कवि है। अज्ञेय की स्वातंत्र्योत्तर कवितायें युग सत्य से साक्षात्कार करानेवाली है। नागार्जुन, भारतभूषण, और सर्वेश्वर की कवितायें व्यंग्य प्रधान है। नरेन्द्र शर्मा और भवानीप्रसाद की कवितायें जीवन की वास्तविकताओं को अंकित करनेवाली है।

इन कवियों ने समाज का यथार्थ चित्रण करना अपना दायित्व समझा। समाज में घटनेवाली घटनाओं एवं समस्याओं को उन्होंने अपनी वाणी का विषय बनाया। कभी सीधे ढंग से, कभी प्रतीकों के माध्यम से तो कभी व्यंग्य रूप से। टूटते पारिवारिक सम्बन्ध, वैवाहिक समस्यायें, बेकारी, चोरबाज़ारी, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, जीवन की यांत्रिकता, बढती हुई महँगाई, भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय, वर्ग वैषम्य, मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक गिरावट, शिक्षित बेकारों की कुंठा, राजनीति के पतनोन्मुख स्वरूप आदि वर्तमान समाज की सारी छोटी-बडी बातें इस युग में कविता का विषय बनाया गया। इतना किसी अन्य युग की कविता में नहीं देखा जा सकता।

स्वातंत्र्योत्तर कविता में राजनीतिक चेतना बडी तेज़ी से उभरी है। आज हमारा सारा सामाजिक जीवन राजनीति से आक्रांत है। "नई दिल्ली", "दक्षिण के मन्दिर", "नव रामायण", "दीवाली 1918" "कारवाँ", "आईन्स्टीन के प्रति" आदि कविताओं में प्रभाकर माचवे ने

वर्तमान राजनीति पर व्यंग्य प्रहार किया है । केदार ने "नेता", "नेताशाही से", "मंत्री मास्टर-संवाद", "फगुआ का व्यंग्य" जैसी कविताओं में नेताओं की चरित्रहीनता पर व्यंग्यकिया है । शासन शयनागार में, सोई-खोयी शाँहशाही रौनक की झनकार में सुन्दर सुन्दर सपने देखनेवाले नेताओं से केदार ने चेतावनी दी हैकि "मन्त्रियो मुस्कार से या शान से शासन न बदलेगा ।" आज पोस्टर लगाना और भाषण भूकना माथुर की दृष्टि में नेता का काम है । उन्होंने नेता को "गैस भरा गुब्बारा" कहा । "नेता", "नेता-अभिनेता" जैसी कविताओं में नरेन्द्र शर्मा ने वर्तमान राजनीति पर विचार किया है । भवानीप्रसाद की "मन्त्रियों का स्वागत", "जन सेवा" , "राजनयिक", "प्रजातंत्र" आदि इसी कोटि की है । "बहसों का मज़ा", "अनुत्तरदायी", "संसद-भवन" आदि कविताओं में कोरी बहसों की निरर्थकता, नेताओं का उत्तरदायित्वहीन व्यवहार, संसद के क्रिया कलाप आदि पर व्यंग्यकिया गया है । वोट पाने केलिये जनता के सामने नये नये नाटक रचनेवाले राजनीतिक पार्टियों की, कवि ने हंसी उड़ाई है। लोकतंत्र के नाम पर मनमानी करनेवाले वर्तमान युग के राजनीतिज्ञों को कवि ने अपने व्यंग्य बाण का शिकार बनाया है । शासकों की स्वार्थता पर उन्होंने प्रहार किया है ।

श्रीकांत वर्मा की "एक दिन", "अंतिम वक्तव्य", "समाधि लेख" आदि कवितायें राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । उनकी "आत्मायें / राजनीतिज्ञों की / बिल्लियों की तरह / मरी पड़ी है ।" और "कुछ लोग सारा समय / कसमें खायेंगे लोकतंत्र की" और सर्वेश्वर की -"लोकतंत्र को जूते की तरह / लाठी में लटकाये / भागे जा रहे हैं सभी / सीना फुलाये" जैसी पंक्तियाँ लोकतंत्र पर विश्वास खो जाने का आभास देती है ।

"जब सरकारें पलटती है", दर्द से करवट बदलते" जनता का स्वर शमशेर की कविता में है । सर्वेश्वर की "यह खिड़की" कविता वर्तमान राजनीति पर तीखा व्यंग्य है । "पंचधातु", "बुद्धिजीवि" आदि भी इसी कोटि की कवितायें है । मुकुट धारण करके झूमनेवाले विज्ञापनबाज शासक पर व्यंग्य है "स्थिति यही है" कविता । उनकी "कुछ सीखो गिरगिट से / जैसी शाख वैसा रंग / जीने का यही है सही ढंग" जैसी पंक्तियों में जो व्यंग्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

भारतभूषण की "परिदृश्य - 1967", "चीरफाड" आदि कवितायें गाँधीजी को टूरिस्ट माननेवाली दुनिया पर तीखा व्यंग्य है । सत्ता की कुर्सी के लिये लडनेवालों का सही चित्र भारतभूषण ने खींचा है। "हक की पुकार" और "भारत का यह रेशमी नगर" दिनकर की दो कवितायें है जिनके द्वारा कवि ने वर्तमान राजनीति पर व्यंग्य प्रहार किया है । "रोटी और स्वाधीनता", "पहली वर्षगाँठ", "एनार्की" आदि भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । "परशुराम की प्रतीक्षा" संग्रह की कवितायें भी राजनीतिक चेतना से समृद्ध है जिनके द्वारा कवि ने स्वार्थी राजनेताओं के विरुद्ध खडे होकर अपने अधिकारों को खींच पाने केलिए आह्वान किया है । ये कवितायें नेताओं को चेतावनी भी देती है कि "अब देश की हवा बदल गयी है, अनशन से काम नहीं चलेगा ।" कवि को शासकों का दल चोर नज़र आता है । क्योंकि आज के नेता मंत्री पद में रहने पर खूब "करप्शन" करता है, पर मन्त्री के पद से हट जाने पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध खूब चिल्लाता है ।

सोहनलाल द्विवेदी की "प्रयाण गीत", "मुक्ति पर्व", "झंडे फहरानेवाले", "दिल्ली दरबार", "यह कैसा जनतंत्र" जैसी कवितायें भी

राजनीतिक चेतना की दृष्टि से प्रमुख है । "राष्ट्र-ध्वजा", "जय-केतन", "पन्द्रह आगस्त" आदि भी इसी कोटि में आती हैं । उनकी राय में गणतंत्र मनानेवाले सुधारवादी नेताओं को स्वयं सुधारने का समय आ गया है । दिल्ली के दरबार में जनता का विश्वास खो गया है । इसलिये कवि ने, सिंहासन का मोह छोड़कर, शासकों को जनता से मिलकर नवयुग का निर्माण करने केलिये आह्वान किया है ।

"खजुर", "गणतंत्र दिवस", "महागर्दभ", "कलयुग का कोरस", "राष्ट्रपिता के समक्ष", "प्रजातंत्र और परिवारतंत्र", "शहीद की माँ" जैसी कविताओं में बच्चन और "जनवरी छब्बीस", "दिया हुआ न पाया हुआ" जैसे कविताओं में अज्ञेय ने वर्तमान राजनीति पर विचार किया है । नागार्जुन की "भूस का पुतला", "प्रेत का बयान", "स्वदेशी शासक", "अमलेन्दु एम॰एल॰ए॰", "चीलों की चली बारात" जैसी कवितायें इसी कोटि की हैं जिनमें कवि ने हवाई निरीक्षण से पब्लिक का उद्धार करनेवाली राजनीति की हँसी उड़ाई है ।

विवेच्य युग में कुँवरनारायण और त्रिलोचन ने इस ओर कम ध्यान दिया है ।

दो विश्वमहायुद्ध, चीन और पाकिस्तान का आक्रमण और तीसरे विश्वयुद्ध की भीषणता से प्रभावित होकर विवेच्य काल की कविता में युद्ध के बारे में काफी सोच-विचार किया गया है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वियतनाम के युद्ध ने कवियों को अधिक प्रभावित किया ।

सन् 1962 में चीन से और सन् 1965 एवं 1971 में पाकिस्तान से जो युद्ध हुआ उनसे भारतीय जनता की मनस्थिति में कुछ परिवर्तन आया। युद्धों के कारण हमारी अर्थव्यवस्था बिगड गयी ।

युद्ध-विरोधी स्वर एवं शांति का आह्वान स्वातंत्र्योत्तर युग की दूसरी उपलब्धि है । विवेच्य युग के कवियों ने इस समस्या पर विशेष रूप से विचार किया है । युद्ध के स्थान पर इन कवियों ने शांति को स्थापित करना चाहा । जैसे नागार्जुन ने लिखा "हटे दनुज दल / मिटे अमंगल / जल, थल, नभ सर्वत्र शांति हो" यही इस युग के कवियों की प्रतीक्षा थी ।

माथुर ने "अग्नि की शव परीक्षा", "अंतिम आत्महत्या", "एक सितम्बर 1966" आदि कविताओं में युद्ध के दुष्परिणामों को चित्रित किया है । "मैन्हटन" शांति का सन्देश देता है । "जब जगत को चाहिए फुलवारियां / हो रही तब युद्ध की तैयारियां" । इससे कवि दुखित थे ।

"गृद्ध लगे मंडराने" कविता में नरेन्द्र शर्मा ने युद्ध का विरोध एवं शांति का आह्वान किया है । लेकिन उन्होंने भारत पर आक्रमण करनेवाले चीन की कटु आलोचना की है । "नये चीन के नाम" में कवि ने इस बात पर आशा प्रकट की है कि पंचशील और अहिंसा के मार्ग से भारत विश्व को जीतेगा । भवानीप्रसाद ने "वे लड रहे हैं" में पाकिस्तान के आक्रमण पर विचार किया है । "पीस पेगोडा", "कलाकार और सिपाही" जैसी कविताओं में सर्वेश्वर ने युद्धकामी संस्कृति और शांतिकामी आडम्बर पर व्यंग्य किया है । "आटे की चिडिया" भी इस कोटि में आती है ।

विवेच्य काल में दिनकर ने चीनी आक्रमण पर ज्यादा विचार किया है। "परशुराम की प्रतीक्षा", "जनता जगी हुई है", "लोहे के मर्द", "आज कसौटी पर गाँधी की आग है", "आपद्धर्म", "पाद टिप्पणी", "अहिंसावादी का युद्ध गीत", "इतिहास का न्याय" आदि इसी प्रकार की कवितायें हैं। दिनकर युद्ध-विरोधी थे लेकिन उन्होंने युद्ध को आपद्धर्म माना था। वर्तमान शांति-सम्मेलनों पर कवि को विश्वास नहीं था। "शांतिवादी" कविता में उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है।

बच्चन ने युद्ध त्रस्त संसार को प्रेम का सन्देश दिया, अज्ञेय ने मानवता का सन्देश दिया। "हिरोशिमा" में अणु की विनाशकारी शक्ति की ओर संकेत करके अज्ञेय ने मानवता का ध्यान इस की ओर आकर्षित किया है। नागार्जुन ने भी अणु की विनाशकारी शक्ति की ओर समाज को सचेत बनाने का प्रयत्न किया है। दिनकर की "शबनम की जंजीर" कविता भी इस प्रकार की है।

केदार की "काश्मीर", "उत्तरी वियतनाम" जैसी कवितायें भी युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं। भवानी प्रसाद की कविताओं का मुख्य स्वर शांति और स्नेह का है। तिब्बत पर हमला करनेवाले चीन की मनुष्यत्वहीनता पर उन्होंने "तिब्बत में चीन" कविता में क्रोध प्रकट किया है। "शांति केलिये दूसरों को बदलने के पहले अपने आपको बदलना आवश्यक है"। "शांति" कविता में मिश्रजी ने इस विचार को प्रकट किया है। शस्त्र के सहारे शांति नहीं स्थापित की जा सकती - यही उन का विश्वास था। "युद्ध और विलय" श्रीकांत वर्मा की व्यंग्य कविता है जिसमें उन्होंने युद्ध के बारे में विचार किया है।

सर्वेश्वर की "आटे की चिड़िया" युद्ध की करुणा और विडम्बना का उद्घोष करनेवाली कविता है । "लड़ाई का इन्तज़ाम" में उन्होंने युद्ध पर व्यंग्य किया है । भारतभूषण की कविताओं में लोकमंगल और समष्टि कल्याण की भावना प्रबल है । एक तीसरे विश्वयुद्ध की कल्पना मात्र से कवि भयचकित हो जाते हैं । इसलिये उन्होंने अणु परीक्षण का विरोध करने के साथ साथ संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर शांति की स्थापना करने पर ज़ोर दिया । "रश्मिरथी" में दिनकर ने युद्ध को पशुता का चिह्न कहा है । उन्होंने विज्ञान की अमंगलकारी शक्ति के आगे मंगलकारिणी कला को प्रतिष्ठित करना चाहा । शांति के नाम पर चिल्लानेवाले शांतिवादियों पर कवि ने व्यंग्य किया है । तीसरे विश्वयुद्ध के भय और आतंक से मानवता को बचाने केलिये पंत ने "विश्वमानव" की कल्पना की है ।

"एटम बम" में नागार्जुन ने युद्ध के सर्वनाश का चित्र प्रस्तुत किया है । "जयति कोरिया देश", "धरती" आदि भी इस प्रकार की कवितायें हैं । वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य को "यंत्र का दास" बना दिया है । इसलिये इस गरीब धरती के निहत्थे आदमियों की ओर से सर्वेश्वर ने कहा कि "जब सारे अस्त्र जवाब दे जायें / तब उस पत्थर से / वे इनसानियत का सिर फोड़ें / जिसे वे चाँद से लाये हैं ।"

"अन्धा युग", "कनुप्रिया", "संशय की एक रात", "एक कंठ विषपायी" आदि महाकाव्यों में भी युद्ध के बारे में गम्भीर चिंतन उपस्थित किया गया है । नरेश मेहता की दृष्टि में शांति का मार्ग युद्ध नहीं युद्ध के बाद शांति होगी यह मिथ्या धारणा है । इस कारण से उन्होंने युद्ध को एक बड़ी चुनौती के रूप में स्वीकार किया है । फिर भी स्वत्व और अधिकार अर्जन के अंतिम मार्ग के रूप में युद्ध को स्वीकार करना है ।

"अन्धा युग" में युद्ध की विनाशकारी भयावहता पर प्रकाश डाला गया है । युद्ध की अंतिम परिणति मानवता का नाश है । भारती जी ने अणु के भयानक परिणामों की ओर मानवता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "अणु का प्रयोग होगी तो आगे आनेवाली सदियों तक पृथ्वी पर रसमय वनस्पतियां नहीं होगी । शिशु विकलांग होंगे और सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ।"

विवेच्य युग की कविता की अन्य विशेषता यह है कि अणु की अग्नि गरज में भी उसमें मानवता की ध्वनि उठती है और उठायी जाती है । मानवतावादी चेतना इतने व्यापक रूप में किसी अन्य युग की कविता में नहीं मिलेगी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शहरीकरण बहुत तेज़ी से हो रहा है । युवा पीढी गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर दौडी चली जा रही हैं । गाँव किसी भी राष्ट्र का मेरुदण्ड है । शहरी जीवन ने मनुष्य को निस्तेज बना दिया है । शोषण के कारण भारतीय गाँवों की स्थिति शोचनीय बन गयी है । नगरों में सारी सुविधायें केंद्रित हो गयी है । यह भी गाँवों के पिछडेपन का कारण बना । यांत्रिक संस्कृति के कारण मानव जीवन आज एक पहेली बन गया है।

आज़ादी के बाद गाँवों के विकास केलिए कई योजनायें बनायी गयीं । लेकिन इसका लाभ किसान मजदूर तक नहीं पहुँचा । केदार ने "सुनो", "वास्तव में" जैसी कविताओं में और भारत भूषण ने "परिदृश्य:1967" में योजनाओं की निरर्थकता की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया है ।

माथुर की "ढाकवनी" ग्राम की समृद्धि और ग्राम वासियों की गरीबी व्यक्त करनेवाली है । "चाँदनी: बिखरी हुई" भी ग्रामीण चेतना को व्यक्त करनेवाली कविता है । उनकी "अन्धेरी दुनिया" बीस भागों में विभाजित एक लम्बी कविता है जिसमें कवि ने नागरिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है ।

विवेच्य युग में श्रीकांत वर्मा की कविताओं में नागरिक जीवन की अभिव्यक्ति ज्यादा मिलती है । "बुझा शहर", "माँ की आँखें" "दिनारंभ" जैसी कविताओं में नगर पूर्ण रूप में मौजूद होता है । उनकेलिये शहर निर्मम और निर्विकार है । सर्वेश्वर की "पोस्टर और आदमी" इस दृष्टि से प्रभाव शाली कविता है । इसमें पोस्टरों के मुकाबले आदमी के बौने व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत किया गया है । पोस्टर के माध्यम से कवि मनुष्य का नया चेहरा उभारता है जो नगर बोध का परिणाम है । "इस अपरिचित नगर में", "इस मृत नगर में" आदि कवितायें भी इसी प्रकार की है ।

इस दृष्टि से अन्य महत्वपूर्ण कविता भारतभूषण की "विदेह" है जो नागरिक जीवन की जड़ता पर प्रकाश डालती है । यांत्रिक जीवन की ऊब और दर्द यह कविता व्यक्त करती है ।

पंतजी यंत्रों का मानवीकरण करने के पक्ष में थे । उन्होंने भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की बात भी कही है । शहरी जीवन ने मनुष्य को जिस प्रकार व्यक्तिवादी बना दिया है उसका चित्र बच्चन की कवितायें देती हैं । उनकी "मांस का फर्नीचर, "इनसान और कुत्ते" "स्वाध्यायकक्ष में बसंत" आदि इसी प्रकार की कवितायें हैं । दिनकर की "हक की पुकार" "भारत का यह रेशमी नगर" आदि में भी नगर का

चित्र मिलता है । अज्ञेय ने "साँप" के प्रतीक द्वारा वर्तमान नागरिक सभ्यता की कटु आलोचना की है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता की अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है मध्यवर्गीय बेचैनी का चित्रण, स्त्री के प्रति उदार दृष्टिकोण, सर्वहारा के प्रति विशेष सहानुभूति आदि । विवेच्य युग के अधिकांश कवि मध्यवर्ग के व्यक्ति हैं । भारत भूषण की "विदेह" कविता अल्पवेतन भोगी मध्यवर्गीय क्लर्क का चित्र उपस्थित करती है । 'सिर दफ्तर में, हाथ बस में, आँखें फाइलों में, मुँह टेलीफोन में और पैर वयू में छोड़कर विदेह होकर घर आनेवाले क्लर्क' हिन्दी कविता में अन्यत्र नहीं मिलेगा । भारतभूषण के अलावा बच्चन की "स्वाध्यायकक्ष में बसंत" कविता इसी प्रकार का चित्र प्रस्तुत करती है । बच्चन की "भूखे की पुकार", "मरण भंगियों का गीत", अंतर्मुदित, "निरा बिलायती स्पंज हूँ" आदि भी मध्यवर्गीय आदमी के तप्त जीवन का यथार्थ परिचय देनेवाली कवितायें हैं । जीवनहीन मशीन बनती मध्यवर्ग की उद्विग्नताओं का सजीव चित्र माथुर की कविता में भी मिलता है । उदा: "मंत्री मास्टर संवाद" । आधुनिक "उदास मनुष्य" और "बेकार ग्रेजुएट" श्रीकांत वर्मा की कविताओं में जीवित रहते हैं ।

विवेच्य युगीन कवियों ने नारी को समाज के प्रमुख अङ्ग के रूप में स्वीकार किया है । उनकेलिये नारी जीवन प्रदायिनी शक्ति है । स्वतंत्र भारत में स्त्री का आत्मबल उद्दीप्त हुआ ।

"प्रभात" जी ने कैकेयी में स्त्री को "महाशक्ति" कहकर, "पार्वती"कार ने स्त्री को हमारी संस्कृति की कसौटी कहकर और नरेन्द्र शर्मा ने नारी को नर की आदि शक्ति कहकर उसकी गरिमा बढाने का प्रयत्न किया है ।

"युग युग से नर का एकाधिपत्य भोगनेवाली" नारी के प्रति प्रभाकर माचवे ने सहानुभूति प्रकट की । "कैकेयी", "उर्मिला", "पार्वती", "एक कंठ विषपायी", "कनुप्रिया", "उर्वशी" आदि महाकाव्य नारी की महत्ता की प्रतिष्ठा करनेवाली रचनायें हैं जो स्वातंत्र्योत्तर कविता की उपलब्धि है । दिनकर ने "उर्वशी" में चिरंतन नारी की कल्पना की है । वे नर और नारी को पुरुष और प्रकृति मानते थे ।

समाजवाद की स्थापना करने की उत्कट अभिलाषा विवेच्य युगीन कविताओं की एक महत्व पूर्ण विशेषता एवं उपलब्धि कही जा सकती है जो इतनी तीव्रता के साथ अन्य किसी भी युग की कविता में नहीं दिखाई पड़ती है । स्वातंत्र्य पूर्व कविताओं में मात्र आर्थिक समानता कवियों का लक्ष्य रहा । वह कोरे मार्क्सवाद का अनुकरण था । लेकिन स्वातंत्र्योत्तर कविता में समानता से तात्पर्य मात्र आर्थिक समानता नहीं अपितु हर प्रकार की समानता है; व्यक्ति को अपनी शक्तियों और गुणों का विकास करने का समान अवसर मिलना है । धर्म, अर्थ, जाति के आधार पर किये जानेवाले भेद भाव का विरोध है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता की एक प्रमुख उपलब्धि यह है कि इस युग की कविता ने वादों के जाल से मुक्त होकर स्वतंत्र और यथार्थ अभिव्यक्ति पर बल दिया । मतवादों एवं सिद्धांतों के प्रचार से हटकर इस युग के कवियों ने युगीन यथार्थ को चित्रण करना अपना कर्तव्य समझा । वादों के जाल में न फँसकर स्वातंत्र्योत्तर कविता युग जीवन से चेतना ग्रहण करके आगे बढ़ी । उनके प्रभाव का स्रोत सममामयिक परिस्थितियाँ और घटनायें हैं, कोई सिद्धांत या वाद नहीं ।

नागार्जुन की कवितायें युग बोध की कवितायें हैं । शोषित वर्ग के प्रति उनकी कविताओं में गहरी संवेदना होती है । उनकी कविताओं में मार्क्स और बुद्ध का प्रभाव देखा जा सकता है । भारत भूषण ने यह स्वीकार किया है कि "मैं मार्क्सवादियों प्रगतिवादियों के दल में राजनीति के दरवाज़े से नहीं समाज दर्शन के दरवाज़े से पहुँचा था । शायद आज भी देश में कोई सम्यक् दर्शन विकसित नहीं हो सका है । मतों सिद्धांतों वादों और नारों के साम्प्रतिक क्रांति में किसी एक की परिधि में अपने को सीमित कर काव्य रचना करना और उस परिधि में कीर्ति ध्वजा फहरा लेना आसान तो है, पर उससे कवि-धर्म का निर्वाह नहीं हो सकता । पथभ्रष्ट कवि से अधिक दयनीय प्राणी दूसरा कोई नहीं - ऐसा कवि का विश्वास था ।

"मालव सरिताओं से", "धान और विधान", "अंगामी नया नाच", "बाजारू सभ्यता" "कारवाँ" जैसी कविताओं में माचवे ने वर्ग वैषम्य का चित्र उपस्थित करके समाजवाद की स्थापना पर ज़ोर दिया है ।

केदार ने समाजवाद की स्थापना केलिये क्रांति का आह्वान किया है । कानपूर में शिक्षा प्राप्त करते समय यहाँ के लोकजीवन से उनका सम्पर्क हुआ । वे वहाँ के मज़दूर वर्ग का जीवन देख, सुन और समझ सके । पहले केदार पर राजनीति का प्रभाव कांग्रेसी था । फिर मार्क्सवाद की ओर झुका । उनकी "आग लगे इस रामराज में", "थैलीशाहों की", "महकती जिन्दगी", "कमकर" आदि कवितायें पूँजीवाद के विरोध में लिखी गयी हैं । साथ ही इनमें मज़दूर, किसान और अन्य शोषित जन के प्रति सहानुभूति भी प्रकट की गयी है ।

"सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध", "हँसता है अकाल", "याचना" "कोई भूखा हो तो", "बापू तुम होते तो" जैसी कविताओं में त्रिलोचन ने पूंजीवाद का विरोध और समाजवाद की स्थापना केलिये क्रांति का आह्वान किया है । माथुर की "क्रांति की भूमिका" "अन्धेरी दुनिया", "निर्णय का क्षण", "धूप का ऊन", "पूरब की किरण", "मिट्टि के सितारे" आदि कवितायें भी संघर्ष का स्वर और समाजवादी विचार प्रकट करनेवाली हैं ।

"प्रार्थनाओं से अब धरा नहीं पसीजेगी । रक्त से सिंचे बिना अब धरा उर्वरा नहीं होगी ।" इस विश्वास से नरेन्द्र शर्मा ने "उत्तर-प्रश्न" में क्रांति का आह्वान किया । इसी कवि ने "सार्थवाह बापू", "महात्मा गांधी", "गांधी गाथा", "गहरे घाव", "अहिंसा क्रांति" जैसी कविताओं में गांधीजी की अहिंसात्मक क्रांति का यशोगान किया है । बच्चन की "अमरबेली", भू पुत्रों की चुनौती, अज्ञेय की "शोषक भैया" आदि कवितायें पूंजीवाद का विरोध प्रकट करनेवाली हैं । बच्चन की राय में हमें स्वयं पूंजीपतियों की चंगुल से बचना चाहिए ।

भवानी प्रसाद और सोहनलाल द्विवेदी गांधीजी के जीवन दर्शन से प्रभावित कवि हैं । विवेच्य काल में गांधीजी के विचारों और आदर्शों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में मिलती है । भवानी प्रसाद के "गांधी पंचशती" में 500 कवितायें हैं जिन्होंने भारतवर्ष के गांधीयुग के विकास को सहज और सरस रूप में चित्रित किया है । मिश्रजी उस "प्रलय" की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसके आते ही झोंपड़ी और नीलम निलय का भेद समाप्त हो जायेगा । मिश्रजी मानवता की प्रतिष्ठा केलिये गांधीजी के तत्वों को अपनाने के पक्षपाती थे । "गीतफरोश" में उन्होंने शांतिपूर्ण क्रांति को संतुलित पथ कहा ।

सर्वेश्वर की कवितायें व्यंग्य प्रधान हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पन्द्रह बीस वर्ष बाद भी समाजवाद की स्थापना नहीं हुई । इस पर "युद्ध-स्थिति" कविता में - "साम्यवाद या पूंजीवाद/ मैं दोनों पर थूकता हूं" कहकर उन्होंने अपना रोष प्रकट किया है । दिनकर मुख्यत: राष्ट्रीय चेतना के कवि थे । लेकिन "कांटों का गीत", "स्वर्ग के दीपक", "एक बार फिर स्वर दो" "समर शेष है" जैसी कविताओं में उन्होंने पूंजीवाद का विरोध, वर्ग-वैषम्य, संघर्ष और समाजवादी चेतना को अभिव्यक्त किया है । दिनकर की स्वातंत्र्यपूर्व कविताओं में क्रांति का स्वर मुखरित होता है । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वह स्वर शांति और प्रेम में बदल गया । "उत्तरा" और युगांत की कविताओं में पंतजी की साम्यवादी चेतना देखी जा सकती है ।

शमशेर की कवितायें समाज का यथातथ्य चित्रण करनेवाली हैं । उनके मतानुसार कवि का कर्तव्य समाज सत्य को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है । उनकी कुछ कवितायें वैयक्तिक प्रतीत होती हैं । लेकिन अधिकांश कवितायें जीवन की जटिलताओं को चित्रित करनेवाली हैं । "कुछ और कवितायें" संग्रह की भूमिका में उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि मेरे कवि ने कभी किसी फार्म, शैली या विषय का सीमा बन्धन स्वीकार नहीं किया । फैशन किन विषयों पर लिखने का है, कौन-सी शैली चल रही है, किस वाद का युग आ गया है या चला गया है, मैं ने कभी इसकी परवाह नहीं की ।

पंत की कविताओं पर रवीन्द्र, कालिदास, भवभूति, मार्क्स, फ्राइड, गांधी और अरविंद का प्रभाव है । गांधीजी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण और मार्क्स के वस्तुवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने पंत को प्रभावित किया ।

उनकी कविताओं में जहाँ मानवतावाद की प्रतिष्ठा होती है, वहाँ रवीन्द्र का प्रभाव देखा जा सकता है । अरविंद दर्शन का मूल तत्व है समन्वय की भावना । जगत् और ब्रह्म के, जड और चेतन के, भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की जो भावना पंत की कविताओं में मिलती है, वहाँ इसका प्रभाव देखा जा सकता है । "उत्तरा" की भूमिका में पंत ने "विश्व कल्याण केलिये अरविंद की देन को इतिहास की सबसे बडी देन" कहा था । बच्चन की कविताओं में भी इस प्रकार की समन्वय भावना देखी जा सकती है ।

दिनकर और बच्चन ने शासन में भाग लेते हुए सरकार की आलोचना की । पंत और अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण और उसके जीवन्त चित्र प्राप्त होता है । "दो चट्टानें", संग्रह की कविताओं में युवा पीढी के मानसिक अस्वस्थताओं का चित्र मिलेगा ।

वैज्ञानिक चिंतन ने कवियों को स्वर्ग और नरक की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने केलिए बाध्य करायी । स्वातंत्र्योत्तर कवि मानव को ही ईश्वर मानते हैं कर्मण्यता को वे ईश्वर-पूजा कहते हैं ।

अज्ञेय, शमशेर और कुँवरनारायण की कवितायें शिल्प की दृष्टि से श्रेष्ठ कही जा सकती हैं । शमशेर की कवितायें शिल्प के प्रति अतिशय मोह रखती हैं ।

विवेच्य युगीन कवियों ने अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने केलिए प्रतीकों तथा मिथकीय बिंबों को माध्यम बनाया । ये प्रतीक मुख्य रूप से रामायण, महाभारत और पुराणों से लिया गया है । उदाहरण केलिये

कुंवर नारायण ने सामाजिक विषमताओं को चित्रित करने केलिये "चक्रव्यूह" को प्रतीक बनाया । उनकी कविताओं में मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक दशाओं को चित्रित किया गया है । एक ओर उन्नत आदर्शों

की ओर आकृष्ट होनेवाले मध्यवर्ग का आदमी, दूसरी ओर जीवन की बढती हुई आवश्यकताओं ने उन्हें बेचैन बना दिया है ।

विवेच्य युग में महाकाव्यों की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है । पौराणिक पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त विसंगतियों और विडम्बनाओं पर प्रकाश डालने की प्रवृत्ति इस युग की कविता की विशेषता है ।

"संशय की एक रात" का राम द्विधा ग्रस्त आधुनिक मानव का प्रतीक है । हनुमान साधारण जन का प्रतीक है जिनके द्वारा कवि ने साम्राज्यवाद का विरोध प्रकट किया है । सीता स्वतंत्रता का प्रतीक है । विभीषण के माध्यम से कवि ने युद्ध की समस्या पर विचार किया है । "कनुप्रिया" में राधा और कृष्ण को आधुनिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है । "तारकवध" में श्रृंगी ऋषि आदर्श मानव के रूप में आया है । "एकलव्य" दलित, शोषित मानव का प्रतीक है । उनके माध्यम से रामकुमार वर्मा ने जाति-भेद का विरोध प्रकट किया है । शिक्षा और राजनीति के बारे में भी कवि ने इसमें विचार किया है ।

भारती ने "अन्धा युग" में महाभारत कालीन युद्ध को वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत किया है । इसमें कृपाचार्य के माध्यम से स्वतंत्र भारत में नेताओं के अधःपतन का चित्र प्रस्तुत किया गया है । इसमें प्रहरी प्रजा का और गांधारी आधुनिक नारी का प्रतीक है । अश्वत्थामा आधुनिक

कुंठाग्रस्त व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है । कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं सहज मानव के रूप में चित्रित किया गया है जो इस युग की कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता कही जा सकती है । यह कल्पना हिन्दी कविता में पहली बार आयी है । सत्य और न्याय को युयुत्सु के माध्यम से चित्रित किया गया है । कौरव होने पर भी युद्ध में उन्होंने पांडवों के पक्ष से लड़ा ।

"अंगराज" में आनन्दकुमार और "रश्मिरथी" में दिनकर ने कर्ण के माध्यम से जाति भेद का विरोध प्रकट किया । "नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश धन धाम" जैसी पंक्तियाँ निश्चय ही जाति-वर्ण-वर्ग भेद से पीड़ित वर्तमान समाज को प्रेरणा देनेवाली है । "कैकेयी" में प्रभात जी ने राम के वन गमन को "मानवता की जय" कहकर एक नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है ।

"रामराज्य" कार ने "पंचशील" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धांतों का समर्थन किया । अपनी कल्पना के "रामराज्य" को प्रस्तुत करने के साथ कवि ने शहरीकरण, व्यवस्था, वर्तमान शिक्षा प्रणाली, समष्टि हित केलिये व्यष्टि हित का बलिदान आदि पर भी विचार किया है ।

पंत जी ने "लोकायतन" में "सुन्दरपुर" ग्राम को भारत के प्रतीक रूपमें प्रस्तुत किया है । सीता भू-चेतना मानी गयी । "आत्मजयी" में नचिकेता के पिता पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है । उसके पुत्र के द्वारा कुंवरनारायण ने पूंजीवाद का विरोध किया । "एक कंठ विषपायी" का सर्वहत साधारण शोषित जन का प्रतीक है । उसके माध्यम से दुष्यंत कुमार ने प्रजातंत्र के वर्तमान रूप को चित्रित किया है । इसमें दक्ष परम्परा का पोषक

और शिव परम्परा के गलित मूल्यों को तोडनेवाला मूल्यान्वेषी है । "पार्वती" भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप को चित्रित करता है ।

परम्परा के गलित अंशों को तोडने की प्रवृत्ति श्रीकांत शर्मा की "टूट पडी है परम्परा", कुँवरनारायण की "प्रश्न", भारतभूषण की "चीरफाड" जैसी कविताओं में भी मिलती है । निम्न वर्ग को समानता की चेतना से सम्पन्न कराने में केदार की कविताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

आज के मानव के दुहरे व्यक्तित्व को भी स्वातंत्र्योत्तर कवि ने चित्रित किया है । इस दुहरे व्यक्तित्व को दूर करके मानवीय मूल्यों में आस्था बढाने का प्रशंसनीय कार्य माथुर ने अपनी कविताओं में किया है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता की अन्य उपलब्धियाँ हैं - क्षण का महत्व और लघुमानव की प्रतिष्ठा । समूचे जीवन को उसके समस्त गुण-दोषों दुर्बलताओं और आशा आकांक्षाओं के साथ स्वीकार करने की दृष्टि लघुमानव और क्षण बोध दोनों प्रवृत्तियों में देखी जा सकती है ।

स्वातंत्र्योत्तर कविता की एकमात्र दुर्बलता उसकी एकरसता कही जा सकती है । इस युग की कविताओं ने चाहे राजनीति पर विचार किया हो, चाहे सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया हो, चाहे सांस्कृतिक गिरावट या आर्थिक शोषण की बातें कही हो प्राय: एक ही प्रकार की बातों को दोहराया है

स्वातंत्र्योत्तर कविता जिस सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है, वह मनुष्य के नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित करने में पर्याप्त सफल है । भारतीय जनता को नवीन आशा, आस्था एवं नये

विश्वास से उद्दीप्त करने में विवेच्य युग की कविताओं का योगदान अतुलनीय है । समस्त मानव समाज को आर्ष संस्कृति के संदर्भ में देखने का महत्वपूर्ण प्रयास इस युग की कविता ने किया है । सर्वोपरि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का हृदय स्पन्दन इन कविताओं में सुनने को मिलता है ।

555555555555

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. आधार - ग्रन्थ

क. काव्य - संग्रह

अज्ञेय

1. अरी ओ करुणा प्रभामयी — 1959, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।
2. आँगन के पार द्वार — 1961, वही
3. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये — 1957, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।
4. कितनी नावों में कितनी बार - 1967, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।
5. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ — 1970, वही
6. बावरा अहेरी — 1954, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।
7. हरी घास पर क्षण भर — 1949, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली ।

केदारनाथ अग्रवाल

8. आग का आईना — 1970, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।
9. कहें केदार खरी खरी — 1983, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
10. जो शिलायें तोड़ते हैं — 1986, वही
11. फूल नहीं रंग बोलते हैं — 1965, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

कुँवरनारायण

12· चक्रव्यूह 1956, राजकमल प्रकाशन, बम्बई ।
13· परिवेश हम तुम §द्वितीय सं·§, 1987, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

गिरिजाकुमार माथुर

14· जो बन्ध नहीं सका 1968, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

15· धूप के धान §द्वि·सं·§, 1958, वही
16· शिलापंख चमकीले 1961, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।
17· साक्षी रहे वर्तमान 1979, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

त्रिलोचन

18· अनकहनी भी कुछ कहनी है 1985, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।
19· उस जनपद का कवि हूँ §द्वि·सं·§, 1982, वही
20· गुलाब और बुलबुल 1985, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।
21· ताप के ताए हुए दिन द्वि·सं· 1983, संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।
22· शब्द 1980, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

नरेन्द्र शर्मा

23· अग्नि-शस्य 1951, भारती भण्डार, प्रयाग ।
24· प्यासा निर्झर 1964, समुदय प्रकाशन, बम्बई ।
25· बहुत रात गए 1967, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

नागार्जुन

26· तुमने कहा था 1980, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।
27· पुरानी जूतियों का कोरस 1983, वही
28· प्यासी पथराई आँखें 1982, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद ।
29· युगधारा द्वि·स· 1982, यात्री प्रकाशन, दिल्ली ।
30· सतरंगे पंखों वाली 1984, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

दिनकर

31· इतिहास के आँसू तृ·सं· 1957, उदयाचल प्रकाशन, पटना ।
32· कोयला और कवित्व 1964, वही
33· दिल्ली 1954, वही
34· धूप और धुआँ वही
35· नये सुभाषित 1957, वही
36· नीम के पत्ते द्वि·सं·1956, वही
37· नील कुसुम 1956, वही
38· परशुराम की प्रतीक्षा तृ·सं·1966, वही
39· बापू द्वि·सं·1948, वही
40· मृत्ति तिलक 1964, उदयाचल प्रकाशन, पटना ।

प्रभाकर माचवे

41. अनु-क्षण — 1959, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

42. स्वप्न भी — 1957, साहित्य भवन प्राईवट लिमिटड, इलाहाबाद ।

भवानी प्रसाद मिश्र

43. अन्धेरी कवितायें — 1968, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी ।

44. चकित है दुख — 1968, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद ।

45. गाँधी पंचशती — 1969, सरला प्रकाशन, दिल्ली ।

46. गीतफरोश — 1953, वही

भारतभूषण अग्रवाल

47. अनुपस्थित लोग — 1965, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

48. इतना वह सूरज है — 1977, नागमल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

49. एक उठा हुआ हाथ — {द्वि.सं.} 1976, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

50. ओ अप्रस्तुत मन — 1958, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

51. कागज के फूल — 1963, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

बच्चन

52. आरती और अंगारे — तृ.सं. 1963, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

53. उभरते प्रतिमानों के रूप — 1969, वही

54· कटती प्रतिमाओं की आवाज़ 1968, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
55· खादी के फूल द्वि·सं·1962, वही
56· चार खेमे चौंसठ खूंटे 1962, वही
57· त्रिभंगिमा 1961, वही
58· दो चट्टानें 1965, वही
59· धार के इधर उधर द्वि·सं·1960, वही
60· बहुत दिन बीते 1967, वही
61· बुद्ध और नाचघर 1958, वही
62· सूत की माला तृ·सं·1959, वही

शमशेर

63· कुछ कवितायें व कुछ और कवितायें - 1984, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।
64· चुका भी हूं नहीं मैं द्वि·सं·1981, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

श्रीकांत वर्मा

65· दिनारंभ 1967, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली ।
66· माया दर्पण 1967, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

67· एक सूनी नाव 1966, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली ।
68· काठ की घंटियाँ 1959, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।
68· कुआनो नदी 1973, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
69· गर्म हवायें 1969, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

सुमित्रानन्दन पंत

70· उत्तरा — द्वि· सं· संवत् 2012, भारती भण्डार, इलाहाबाद

71· कला और बूढ़ा चाँद — 1959, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

72· चिदम्बरा - पाँचवाँ सं·1986 - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

73· युगपथ — द्वि·सं·1964, भारती भण्डार, इलाहाबाद ।

74· रजतशिखर — 2008, संवत्, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

75· स्वर्णधूलि — द्वि·सं·1959, वही

सोहनलाल द्विवेदी

76· गाँधायन — 1970, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।

77· चेतना — 1954, इंडियन प्रेस, प्रयाग

78· पूजागीत — 1959, वही

79· मुक्तिगन्धा — 1972, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।

80· दूसरा सप्तक — (सं·अज्ञेय), द्वि·सं·1970, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, वाराणसी ।

81· तीसरा सप्तक — तृ·सं·1967, वही

ख· प्रबन्ध-काव्य

82· अङ्गराज — आनन्दकुमार
1950, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

83· अन्धा युग — धर्मवीर भारती
1954, किताब महल, इलाहाबाद ।

84· आत्मजयी — कुंवरनारायण
1965, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी ।

85· उर्वशी — दिनकर
नवम सं·1989, उदयांचल, पाटना ।

86· एक कंठ विषपायी — दुष्यंतकुमार
तृ·सं·1976, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

87· एकलव्य — डॉ· रामकुमार वर्मा,
सं·2015, भारती भण्डार, इलाहाबाद ।

88· कनुप्रिया — धर्मवीर भारती
अष्टम सं·1984, भारतीय ज्ञानपीठ
प्रकाशन, दिल्ली ।

89· कैकेयी — केदारनाथ मिश्र
प्रभात, 1951

90· जननायक — रघुवीरशरण मित्र
चतुर्थ सं·1964, भारतीय साहित्य प्रकाशन,

91· ज्योति पुरुष — रघुवीरशरण मित्र
1959, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ ।

92· तारकवध — गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
1958, भारती भंडार, इलाहाबाद ।

93· पार्वती — डॉ· रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन
1955, मंगल भवन, राजस्थान

94· मानवेन्द्र — रघुवीर शरणमित्र
1965, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ ।

95· मेधावी — डॉ· रांगेय राघव
1947, हिन्दु एकादमी, इलाहाबाद ।

96· रश्मिरथी — दिनकर
पाँचवाँ सं· 1960, उदयाचल, पाटना ।

97· रामराज्य — बलदेवप्रसाद मिश्र
सं·2017, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ ।

98· लोकायतन — पंत
1964, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

99· संशय की एक रात — नरेश मेहता
पाँचवाँ सं· 1972, पुस्तकायन, इलाहाबाद ।

100· सत्य की जीत — द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी,
1963, रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद ।

2· सहायक - ग्रन्थ

1· अज्ञेय की काव्य तितीर्षा — नन्दकिशोर आचार्य
1970, सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर ।

2· अज्ञेय की काव्य चेतना — कृष्ण भावुक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली ।

3· अस्तित्ववाद — डॉ॰ महावीर दाधीच
शब्दलेखा, बीकानेर ।

4· अतुकान्त — लक्ष्मीकांत वर्मा
1968, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

5· अनामिका — निराला
तृ॰सं॰2015, वि॰ भारती भण्डार, इलाहाबाद ।

6· अनुपूर्वा — अंचल
1970, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।

7· आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन - प्रभाकर माचवे
1977, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

8· आधुनिक हिन्दी कविता प्रसाद से अज्ञेय तक - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
1977, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

9· आधुनिक हिन्दी साहित्य — लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
1954, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद ।

10· आधुनिक हिन्दी काव्य — डॉ· राजेन्द्रप्रसाद मिश्र
1966, ग्रन्थम, कानपुर ।

11· आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली - रांगेय राघव
1962, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

12· आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र
1979, क्लासिकल पब्लिकेशन्स, दिल्ली ।

13· आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - डॉ· शम्भूनाथ पाण्डेय
1964, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

14· आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ· नगेन्द्र
पं·सं·1979, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

15· आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - डॉ· नरेन्द्र मोहन
आदर्श साहित्य, दिल्ली ।

16· आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य डॉ· बरसानेलाल चतुर्वेदी
1973, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।

17· कबीर ग्रन्थावली — सं·डॉ· गोविन्द त्रिगुणायत
1962, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।

18· कवितान्तर — जगदीश गुप्त
1973, ग्रन्थम, कानपुर

19· कविता के नये प्रतिमान — डॉ· नामवर सिंह
1968, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

20· कविता और संघर्ष चेतना — डॉ· यश गुलाटी,
[illegible]

21• कांग्रेस के सौ वर्ष संघर्ष और सफलता का इतिहास
मन्मथनाथ गुप्त
1985, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

22• कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन - डॉ• द्वारिका प्रसाद सक्सेना
पाँचवाँ सं•1978, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।

23• काव्य के रूप — गुलाबराय
चतुर्थ सं•1958, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

24• काश्मीर समस्या और पृष्ठभूमि - गोपिनाथ श्रीवास्तव
1969, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

25• केदारनाथ अग्रवाल-[सं•] — अजय तिवारी
1986, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

26• क्योंकि समय एक शब्द है — रमेशकुन्तल मेघ
1975, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

27• चकित है दुख — भवानी प्रसाद मिश्र
1968, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद ।

28• चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध
1964, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

29• जाति व्यवस्था — नर्मदेश्वर प्रसाद
1965, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

30• जायसी ग्रन्थावली — रामचन्द्र शुक्ल

31· जिजीविषा — महेन्द्र भटनागर
हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी ।

32· तीसरा सप्तक — {सं·} अज्ञेय
तृ·सं·1967, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

33· तुला और तारे — सावित्री सिन्हा
1966, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

34· दर्द दिया है — नीरज
द्वि·सं·1962, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

35· दिशान्तर — परमानन्द श्रीवास्तव और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 1971, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी ।

36· दूसरा सप्तक {सं} — अज्ञेय
द्वि·सं·1970, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

37· देहान्त से हटकर — कैलाश वाजपेयी
1967, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली ।

38· द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
1973, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

39. धरती — त्रिलोचन
1977, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद ।

40. नया साहित्य नये प्रश्न — नन्ददुलारे वाजपेयी
तृतीय सं० 1963, विद्यामन्दिर, वाराणसी ।

41. नया हिन्दी काव्य — शिवकुमार मिश्र
1962, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।

42. नया हिन्दी काव्य और विवेचना - शम्भूनाथ चतुर्वेदी
1964, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी ।

43. नयी कविता — डॉ० देवराज पथिक

44. नयी कविता — नन्ददुलारे वाजपेयी
1976, मैकमिलन कम्पनी, दिल्ली ।

45. नयी कविता के प्रतिमान — लक्ष्मीकान्त वर्मा
1957, भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

46. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर — संतोषकुमार तिवारी
1980, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा

47. नयी कविता के प्रबन्धकाव्य शिल्प और जीवन दर्शन -
उमाकांत गुप्त
1985, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

48. नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना देवराज पथिक
1985, कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली ।

49. नाट्यशास्त्र भरतमुनी [रघुवंश]
1964, मोतिलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

50. निराला व्यक्तित्व और कृतित्व - प्रेमनारायण टण्डन
1962, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ

51. परिमल निराला
आठवाँ सं. 1960, गंगा पुस्तकमाला
कार्यालय, लखनऊ ।

52. प्रगतिवाद शिवकुमार मिश्र
1966, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

53. प्रगतिवाद की रूपरेखा डॉ. मन्मथनाथ गुप्त,
1952, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

54. प्रगतिवादी काव्य साहित्य डॉ. कृष्णलाल हंस
1971, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल ।

55. प्रभाति सोहनलाल द्विवेदी
तृतीय सं. 1961, साहित्य भवन,
इलाहाबाद ।

56· प्रलय सृजन — "सुमन"
द्वि·सं·1969, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

57· प्रेमधन सर्वस्व — प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

58· प्यासा निर्झर — नरेन्द्र शर्मा
1964, समुदय प्रकाशन, बम्बई ।

59· फिलहाल — अशोक वाजपेयी
1970, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

60· बच्चन व्यक्तित्व और कवित्व — जीवन प्रकाश जोशी
1968, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली ।

61· बच्चन का परवर्ती काव्य एक मूल्यांकन — रेणु मलहोत्रा
1978, अनुपम प्रकाशन, जयपुर ।

62· बीस स्मृतियाँ — 1966, संस्कृति संस्थान, बरेली, उत्तर प्रदेश ।

63· 20 वीं· शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाज शास्त्रीय अध्ययन — लजपतराय गुप्त,

64· भवानी प्रसाद का काव्य — डॉ· कृष्णदत्त पालीवाल

65· भवानी भाई — विजयबहादुर सिंह

66· भारत का राजनीतिक इतिहास {1757-1960} — राजकुमार
1962, हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी

67· भारत का इतिहास — क्षितिश्वरप्रसाद सिंह
आठवाँ सं·1964, हिन्दी प्रचार
पुस्तकालय, वाराणसी,

68· भारतीय दर्शन — डॉ· राधाकृष्णन
1969, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

69· भारत की संस्कृति और कला — राधाकमल मुखर्जी
1959, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ

70· भारत भारती — गुप्त
उन्नीसवाँ सं·2020 वि· साहित्य सदन,
चिरगाँव ।

71· भारत का संवैधानिक इतिहास (1600-1950) एम·वी·पैली
अनु· जे·पी· शर्मा, 1975, नेशनल
पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

72· भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति - गौरीशंकर भट्ट
1965, साहित्य भवन, देहरादून

73· भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग दो — दूसरा सं· सं·2010, नागरी
प्रचारणी सभा, काशी ।

74· भारतेन्दु नाटकावली — सं·2006, रामनारायणलाल, इलाहाबाद ।

75· महादेवी-(संपा) — परमानन्द श्रीवास्तव, 1976
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

76· मार्क्स, गाँधी और समसामयिक संदर्भ - गणेश मंत्री,
1983, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

77· मार्क्सवाद और हिन्दी कविता डॉ· भगतराम शर्मा
1980, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

78· मानव सभ्यता का विकास रामविलास शर्मा,
द्वि·सं· 1983, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

79· मानव समाज राहुल सांकृत्यायन,
छठा सं·1982, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

80· मुकुल सुभद्राकुमारी चौहान
छठा सं·1947, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

81· मेरा समर्पित एकांत नरेश मेहता
1962, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

82· मेरी कवितायें भगवतीचरण वर्मा
1974, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

83· मौर्य विजय सियाराम शरण गुप्त
सं·2013, साहित्य सदन, चिरगाँव ।

84· युग चरण माखनलाल चतुर्वेदी
भारती भण्डार, इलाहाबाद ।

85· रेणुका — दिनकर
चतुर्थ सं·1960, उदयाचल, पाटना ।

85· रश्मिलोक — दिनकर
उदयाचल, पाटना ।

87· लोक और आलोक — केदारनाथ अग्रवाल

88· वाङ्मय विमर्श — विश्वनाथप्रसाद मिश्र
चतुर्थ सं·2018, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी ।

89· विचार और वितर्क — डॉ· हजारी प्रसाद द्विवेदी,
तृतीय सं·1969, साहित्य भवन, इलाहाबाद

90· विवेक के रंग — देवीशंकर अवस्थी
1965, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

91· विश्वास बढ़ता ही गया — "सुमन"
द्वितीय सं·1967, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

92· शमशेर — (सं) सर्वेश्वर
1971, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

93· संघर्ष के स्वर — हरिकृष्ण प्रेमी
1968, रवीन्द्र प्रकाशन, आगरा ।

94· संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास — पट्टाभी सीतारामय्या
सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली ।

95· संस्कृति के चार अध्याय — दिनकर
तृतीय सं·1962, उदयाचल, पटना ।

96· समाज दर्शन की रूपरेखा — जगदीश सहाय श्रीवास्तव
1970 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।

97· समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की विवेचना - बृजसेन चतुर्वेदी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

98· समाज मनोविज्ञान — हंसराज भाटिया
1969, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

99· समकालीन हिन्दी कविता — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
1982, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

100· सहचिंतन — अमृतराय
1967, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद ।

101· साकेत संत — बलदेवप्रसाद मिश्र
1946, विद्यामन्दिर लिमिटड, दिल्ली ।

102· साकेत एक अध्ययन — डॉ· नगेन्द्र
1980, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

103· सात गीत वर्ष — धर्मवीर भारती
1959, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी

104· सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन - डॉ· कृष्णकुमार मिश्र
द्वि·सं·1977, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ ।

105· साहित्य का समाजशास्त्र डॉ·नगेन्द्र
1982, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

106· साहित्यिक निबन्ध डॉ· शांतिस्वरूप गुप्त
1968, अशोक प्रकाशन, दिल्ली,।

107· साहित्य : समाजशास्त्रीय संदर्भ – {सं·} वि·डी·गुप्ता
1987, सीता प्रकाशन, हाथरस {उ·प्र·}

108· साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया – {सं·} अज्ञेय
1985, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

109· साहित्य और सामाजिक संदर्भ – शिवकुमार मिश्र
1977, कला प्रकाशन, दिल्ली ।

110· साहित्य और आधुनिक युग बोध – देवेन्द्र इस्सर
1973, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर ।

111· सुमित्रानन्दन पंत व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ· रामजी पाण्डेय
1982, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

112· सुमित्रानन्दन पंत डॉ· नगेन्द्र
सातवाँ सं· 1978, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

113· स्वतंत्र भारत की झलक राजेन्द्र प्रसाद
1973, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली ।

114. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता - डॉ. गोविन्द रजनीश
1976, मंगल प्रकाशन, जयपुर ।

115. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - डॉ. शेरजंग गर्ग
1973, साहित्य भारती, दिल्ली ।

116. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - डॉ. बेचन
1967, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली ।

117. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य - डॉ. बनवारीलाल शर्मा
1972, रमा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर ।

118. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य - देवीप्रसाद गुप्त
1973, गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर ।

119. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. कुंवरपाल सिंह
1976, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली ।

120. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - रामदरश मिश्र
1978, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

121. हिन्दी कविता में समकालीन चेतना - डॉ. सुखबीर सिंह

122. हिन्दुस्तान की कहानी नेहरू
सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली ।

123· हिन्दी साहित्य तृतीय खण्ड - धीरेन्द्र वर्मा
1969, भारतीय हिन्दी परिषद्,प्रयाग ।

124· हिमकिरीटिनी माखनलाल चतुर्वेदी
1942, भारती भंडार, इलाहाबाद ।

125· हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं·डॉ·नगेन्द्र
1980, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली ।

126· हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 - ज्ञानमण्डल लिमिटेड,वाराणसी ।

127· हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ·रत्नाकर पाण्डेय
1976, पाण्डुलिपि प्रकाशन,दिल्ली ।

128· हिन्दी महाकाव्य सिद्धांत और मूल्यांकन - देवीप्रसाद गुप्त
1968, अपोलो पब्लिकेशन्स, जयपुर ।

129· हिन्दी काव्यशास्त्र की परम्परा - डॉ· शिवनाथ पाण्डेय
1989, के·एल·पचौरी प्रकाशन,दिल्ली ।

130· हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदानसिंह चौहान
1961, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

131, हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
1963, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

132· हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - ए·गणपति चन्द्रगुप्त
1965, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ ।

133· हुंकार दिनकर
संशोधित सं·1955, उदयाचल,पाटना

ख· अंग्रेज़ी

1. An Introduction to the study of society
   F.G.Hawkins

2. Cultural Sociology — Gillin and Gillin

3. Discovery of India — Nehru
   Meridian Books, London

4. History of freedom movement in India- Vol.II & III
   R.C. Majumdar
   1963, Firma, K.L.Mukhopadhyay, Culcutta

5. Evolution of Indian Culture from early times to present day
   B.N. Lunia
   5th, 1970,

6. History of Caste in India — S.V. Ketkar
   1979, Rawath publications, Jaipu

7. India from curson to Nehru and after
   Collins
   1969, St. James Palace, London

8. Indian Law of Marriage and Divorce
   Kumud Desai
   N.M. Tripati Pvt. Ltd., Bombay.

9. Indian Women to day — Dr.Girija Khanna and Marriamma A. Varghese
   1978, Vikas Publication Home, Delhi.

10. Marriage and Family — Alfred Mechung Lee and Elezabeth Braint Lee
1969, Barne and Noble inc.
New York

11. Segregation and untouchability abolition
Dr. M.C.J. Kagzi,
1976, Metropolitin Book Co.
Pvt. Ltd., Delhi

12. Manifesto of the Communist Party
1977, Karl, Marx and Frederic Engeles
Progresi Publications, Moscow

13. Some aspects of Indian Society — Subhash Chandra Battacharya
1978, Forma K.L.M. Pvt.Ltd.
Culcutta..

14. Society — Mac Ives and Page
1974, The Mac Millian Co.
India Ltd.

15. 25 Years of Indian Independence
Ed. By Jagmohan
Delhi Vikas, 1973

16. The Economic History of India under early British rule
Remesh Dutt

17 Society an Introductary Analysis
Mac Ives and Page
1974, Mac Millan, Delhi

18. The Principles of Psychology — William James
1918, Dover Publications,
New York.